॥ श्रीः ॥

श्रीमद्धनुमद्विरचित-

हनुमन्नाटक ।

मुरादाबादनिवासी-भारद्वाजगोत्र-गौडवंश श्रीयुत पं० भोलानाथात्मज-(ऋ० कु०) "धर्मपताका" सम्पादक रामस्वरूपशर्मा कृत-

भाषाटीकासमेत ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

बम्बई.

संवत् १९९०, शक १८५५.

मुद्रक और प्रकाशक—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

मालिक—"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्—प्रेस, बम्बई.

पुनर्मुद्रणादि सर्वाधिकार "श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयाध्यक्षाधीन हैं ।

भूमिका।

"श्रीहनुमन्नाटक" किस समय रचागया, इस बातका पूरा २ पता लगना जरा कठिन है क्योंकि आजतक संस्कृत इतिहासकी खोज करनेवाले जिन २ महानुभावोंने अन्यान्य प्रसिद्ध महाकाव्योंके रचयिताओंके समय आदिका पता लगानेमें परम परिश्रम किया है. उनमेंसे किसीके रचना कालका साक्षात् पता लगाया है और केन्हीके समय आदिका अनुमान किया है, परन्तु उन विज्ञोंमेंसे केसीने भी इस 'महानाटक' के विषयमें आजतक साक्षात् रूपसे वा अनुमान करके इसके समयादिका कुछ उल्लेख नहीं किया। इससे अनुमान होता है कि, अभीतक इसके रचनाकालका निश्चय होनेकी कोई सामग्री प्राप्त नहीं हुई है। इसके अन्तिम अङ्कमें इतना लिखा है कि—

"रचितमनिलपुत्रेणाथ वाल्मीकिनाब्धौ
निहितममृतबुद्ध्या प्राङ् महानाटकं यत्।
सुमतिनृपतिभोजेनोद्धृतं तत्क्रमेण
ग्रथितमवतु विश्वं मिश्रदामोदरेण॥"

अर्थात्—इसको पवनकुमारने रचा और शिलाओंपर लिखा था, परन्तु जब वाल्मीकिजीने अपनी रामायण रची तब यह समझकर कि—इस अमृतके सामने मेरी रचनाको कौन पढैगा, श्रीहनुमान्जीसे प्रार्थना करके उनकी आज्ञासे इस महानाटकको समुद्रमें स्थापित करादिया, परन्तु विद्वानोंसे किम्वदन्तीको सुनकर परमसुबुद्धि सजा भोजने इसको समुद्रमेंसे निकलवाया और जो कुछ मिला उसको

उनकी सभाके विद्वान् दामोदर मिश्रने संगतिपूर्वक संगृहीत किया। अत एव यह पुस्तक जहाँ तहाँ अपूर्ण प्रतीत होता है, जो कुछ भी हो ऐसा कोई ही हृदयहीन होगा जो इसकी भक्तिभरी हृदयग्राहिणी रचना सुनकर आनन्दमग्न न होता हो, इसी कारण बंबईस्थ "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणालयाध्यक्ष परम वैष्णव श्रीयुत सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीने सकल रामभक्तोंके मनोविनोदार्थ इसका भाषानुवाद करनेके लिये मुझे सूचित किया। तदनुसार मैंने इस रामचरितमय "महानाटक" का भाषानुवाद किया है, आशा है रामभक्त इसको अपनाकर मुझको तथा उक्त सेठजीको सफलश्रम और कृतार्थ करेंगे यह रामचरित, योग्यपात्र श्रीयुत उक्त सेठ खेमराजजीको ही सकल अधिकारोंके साथ समर्पण करके मैं इस भूमिकाको समाप्त करता हूँ।

रामभक्तोंका प्रेमाभिलाषी—

ऋ० कु० रामस्वरूप शर्मा,

सम्पादक—"सनातन धर्मपताका"

मुरादाबाद।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ श्रीहनुमन्नाटक ।

भाषाटीकासमेत ।

प्रथम अङ्क ।

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य ॥
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥ १ ॥

दोहा—जय गणेश मंगलकरण, चरण शरण रखवार ।
विघ्न हरण कीर कीजिये, पूरण प्रण भुज चार ॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी गुणावलीका वर्णन करनेकेअभिलाषी ग्रंथकार अपने इष्टदेवका नामस्मरणरूप मङ्गलाचरण करते हैं जिसमें सकल कल्याण भरे हैं, जो कलियुगमें स्मरण करनेवालोंके सकल पापोंको हरलेता है, जो एकही वाल्मीकि आदि कविवरोंकी वाणियोंके विश्राम पानेका स्थान है, जो त्रिलोकीको पवित्र करने वालोंको भी पवित्र करनेवाला है, जो शीघ्रही परब्रह्ममें स्थानको (परम पदको) पानेके लिये प्रस्थान करनेवाले (उद्योग करनेवाले) मुमुक्षु पुरुषको मार्गका सहारा है (अर्थात् मोक्षको चाहनेवाले पुरुष साधनके समयमें जिस रामनामके सहारेसे अनायाससेही परमपदको पाजाते हैं) और जो धर्मरूपी वृक्षका बीज है (अर्थात् जैसे किसी वृक्षके बीजमें उसके पुष्प फल आदि सब विद्यमान होते हैं तैसेही इस धर्मरूपी वृक्षके बीजरूप रामनाममें धर्मके सब अङ्ग विद्यमान

हैं, क्योंकि रामनामका कीर्त्तन करनेसे चित्तकी शुद्धि होनेपर मनुष्यसे सकल धर्माचरण बन पडते हैं) ऐसा सज्जनोंका जीवनधन रामनाम आपको इस लोक और परलोककी सम्पत्ति देनेवाला हो ॥ १ ॥

पातु श्रीस्तनपत्रभङ्गमकरीमुद्राङ्कितोरःस्थलो
देवः सर्वजगत्पतिर्मधुवधूवक्त्राब्जचन्द्रोदयः ।
क्रीडाक्रोडतनोर्नवेन्दुविशदे दंष्ट्रांकुरे यस्य भूर्भा-
तिस्म प्रलयाब्धिपल्वलतलोत्खातैकमुस्ताकृतिः॥२॥

जिनके वक्षस्थलपर लक्ष्मीजीके स्तनोंपरकी पत्ररचनाकी मकरी-मुद्राका चिह्न है, जो विष्णुरूपसे सब जगत्का पालन करते हैं, जो मधुदैत्यकी स्त्रियोंके मुखकमलोंको चन्द्रमाके समान बनेथे (अर्थात् जिन्होंने संसारकोत्रास देनेवाले मधुदैत्यका संहारकरके उसकी स्त्रियोंके मुखोंको कान्तिहीन करादिया था)भक्तोंकी रक्षा और दुष्टोंका संहाररूप क्रीडाके लिये वराहरूप धारण करनेवाले, जिनकी द्वितीयाके चंद्रमाकी समान स्वच्छ दाढकी नोंकपर पृथ्वी, प्रलयकालके समुद्ररूप छोटेसे सरोवरमेंसे उखाडे हुए मोथेकी समान शोभाको प्राप्त हुई थी, वह भक्तोंके निमित्त अवतार धारणरूप क्रीडासे प्रेम रखनेवाले श्रीरामचन्द्रजी आपकी रक्षा करें ॥ २ ॥

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयंवो विदधातु वाञ्छितफलंत्रैलोक्यनाथो हरिः॥३

शिवजीके भक्त जिनको शिव इस नामसे,वेदान्त शास्त्रके अभ्यासी जिनको अद्वितीय ब्रह्म मानकर, बौद्धतमके अनुयायी पुरुष जिनको बुद्ध इस नामसे, प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाणोंका प्रयोग करनेमें

प्रवीण न्यायशास्त्रको जाननेवाले जिनको जगत्का कर्त्ता मानकर जैनमतकी आज्ञाका पालन करनेके प्रेमी जिनको अर्हन् रूपमें, और पूर्वमीमांसाको जाननेवाले जिनको फल देनेमें स्वतन्त्र कर्मस्वरूप मानकर उपासना करते हैं, ऐसे भक्तोंके ऊपर प्रेमभाव रखकर उनके दुःखोंको दूर करनेवाले त्रिलोकीके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी आपको वांछित फल दें ॥ ३ ॥

तं रामं रावणारिं दशरथतनयं लक्ष्मणाग्र्यं गुणाढ्यं
पूज्यं प्राज्यंप्रतापावलयितजलधिंसर्वसौभाग्यसिद्धिम्।
विद्यानन्दैककन्दं कलिमलपटलध्वंसिनं सौम्यदेवं
सर्वात्मानं नमामि त्रिभुवनशरणंप्रत्यहंनिष्कलङ्कम्॥४॥

उन रावणका नाश करनेवाले, दशरथकुमार, लक्ष्मणजीके जेठे भ्राता, सकल गुणोंके धनी, पूजनीय, सबसे श्रेष्ठ समुद्रके चारों ओर प्रतापका चक्र बनानेवाले सकल शुभकार्य्योंमें सिद्धिस्वरूप (अर्थात् जिनके सच्चे स्मरणसे सकल शुभ कार्य सिद्ध होते हैं) ज्ञान और आनन्दके अद्वितीय कन्दस्वरूप (स्मरण करनेपर) कलिकालके सकल मलोंका नाश करनेवाले सौम्य दिव्यमूर्ति सर्वव्यापी त्रिलोकीके रक्षक मायाके लेशसे शून्य श्रीरामचन्द्रजीको मैं प्रतिदिन प्रणाम करताहूँ ॥४॥

अथोपक्रमः ।

आसीदुद्भटभूपतिप्रतिभटप्रोन्माथिविक्रान्तिको
भूपः पंक्तिरथो विभावसुकुलप्रख्यातकेतुर्बली ।
उर्वीबर्बरभूरिभारहरणे भूरिश्रवाः पुत्रतां
यस्यार स्वमथो विधायमहितःपूर्णश्चतुर्धा विभुः॥५॥

अब कथाकी शृंखला बांधते हैं जिनका पराक्रम अपने प्रतिपक्षी बडे २ वीर राजाओंको नीचा दिखानेवाला है, सूर्यवंशकी प्रसिद्ध पाताका रूप, दशरथ नामवाला एक बली राजा था, जिसके यहाँ

पुत्ररूपसे प्रकट होनेके लिये प्रार्थना किये हुए पूर्णस्वरूप, सर्वव्यापक, पूजनीय, परमकीर्तिवाले, साक्षात् श्रीनारायण, पृथ्वी परके राक्षसोंका बडा भारी भार हरनेके लिये, अपने मूलस्वरूपकेही राम–लक्ष्मण–भरत–शत्रुघ्न रूप चार विग्रह करके पुत्रभावको प्राप्त हुए ॥ ५ ॥

तेषामीश्वरतागुणैश्च जनुषा ज्यायानभूद्राघवो
रामः सोऽप्यथ कौशिकेन मुनिना रक्षोभयाद्याचितः।
राजानं स यशोधनो नरपतिः प्रादात्सुतं दुःखित-
स्तस्मै सोऽपितमन्वगादनुगतःसौमित्रिणोच्चैर्मुदा॥६॥

उन चारों पुत्रोंमें रघुकुलको प्रसिद्ध करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी, सबसे प्रथम जन्म होने और ईश्वरताको सिद्ध करनेवाले गुणोंके कारण ज्येष्ठ थे, और उन श्रीरामचन्द्रजीको राक्षसोंके भयसे (व्याकुल हुए) विश्वामित्र मुनिने राजा दशरथसे माँगलिया; वह राजा दशरथभी अपना परमधन यशको समझते थे (और मुनिके साथ प्रिय पुत्र श्रीरामचन्द्रजीको नहीं भेजते तो अतिथिके मनोरथको पूर्ण न करनेका अपयश लगता ऐसा नहो) इस कारण श्रीरामचन्द्रके वियोगसे चित्तमें दुःखित होतेहुए उनको मुनि विश्वामित्रजीके हाथमें सौंपदिया तब वह श्रीरामचन्द्रजी छोटे भ्राता लक्ष्मणजीके सहित चित्तमें बडे प्रसन्न होतेहुए उन विश्वामित्रजीके साथ चले गये ॥६॥

सुन्दस्त्रीदमनप्रमोदमुदितादास्थाय विद्योदयं
रामः सत्यवतीसुतादथ गतस्तस्या श्रमं लीलया।
कल्प्ते कौशिकनन्दनेन च मखे तत्रागतान् राक्षसान्
हत्वाऽमूमुचदाशुभाविविदसौ मारीचमुग्राकृतिम्॥७॥

सुन्द नामक राक्षसकी स्त्री (ताडका) का प्राणान्त करदेनेके हर्षसे प्रसन्न हुए सत्यवतीके पुत्र विश्वामित्रजीसे बला अतिबला विद्याके तत्त्वको पाकर श्रीरामचन्द्रजी फिर लीला करते हुए उनके

आश्रममें जापहुचे तहाँ विश्वामित्रके यज्ञ करतेसमय आये हुए राक्षसोंका संहार करके तत्काल होनहार (मृगरूप धारनेवाले इसके द्वारा रावण सीताको हरेगा, इस बात) को जाननेवाले श्रीरामचन्द्रजीने भयानक आकारवाले मारीच राक्षसको छोडदिया ॥ ७ ॥

पूर्णे यज्ञविधौ ययासुरभवद्रामेण सार्धं मुनिः
सीतासंवरणागताखिलनृपव्याभग्नवीर्यश्रियम् ।
श्रुत्वा तद्धनुरुत्सवं च मिथिलामास्थाय तेनाधिकं
सत्कारैरुपलम्भितः पुनरगाच्चापाश्रितं मण्डलम्॥८॥

यज्ञका कार्य समाप्त होनेपर मिथिलापुरीमें राजा जनकने धनुषयज्ञ किया है, और उस यज्ञमें सीताको वरनेके लिये आये हुए सब राजे अपनी वीरताकी शोभाको नष्ट करचुके हैं, यह सुनकर मुनि विश्वामित्रजीने वहां जाना चाहा और फिर श्रीरामचन्द्रजीके साथ उस मिथिलापुरीमें पहुँचे, वहां जनक राजाके द्वारा बहुत कुछ सत्कार पाकर,तदनन्तर जहां धनुष रक्खा था उस यज्ञमण्डपमें पहुंचे ॥ ८ ॥

तदा सीता (आत्मगतम्)-

कमठपृष्ठकठोरमिदं धनुर्मधुरमूर्तिरसौ रघुनन्दनः ।
कथमधिज्यमनेनविधीयतामहहतातपणस्तवदारुणः॥९

सीता-(उस समय अपने मनमेंही) यह धनुष कछुएकी पीठकी समान कठोर है, और यह रघुकुलके आनन्दको बढानेवाले कुमार श्रीरामचन्द्रजी सुकुमार मूर्त्ति हैं। हा ! यह इस धनुषको अधिज्य (रोदा चढा हुवा) कैसे करेंगे ! इस कारण हे पिताजी ! तुम्हारी " जो कोई धनुषको चढावेगा उसीको सीता दूँगा " यह प्रतिज्ञा बडी दुःखदायक है, अर्थात् यदि तुमने यह प्रतिज्ञा न की होती तो इस स्वयंवरमें मैं श्रीरामचन्द्रजीको ही वरती ॥ ९ ॥

रामो लक्ष्मणं प्रति–

आद्वीपात्परतोऽप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः
कन्यायाः कलधौतकोमलरुचेः कीर्तेश्च लाभः परः ।
नाकृष्टं न च टङ्कितं न नमितं नोत्थापितं स्थानतः
केनापीदमहो महद्धनुरिदं निर्वीरमुर्वीतलम् ॥ १० ॥

श्रीरामचन्द्रजी (लक्ष्मणजीसे) देखो यह सब राजे इस द्वीपसे तथा इस द्वीपके बाहरसे भी आये हैं (क्योंकि) यहां निर्मल सुवर्णकी समान कोमल कान्तिवाली जनककी पुत्री तथा कीर्तिका भी बडा भारी लाभ होगा, (परंतु जिस धनुषको चढानेपर ऐसा होसकता है ऐसा) यह बडाभारी धनुष न किसीने खींचा, न किसीने (रोदा चढाकर) इसका टंकार शब्द किया, न नमाया । अधिक क्या कहूँ किसीने इसको स्थानसे उठाया तक भी तो नहीं । हा बडे आश्चर्यकी बात है कि–आज इस भूतलपर इस योग्य कोई भी वीर नहीं रहा १०

लक्ष्मणो रामहृदयानन्दकंदाङ्कुरोद्भवाय निजप्रचण्ड-
दोर्दण्डयोर्महतीं प्रौढिं नाटयति–

देव श्रीरघुनाथ किं बहुतया दासोऽस्मि ते लक्ष्मणो
मेर्वादीनपि भूधरान्न गणये जीर्णः पिनाकः कियान् ।
तन्मामादिश पश्य पश्य च बलं भृत्यस्य यत्कौतुकं
प्रोद्धर्तुं प्रतिनामितुं प्रचलितुं नेतुं निहन्तुं क्षमः॥ ११॥

लक्ष्मणजी–(श्रीरामचन्द्रजीके हृदयके आनन्दरूपी कन्दमें अंकुर उत्पन्न होनेके लिये अर्थात् हृदयके आनन्दको बढानेके लिये अपने परमबली भुजदण्डोंकी अतिप्रौढताका वर्णन करते हैं) कि हे सर्वत्र विजय पानेवाले श्रीरघुनाथजी ! अधिक कहना वृथा है, (अभी तो इस भूतल पर) एक आपका सेवक मैं लक्ष्मण ही ऐसा हूँ कि–सुमेरु आदि पर्वतोंको भी कुछ नहीं गिनता, फिर यह पुराना पिनाक धनुष

तो है हां क्या ! इस कारण मुझको आज्ञा दीजिये और फिर सेवकके आश्चर्यमें डालनेवाले बलको देखिये कि-इस धनुषको मैं भूमिपरसे उठा सकता हूँ, उठाकर पूरा २ नमासकता हूँ, गेंदकी समान उछाल सकता हूँ, दूसरे स्थानपर ले जासकता हूँ और अधिक क्या कहूँ तोड-कर टुकडे २ भी करसकता हूँ फिर खैंचनेका तो कहना ही क्या है ॥ ११ ॥

रावणपुरोहितो जनकं प्रति-

दातव्येयमवश्यमेव दुहिता कस्मैचिदेनामसौ
दोःक्रीडामशकीकृतत्रिभुवनो लंकापतिर्याचते ।
तत्किं मूढवदीक्षसे ननु कथागोष्ठीषु नः शासते
तद्वृत्तानि परोरजांसि मुनयःप्राच्यामरीच्यादयः॥१२॥

रावणका पुरोहित-[श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीकी इस प्रकार बातें हो रही थीं, इतनेहीमें आकर] (राजा जनकसे) देखो जनक । यह कन्या तो किसी न किसीको अवश्यही दी जायगी और यह प्रसिद्ध वंशके, त्रिलोकीको क्रीडामात्रमेंही अपनी भुजाओंसे जीतने-वाले, लंकापति रावण, इस कन्याको स्वयं मांगते हैं सो अब तुम अज्ञ पुरुषकी समान विचारमें क्यों पडे हो ? (अहा ! जरा ध्यान तो दो यह वह रावण है कि-) जिसके शुद्ध चरित्रोंको पूर्वकालके मरीचि आदि मुनि कथा वार्ताके समय हमको सुनाया करते हैं (सो स्वयं मांगनेवाले ऐसे गुणी रावणको यह कन्या दे देनी चाहिये ॥ १२ ॥

पुनः रामं प्रति-

समंतादुत्तालैः सुरसहचरीचामरमरु-
त्तरङ्गैरुन्मीलद्भुजपरिघसौरभ्यशुचिना ।
स्वयं पौलस्त्येन त्रिभुवनजिता चेतसि धृता-
मरे राम त्वं मा जनकपतिपुत्रीमुपयथाः ॥ १३ ॥

(फिर श्रीरामचन्द्रजीसे) अरे राम ! तू इस राजा जनककी पुत्रीके पानेकी आशा मत कर, क्यों कि—चारों ओरसे चलते हुए देवाङ्गनाओंके हाथोंमेंके चँवरोंकी पवनके झकोलोंसे जिसके सुगन्धियुक्त लोहेके दण्डोंकी समान भुजदण्ड हरसमय फडकते रहते हैं. उस त्रिलोकीको जीतनेवाले साक्षात् रावणने इसके साथ विवाह करनेका चित्तमें पक्का निश्चयकर लिया है ॥ १३ ॥

जनकः—

माहेश्वरं धनुः कुर्यादधिज्यं चेद्ददामि ताम् ।

पुरोहितः—

गुरोः शंभोर्धनुर्नो चेच्चूर्णतां नयति क्षणात् ॥१४॥

जनक—पुरोहितजी ! यदि आपके लङ्कापति रावण शिवजीके पिनाक धनुषपर रोदा चढा सकेंगे तो मैं उनको सीता दे दूंगा। पुरोहित—(देखो जनकजी !) यदि यह धनुष उनके गुरुदेव महादेवजीका न होता तो चढाना अलग रहा, वह इसका चूरा २ का डालते ॥ १४ ॥

जनकः विहस्य—

शम्भोरावासमचलमुत्क्षिप्तुं भुजकौतुकी ।
माहेश्वरं धनुः क्रष्टुमर्हते दशकंधरः ॥ १५ ॥

जनक—(हँसकर) हां हां पुरोहितजी ! वह तुम्हारे लंकापति दशकन्धर जब महादेवजीके निवासस्थान कैलासपर्वतको ऊपरको उठा लेनेमें अपनी भुजाओंका कौतुक दिखा चुके हैं तो शिवजीके धनुषको भी चढाही सकेंगे ॥ १५ ॥

जनकः सीतां प्रति सखेदम्—

माहेश्वरो दशग्रीवः क्षुद्राश्चान्ये महीभुजः ।
पिनाकारोपणं शुल्कं हा सीते किं भविष्यति ॥१६॥

जनक-(सीताजीकी ओरको देख दुःखित होते हुए) यह रावण शिवजीका भक्त है (इस कारण शिवजीके धनुषको नहीं चढा सकता है) अन्य राजे अधिक पराक्रमी नहीं हैं (और तेरे विवाहके विषयमें मेरा) प्रण रूपी मूल्य केवल पिनाक धनुषको चढा लेना है, हां सीते ! न जानें अब तेरी क्या दशा होगी ॥ १६ ॥

सीता-

सार्धं हरेण हरवल्लभया च देव्या
हेरम्बषण्मुखवृषप्रमथावकीर्णम् ।
कैलाससमुद्धृतवतो दशकन्धरस्य
केयं च ते धनुषि दुर्मद दोःपरीक्षा ॥ १७ ॥

सीता-(अपने मनमेंही) कछुएकी पीठकी समान कठोर धनुष इत्यादि फिर कहती है ॥

'कमठपृष्ठम्' इत्यादि पुनः पठति । रावणपुरोहितः सक्रोधम्-

रावणका पुरोहित-(क्रोधमें भरकर) अरे ! दुष्टताके साथ वीरताका घमण्ड रखनेवाले जनक ! जिसने शिवजी और पार्वती देवी सहित गणेश स्वामिकार्तिकेय नन्दीगण और पार्षदोंसे भरे हुए कैलासको उखाडकर ऊपरको उठा लिया उस रावणके भुजदण्डोंकी तू इस धनुषका रोदा चढानेमें क्या परीक्षा करता है ? ॥

जनकः-

शृणुत जनककल्पाः क्षत्रियाः शुल्कमेते
दशवदनभुजानां कुण्ठिता यत्र शक्तिः ।
नमयति धनुरैशं यस्तदारोपणेन
त्रिभुवनजयलक्ष्मीर्जानकी तस्य दाराः ॥ १८ ॥

जनक-(रावणके पुरोहितकी ओरको आक्षेप करता हुआ सब राजाओंको अपनी प्रतिज्ञा सुनाता है) हे थोडेही पराक्र-

मवाले क्षत्रिय राजाओ ! (मेरी प्रतिज्ञाको) सुनो–जिस धनुषपर दशकन्धरकी भुजाओंकी शक्ति खुटली होगई उस शिवजीके धनुषको जो कोई लचाकर चढालेगा; त्रिलोकीके विजयकी लक्ष्मीरूप जनकपुत्री उसीकी स्त्री होगी ॥ १८ ॥

श्रीरामो नाटयन्–

कपोले जानक्याः करिकलभदन्तद्युतिमुषि
स्मरस्मेरं गण्डोडुमरपुलकं वक्त्रकमलम् ।
मुहुः पश्यञ्शृण्वन्नजनिचरसेनाकलकलं
जटाजूटग्रन्थिं रचयति रघूणां परिवृढः ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्रजी–(चारों ओरको देखते २ अपने वेशको सम्हालते हुए) धनुषयज्ञके स्थानमें नीचेको मुख किये बैठी जानकीके, हाथीके पाठेके दातोंकी कान्तिको चुरानेवाले कपोलमें अभिलाषाभरी मुसकुरानके साथ, गण्डस्थलमें रोमाञ्चयुक्त अपने मुखको बार २ देखते हुए और राक्षसोंकी सेनाके कलकल शब्दको सुनते हुए रघुवंशियोंमें प्रचण्ड रामचन्द्र (अब अपने) जटाजूटका गांठको बांधते हैं (अर्थात् धनुषके चढानेको उद्यत होते हैं ॥ १९ ॥

गृहीतहरकोदण्डे रामे परिणयोन्मुखे ।
पस्पन्द नयनं वामं जानकीजामदग्न्ययोः ॥ २० ॥

सीताके साथ विवाह करनेमें उत्कण्ठित होकर शिवजीके पिनाक धनुषको उठातेही जानकी और परशुरामजीका बायां नेत्र फडका (अर्थात्) जानकीको मनोरथ पूर्ण करनेवाला शकुन और परशुरामजीको आनेवाले भयका सूचित करनेवाला शकुन हुआ ॥२०॥

लक्ष्मणो रामे सज्यं धनुः कुर्वति सति पृथ्व्यादीनि भुवनान्यधो यास्यन्तीत्याशङ्क्याह–

पृथ्वि स्थिरा भव भुजंगम धारयैनां
त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः ।

दिक्कुञ्जराः कुरुत तत्त्रितये दिधीषां
रामः करोति हरकार्मुकमाततज्यम् ॥ २१ ॥

लक्ष्मणजी-(श्रीरामचन्द्रजीके धनुषको चढानेका उद्योग करनेपर पृथ्वी आदि लोकोंके नीचेको धसजानेका सन्देह करके कहते हैं) अरी पृथ्वी ! तू स्थिर हो ! (अपने आपको सम्हाल) हे शेषनाग ! तुम इस पृथ्वीको (सावधानीसे) धारण करे रहो.हे कच्छपराज! तुम इन पृथ्वी और शेषनाग दोनोंको सम्हाले रहो तथा हे दिग्गजो ! तुम पृथ्वी शेषनाग और कूर्मराज इन तीनोंको धारण करे रहनेमें जरा ध्यान दो । क्योंकि अब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी शिवजीके पिनाक धनुषको चढाते हैं ॥ २१ ॥

पृथ्वी याति विनम्रतां फणिपतेर्नम्रं फणामण्डलं
बिभ्रत्क्षुभ्यति कूर्मराजसहिता दिक्कुञ्जराः कातराः।
आतन्वन्ति च बृंहितं दिशि भटैःसार्धं धराधारिणो
वेपन्ते रघुपुंगवे पुरजितः सज्यं धनुः कुर्वति ॥२२॥

अरे रे ! श्रीरघुनाथजीके त्रिपुरारि (महादेवजी) के धनुषको सम्हालते ही-पृथ्वी धसकसी गई उस पृथ्वीको धारनेवाले सर्पराज शेषनागजीके फणोंका मण्डल लचकगया, कूर्मराज सहित दिग्गज घबडाकर डामाडोल होगये और चिंघार शब्द करने लगे तथा सब दिशाओंमें पृथ्वीको धारनेवाले राजाओंके साथ सब पर्वत काँपगये२२

तदा च-

उत्क्षिप्तं सह कौशिकस्य पुलकैः सार्धं मुखैर्नामितं
भूपानां जनकस्य संशयधिया साकं समास्फालितम्।
वैदेहीमनसा समं च सहसाकृष्टं ततो भार्गवप्रौढाहंकृ-
तिदुर्मदेन सहितं तद्भग्नमैशं धनुः ॥ २३ ॥

(उस समय) ज्यों ही श्रीरामचन्द्रजीने धनुष ऊपरको उठाया कि– (प्रेमके कारण) विश्वामित्रके शरीरपर रोमांच खडे होगये। फिर ज्यों ही उसको नमाया कि–उसके साथ ही राजाओंके मुख भी (लज्जा और भयके कारण) नीचेको नमगये। तदनन्तर ज्यों ही उसके ऊपर टंकार दी कि उसके साथ ही राजा जनकका हृदय करुणासे भर आया, और चित्तका सन्देह दूर होयया। फिर ज्यों ही धनुषको धरकर खेंचा कि उस खिंचनेके साथही आनन्दमें भरा-हुआ जनककुमारीका मन उनकी ओरको खिंचगया और फिर उस शिवधनुषके टूटतेही (दिव्य दृष्टिवाले पुरुषोंने समझलिया कि आज श्रीरामचन्द्रजीकी वीरताने) परशुरामजीके परम अहंकारके तुर्मदको नष्ट करदिया ॥ २३ ॥

शंभौ यद्गुणवल्लरीमुपनयत्याकृष्य कर्णान्तिकं
भ्रश्यन्ति त्रिपुरावरोधसुदृशां कर्णोत्पलग्रन्थयः ।
स्वं चास्फालयति प्रकोष्ठकमिमामुन्मुच्य तासामहो
भिद्यन्ते वलयानि दाशरथिना तद्भग्नमैशं धनुः२४॥

शिवजी जिस धनुषके रोंदेको खेंचकर अपने कानोंतक ले गये थे तो त्रिपुरासुरके रणवासकी सुन्दर नेत्रवाली स्त्रियोंके कर्णोंके कमलों (कर्णफूलों) की गांठें खुलपडी थीं और जब उस रोंदेको छोडकर अपने पहुँचे पर उसकी टंकार दी थी उस समय उनही त्रिपुरासुरकी रानियोंसे कंकण टूट २ कर गिर पडे थे, आहा ! उसही प्रतापी धनुषको दशरथनन्दनने तोड मरोड डाला ॥ २४ ॥

अपि च–

तद्ब्रह्ममातृवधपातकिमन्मथारि-
क्षत्रान्तकारिकरसंगमपापभीत्या ।
ऐशं धनुर्निजपुरश्चरणाय नूनं
देहं मुमोच रघुनन्दनपाणितीर्थे ॥ २५ ॥

(और यह बात भी है कि) यद्यपि राजा जनककी प्रतिज्ञा केवल धनुषको उठाकर चढालेने मात्रकी ही थी. तथापि उस शिवजीके धनुषने मैं ब्रह्माजीका वध करनेवाले शिव और माताका वध करनेके पातकी परशुरामजीके हाथका संग होनेसे पापका भागी हुआ हूँ इस भयसे अपना प्रायश्चित्त करनेके लिये (अपने आपही) श्रीरघुनाथजीके हाथरूपी तीर्थमें अपना शरीर त्याग दिया ॥ २५ ॥

त्रुटच्चण्डीमधनुःकठोरनिनदस्तत्राकरोद्विस्मयं
त्रस्यद्वाजिरवेरमार्गगमनं शंभोः शिरःकम्पनम् ।
दिग्दन्तिस्खलनं कुलाद्रिचलनं सप्तार्णवोन्मेलनं
वैदेहीमदनं मदान्धदमनं त्रैलोक्यसंमोहनम् ॥२६॥

उस समय टूटते हुए शिवधनुषके घोर शब्दने ऐसा बडा भारी आश्चर्य कर डाला कि सूर्यदेवके घोडे घबडाकर मार्गको भूल किधरसे किधरहीको जाने लगे । समाधिमें स्थित शिवजीका शिर भी कांप उठा, दिग्गज चक्कर खाकर ठोंकरें खाने लगे । कुलाचल (पर्वत) डगमगाने लगे । सातों समुद्र उछल २ कर आकाशमें जा एक रूप होगये, मैथिली मोहित होगई, जितने राजे घमण्डसे अन्धे होरहे थे, उनका मद मर्दन होगया और अधिक क्या कहैं त्रिलोकी भर भौचकीसी होगई ॥ २६ ॥

रुन्धन्नष्ट विधेः श्रुतीर्मुखरयन्नष्टौ दिशः क्रोडयन्
मूर्तीरष्ट महेश्वरस्य दलयन्नष्टौ कुलक्ष्माभृतः ।
तान्यक्ष्णा बधिराणि पन्नगकुलान्यष्टौ च संपादय-
न्नुन्मीलत्ययमार्यदोर्बलदलत्कोदण्डकोलाहलः२७

श्रीरघुनाथजीके भुजबलसे टूटनेवाले धनुषका घनघोर शब्द चतुर्मुख ब्रह्माजीके आठों कानोंको भरकर गूँगा करता, आठों दिशाओंको गुञ्जारता—शिवजीकी आठों (भूमि, जल, अग्नि, आकाश, वायु, याज्ञिक, चन्द्रमा और सूर्य) मूर्तियोंको व्याकुल करता; आठों

(विजय, कुमुद, नील, निषध, हिमवान्, जयन्त, कालनिषध और वाहीक)कुल पर्ततोंको दहलाता और उन जगत्प्रसिद्ध आठों (नाग-सर्प, उरग आखुभुक्, दन्दशूक, विजिह्मग, माषिक, अमृतपालेय और शेष)सर्पकुलोंको नेत्रोंसे बहरा करता हुआ चारों ओर प्रकट होरहा है ॥ २७ ॥

गद्यम्--जामदग्न्यखटचद्भैरवधनुःकोलाहलामर्षमू-र्च्छितःप्रलयमारुतोद्धूतकल्पान्तानलवत्प्रदीप्तरोषानलः।

रामं प्रति परशुरामं सूचयन्-

यद्बभञ्ज जनकात्मजाकृते राघवः पशुपतेर्महद्धनुः ।
तद्धनुर्गुणरवेण रोषितस्त्वाजगाम जमदग्निजो मुनिः२८

(यह तो) टूटनेवाले शिवधनुषके घनघोर शब्दको सुन क्रोधसे विह्वल हुए, प्रलयकालके पवनसे प्रज्वलित होते हुए कल्पांतकालके अग्निके समान प्रचण्ड क्रोधरूप अग्निमें भरे परशुरामजी आगये। (श्रीरामचन्द्रजीको परशुरामजीका आगमन सूचित करते हुए) श्रीमहाराजने जो जानकीके लिये शिवजीका बडा भारी पिनाक धनुष तोडा है, उस धनुषके रोदेके शब्दसे क्रोधमें भरे हुए जमदग्निजीके पुत्र परशुराम मुनि आगये ॥ २८ ॥

चूडाचुम्बितकंकपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
भस्मस्निग्धपवित्रलाञ्छितमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम् ।
मौञ्ज्या मेखलया नियन्त्रितमधो वासश्च माञ्जिष्ठकं
पाणौ कार्मुकसाक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः॥२९॥

पीठपर दोनों ओर चोटीके स्पर्श करनेवाले कङ्कपक्षीके परोंसे युक्त दो माथोंको धारण कियेहुए, भस्मसे चिकना और पवित्र वक्षःस्थल दिपरहा है, काली मृगछालाको ओढे मुंजकी मेखलासे कमर कसे हुए मंजीठके रंगके अधोवस्त्रको पहिने और हाथमें धनुष रुद्राक्षकी पुही सुमरनी तथा पीपलका श्रेष्ठ दण्डा धारण किये हैं२९॥

पित्र्यमंशमुपवीतलक्षणं मातृकं च धनुरूर्जितं दधत् ।
यःससोमइवधर्मदीधितिःसद्विजिह्वइवचन्दनद्रुमः॥३०॥

जो परशुरामजी सूतके यज्ञोपवीत रूप पिताके अंशको और प्रतापी धनुषरूप माताके अंशको धारण किये हुए, चन्द्रमायुक्त सूर्यकी समान और सर्पोंसे लिपटे चन्दनवृक्षकी समान शोभित है ॥ ३० ॥

आजन्म ब्रह्मचारी पृथुलभुजशिलास्तम्भविभ्राजमान-
ज्याघातश्रेणिसंज्ञान्तरितवसुमतीचक्रजैत्रप्रशस्तिः ।
वक्षःपीठे घनास्त्रव्रणकिणकठिने संक्ष्णुवानः पृषत्कान्
प्राप्तो राजन्यगोष्ठीवनगजमृगयाकौतुकी जामदग्न्यः ३१

हे रघुनाथजी जो कि शिलाके खंभेरूप अपने भुजदण्डोंमें शोभायमान रोदेको टंकारनेकी ठेठोंकी पंक्तिसे अपने भूमण्डलपरको जीतलेनेकी गुणावलीको विज्ञापन दे रहे हैं और जो बडे अस्त्रोंके घावोंकी ठेठोंसे कठोर हुए अपने वक्षःस्थलरूपी शिलापर बाणोंको तीक्ष्ण किया करते हैं, वही राजाओंके समूहरूपवनके हाथियोंको मारनेके लिये मृगया (शिकार) के कौतुकी (शौकीन) बालब्रह्मचारी परशुराम जी आये हैं ॥ ३१ ॥

सोऽयं सप्तसमुद्रमुद्रितमहीपस्यार्जुनस्योद्धतं
छित्त्वा भैरवसंगरेऽतिजरठं कण्ठं कुठारेण यः ।
रेवापूरनिरोधहेतुगहनं बाहोः सहस्रं जवात्
काण्डं काण्डमखण्डयत्पितृवधामर्षेण वर्षीयसा॥३२॥

(फिर फरसेको देखकर) हे रघुनन्दनजी ! यह वही परशुराम है कि जब सहस्रबाहु अर्जुनने इनके पिताको मारडाला था तो अत्यन्त क्रोधमें भरेहुए इन्होंने अतिभयानक रणमें उद्धतताके साथ फरसेसे उस सात समुद्रोंसे घिरी हुई पृथ्वीका पालन करनेवाले सहस्रबाहु राजाके अतिकठोर कण्ठको काटकर फिर जिन भुजाओंसे उसने

रानियोंके साथ जलक्रीडा करनेमें नर्मदानदीका प्रवाह रोकादिया था । उन सहस्रों भुजाओंको बडी शीघ्रतासे काटकर टुकडे २ कर डाला था ॥ ३२ ॥

पुनः परशुं दृष्ट्वा–

येन त्रिःसप्तकृत्वो नृपबहलवसामांसमस्तिष्कपंक-
प्राग्भारेऽकारि भूरिच्युतरुधिरसरिद्वारिपूरेऽभिषेकः ।
यस्य स्त्रीबालवृद्धावधि निधनविधौ निर्दयो विश्रुतोऽसौ
राजन्योच्चांसकूटक्रथनपटुरटद्धोरधारः कुठारः ॥ ३३ ॥

इनका यह वह प्रसिद्ध फरसा है कि जिसने इक्कीस बार स्त्री बालक और बूढों तकके मस्तक काट लेनेपर गिरेहुए बहुतसे रुधिरकी नदीके राजाओंकी चरबी मांस और मज्जोंकी दलदलसे भरेहुए प्रवाहमें स्नान किया था और जिस फरसेकी डरावनी धार क्षत्रिय राजाओंके ऊंचे कन्धे रूप पर्वतोंको चीरनेमें चर चर शब्द करती है ३३

जामदग्न्यः क्रोधं नाटयित्वा–

केनेदं कुपितकालदन्तपत्रान्तरालमिच्छता धनुर्भग्नम् ।

रामः साशङ्कम्–

पार्वत्या निजभर्तुरायुधमिति म्लानं यदभ्यर्चित
निर्मोकेनच वासुकेन वलितं यत्सादरं नन्दिना ।
भव्यं यत्त्रिपुरेन्धनं धनुरिदं तन्मन्मथोन्माथिनः
सत्यंवं मयि रामनामनि भुविद्वेधा कृतं दृश्यते ॥ ३४ ॥

परशुरामजी–(क्रोधमें भरे हुए) क्रोधमें भरेहुए कालके दांत रूपी आरोंके बीचमें जानेकी इच्छा करनेवाले किस पुरुषने यह धनुष तोडा है ? श्रीरामचंद्रजी (शंकितसे होकर) हे मुनिजी ! शत्रुओंके हर्षका नाश करनेवाले जिस धनुषको पार्वतीजीने अपने पतिका शस्त्र होनेके कारण पूजा था, नन्दीगणने जिसको बडे आदरके साथ वासुकी सर्पकी केंचुलीमें लपेटकर रक्खा था. और

जिसने त्रिपुरासुरका ईंधन करडाला था, वही कामदेवको भस्म करने-वाले शिवजीका यह अति सुन्दर धनुष मुझ राम नामवालेके कारणसे दो टुकडे होकर भूतलपर पडा दीख रहा है ॥ ३४ ॥

जामदग्न्यः-(स्फीतफूत्कारप्रफुल्लनासापुटकोट-रोद्गीर्णप्रभूतगर्वानलोच्छलितकालकूटधूमस्तोमा-च्छादितदिङ्मण्डलः) अरे रे निजकुलकमलिनी-प्रालेयवर्ष दाशरथे कथमकाण्डमदान्तप्रचण्डदोर्द-ण्डकोदण्डखण्डचण्डिमाडम्बरेणापूरितं जग-त्त्रयम् । सकलवसुमतीमण्डलाखण्डलकुमुदिनीप-क्षलक्ष्मीहरणकिरणमालिनं न मां वेत्सि ? येनोक्तः कार्तवीर्यः-सहस्रबाहुस्त्वमहं द्विबाहुस्त्वं सैन्य-युक्तोऽस्यहमेक एव । त्वं चक्रवर्ती मुनिनन्दनोऽहं तथापि नौ पश्यतु तर्कमर्कः ॥ ३५ ॥

(परशुरामजी लम्बे २ श्वासोंके कारण फूले हुए नाकके पुडोंके छेदोंमेंसे निकलते हुए बडे भारी घमण्डकी कालकूट विष समान ज्वालाओंके धूएँके समूहसे दिशाओंके मण्डलको छाते हुए;) अरे रे ! अपने कुलरूप कमलपूर्ण सरोवरके लिये पालेकी वर्षा समान अर्थात् अपने वंशविध्वंसके कारण रूप-दशरथकुमार ! किस कारण असमयमें प्रचंड भुजदण्डोंकी धनुषको तोड डालनेकी उद्धतताके आडम्बरसे त्रिलोकी भरमें कोलाहल मचा दिया है । अरे सकल भूमण्डलके इन्द्रसमान राजे रूप कुमुदिनियों (चन्द्र-माके प्रकाशमें खिलनेवाले कमलों) के पक्षकी राज्य आदि रूप लक्ष्मीको हरलेनेमें सूर्य समान अर्थात् भूमण्डलभरके बडे २ राजोंके नाशक मुझको क्या तू नहीं जानता है ! जिस मैंने राजा कार्त्तवीर्य (सहस्रबाहु अर्जुन) से यह कहा था कि,

यद्यपि तेरी सहस्र भुजा हैं और मेरी दोही भुजा हैं, तू सेनाको साथमें लिये हुए हैं और मैं अकेलाही हूँ, तथा तू चक्रवर्ती राजा है, और मैं मुनिका पुत्र हूँ, तब भी आज हम दोनोंके कर्त्तव्यको सारा संसार देखै ॥ ३५ ॥

उत्कृत्योत्कृत्य गर्भानपि शकलयितुं क्षत्रसंतानरोषा-
दुद्दामस्यैकविंशत्यवधि विशसतः सर्वतो राजवंश्यान् ।
पित्र्यं तद्रक्तपूर्णप्रतिवचनमहो मन्दमन्दायमानक्रो-
धाग्नेः सर्वतो मेसखलुनविदितः सर्वभूतैः स्वभावः॥३६॥

अरे मूढ ! सकल प्राणियोंमें ऐसा कोई नहीं है, जो मेरे प्रभावको न जान चुका हो, परन्तु तूने अबतक नहीं जाना, यह बडे आश्चर्यकी बात है, अरे मैं वह हूँ, जिसने क्षत्रियोंकी सन्तानपर क्रोध आजानेसे बार २ पेटमेंसे गर्भोंको निकालकर उनके टुकडे २ करनेमें दयाको त्याग दिया फिर सकल स्त्री वृद्ध और युवा राजवंशी क्षत्रियोंको २१ बार यमराजके यहां पहुँचाया, तथा उनके रुधिरसे पितरोंको तृप्त करके जिसने अपनी क्रोधाग्निको शान्त किया, मैं वही क्षत्रियोंके रुधिरसे तिल कुश यव आदिका काम लेनेवाला परशुराम हूँ॥ ३६ ॥

अपि च-

आश्चर्यं कार्तवीर्यार्जुनभुजविपिनच्छेदलीलाविदग्धः
केयूरग्रन्थिरत्नोत्करकषणरणत्कारघोरः कुठारः ।
तेजोभिः क्षत्रगोत्रप्रलयसमुदितद्वादशार्कानुकारः
किं नप्राप्तःस्मृतिंते स्मरदहनधनुर्भंगपर्युत्सुकस्य३७

(और भी सुन)अरे राम! कामारि शिवके धनुषको तोडनेका चाव करते हुए तुझको क्या मेरे फर्सेका स्मरण न आया ? अरे ! यह वह फर्सा है, जिसने कृतवीर्यके पुत्र सहस्रबाहु अर्जुनकी भुजाओंके अपनी चतुरता दिखाईथी, और उन भुजाओंमें पहिरे हुए बाजूब-

न्दोंके जडावके रत्नोंकी कोरोंपर रगड लगनेसे जिसने घोर शब्द किया था, तथा क्षत्रियोंके वंशका प्रलय होनेपर जिसने अपने अपने तेजों करके प्रलयकालके १२ आदित्योंकी समता पाई थी३७॥

रामः सानुनयम्-

बाह्वोर्बलं न विदितं न च कार्मुकस्य
त्रैयम्बकस्य महिमा न तवापि सैषः।
तच्चापलं परशुराम मम क्षमस्व
डिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरूणाम् ॥ ३८ ॥

(रामचन्द्रजी विनयके साथ)-हे परशुरामजी! मैं आपकी भुजाओंके बलको नहीं जानता था, तथा शिवजीके धनुषकी और आपकी यह महिमा भी मुझे विदित नहीं थी, इस कारण मेरी चपलताको क्षमा करिये; क्योंकि बालकोंके अनुचित कार्यभी गुरुजनोंको आनन्ददायक होते हैं ॥ ३८ ॥

अपि च-

अयं कण्ठः कुठारस्ते कुरु राम यथोचितम्।
निहन्तुं हन्त गोविप्रान्न शूरा रघुवंशजाः ॥ ३९ ॥

(और भी सुनिये) यह मेरा कण्ठ है और आपका कुठार है, अब हे परशुरामजी! आपको जो उचित जँचे सो करिये क्योंकि महाराजा रघुके वंशमें उत्पन्न होनेवाले हम; गौ और ब्राह्मणोंका वध करनेमें अपनी शूरता नहीं दिखा सकते ॥ ३९ ॥

सवैदग्ध्यम्-

भो ब्रह्मन्भवता समं न घटते संग्रामवार्तापि नो
सर्वे हीनबला वयं बलवतां यूयं स्थिता मूर्धनि।
यस्मादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभुजा-
मस्माकं भवतो यतो नवगुणं यज्ञोपवीतं बलम् ४०

(चतुराईके साथ) हे ब्राह्मण ! हमारा आपके साथ तो संग्रामकी बात करना भी उचित नहीं है. क्योंकि आपके सामने हम सब हीन-बल हैं, और आप बलवानोंके भी मस्तक पर स्थित होनेवाले हैं। इसका कारण यह है, कि हम राजाओंका बलरूप यह धनुष एक ही गुण (रोदे) वाला दीख रहा है और आपका यज्ञोपवीत रूप बल तो नवगुण (नौतारका) है ॥ ४० ॥

जातः सोऽहं दिनकरकुले क्षत्रियः श्रोत्रियेभ्यो
विश्वामित्रादपि भगवतो दृष्टदिव्यास्त्रपारः ।
अस्मिन्वंशे कथयतु जनो दुर्यशो वा यशो वा
विप्रे शस्त्रग्रहणगुरुणः साहसिक्याद्बिभेमि ॥ ४१ ॥

ऐसा भी मैं क्षत्रिय महाराज सूर्यके वंशमें उत्पन्न हुआ तथा वेदके पारगामी गुरुजनों और भगवान् विश्वामित्रजीसे भी मैंने दिव्य अस्त्र-विद्याका पार पाया है, तथापि अब संसार इस वंशमें मुझको यश दे वा अपयश दे मैं तो ब्राह्मणपर शस्त्र उठानेके बडे भारी साहससे डरता हूँ ॥ ४१ ॥

परशुरामः (साभ्यसूयम्)

येन स्वां विनिहत्य मातरमपि क्षत्रास्रमध्वासवं
स्वादाभिज्ञपरश्वधेन विदधे निःक्षत्रिया मेदिनीं ।
यद्बाणव्रणवर्त्मना शिखरिणः क्रौञ्चस्य हंसच्छला-
दद्याप्यस्थिकणाःपतन्ति स पुनः क्रुद्धो मुनिर्भार्गवः४२

परशुराम (क्रोधमें भरकर) अरे ! जिसने अपनी माताको भी मारकर क्षत्रियोंके रुधिर रूपी मधुर आसवके स्वादको जाननेवाले कुठारसे पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर दिया और जिसके बाणके घावरूप मार्गमें होकर अब भी हंसोंके बहानेसे क्रौंच पर्वतकी हड्डियोंके कण गिरते हैं वही भृगुवंशी मुनि आज फिर क्रोधको प्राप्त है ॥ ४२ ॥

रामः-स्त्रीषु प्रवीरजननी जननी तथैव
देवी स्वयं भगवती गिरिजापि यस्यै ।
त्वद्दोर्वशीकृतविशाखमुखा-
वलोकव्रीडाविदीर्णहृदया स्पृहयांबभूव ॥ ४३ ॥

रामचन्द्र-महाराज सकल स्त्रियोंमें ऐसे परमवीरको उत्पन्न करनेवाली आपकी ही माता हैं क्योंकि जिसकी समताके लिये तुम्हारे भुजदण्डोंसे वशीभूत हुए स्वामिकार्तिकेयके मुखको देख लज्जासे हृदयमें दुःखित होनेवाली साक्षात् भगवती देवीने भी इच्छाकी थी॥४३॥

अपि च-

हारः कण्ठे विशतु यदि वा तीक्ष्णधारः कुठारः
स्त्रीणां नेत्राण्यधिवसतु सुखं कज्जलं वा जलं वा ।
सम्पश्यामो ध्रुवमपि सुखं प्रेतभर्तुर्मुखं वा
यद्वा तद्वा भवतु न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीराः ॥ ४४ ॥

(इसके सिवाय) मेरे कण्ठमें हार पडै, चाहे तीखी धारवाला कुठार, स्त्रियोंके नेत्रोंमें सुखके साथ कज्जल रहै चाहे जल (आंसू), निस्संदेह हमको सुख देखनेको मिले चाहे प्रेतराज यमका मुख, अब जो होना हो सो हो परन्तु हम ब्राह्मणोंके ऊपर अपनी परम वीरताको किसी प्रकार नहीं दिखा सकते ॥ ४४ ॥

परशुरामः तथापि (साभ्यसूयम्)

यच्चापमीशभुजपीडनपीतसारं
प्रागप्यभज्यत भवांस्तु निमित्तमात्रम् ।
राजन्यकप्रधनसाधनमस्मदीय-
मार्कर्षकार्मुकमिदं गरुडध्वजस्य ॥ ४५ ॥

परशुराम-(और भी क्रोधके साथ) क्योंकि यह धनुष पहिलेही शिवजीकी भुजाओंके पीडनसे सारहीन होरहा था इस कारण टूट गया और तू तो इसके टूटनेमें अचानक कारण होगया (हां यदि

वीरताका बडा भारी घमण्ड है तो) जो क्षुद्र राजाओंका नाश करनेमें साधन होरहा है ऐसे इस मेरे विष्णु भगवान्के दिये हुए धनुषको चढा ॥ ४५ ॥

रामः (धर्षणामर्षमूर्च्छितः)

पुरोजन्मा नाद्यप्रभृति मम रामः स्वयमहं
न पुत्रः पौत्रो वा रघुकुलभुवां च क्षितिभुजाम् ।
अवीरं वीरं वा कलयतु जनो मामयमयं
मया बद्धो दुष्टद्विजदमनदीक्षापरिकरः ॥ ४६ ॥

(रामचन्द्र धनुषको चढा लेनेपर मुनिका तिरस्कार होता है, और न चढानेसे मेरा पराजय होता है, इस विचारसे तमककर) अब आगेको परशुराम मेरी दृष्टिमें अग्रजन्मा नहीं है, और मैं भी रघुवंशी राजाओंका पुत्र वा पौत्र नहीं हूँ। अब यह कौतुक देखनेको आया हुआ भूलोक निवासियोंका समूह और यह स्वर्गवासी देवताओंका समूह मुझको वीर जाने चाहे कायर जाने अब तो मैंने दुष्ट ब्राह्मणको दण्ड देनेके संकल्पमें कमर कसली ॥ ४६ ॥

भूमात्रं कियदेतदर्णवमितं तन्निर्जितं हायते
यद्वीरेण भवादृशेन ददता त्रिःसप्तकृत्वो जयम् ।
डिम्भोऽयं नवबाहुरीदृशमिदं घोरं च वीरव्रतं
तत्क्रोधाद्विरम प्रसीद भगवन्नात्येव पूज्योऽसिनः ४७

हे भगवन् परशुरामजी ! (विजय होनेपर तीन लाभ होते हैं। हारनेवालेके ऐश्वर्यको ले लेना, अपने जयका प्रसिद्ध होना, या शत्रुका वध होना परन्तु आपका पराजय होनेमें कोईभी लाभ नहीं) क्योंकि यह समुद्रतककी पृथ्वी मात्र है ही कितनी, सो भी आपसे वीरने २१ वार जीती है, उसको हम आपसे लेलें यह कौन बात है। और वह जीती हुई पृथ्वीभी आपकी नहीं है: क्योंकि उसको आप

जीत जीतकर बराबर ब्रह्मणोंको दान करते रहे हैं, (इस कारण ऐश्वर्यकी तो आशाही नहीं और जय प्राप्त होनेकी भी आशा नहीं है, क्योंकि) मैं नई भुजावाला तरुण हूँ और आप बूढे हैं, तथा यह वीरोंका नियम ऐसा घोर है इसमें बूढे बालक आदि पर प्रहार करना अनीति समझी जाती है, इसकारण बूढेको जीतना पराजयही है । आप जातिसे ब्राह्मण होनेके कारण हमारे पूजनीय हैं । पूजनीयका वध करना भी नहीं बनता (इस प्रकार आपको जीतनेमें कोई लाभ नहीं दीखता है,) सो हे भगवन् ! क्रोधको त्याग प्रसन्न हूजिये, (जिससे कि हमको आपकी हत्याका अपयश न उठाना पडे) ॥४७॥

द्विः शरं नाभिसंधत्ते द्विः स्थापयति नाश्रितान् ।
द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नाभिभाषते ॥ ४८ ॥

रामचन्द्र बाण दो बार नहीं चढाता (अर्थात् एक ही बाणसे शत्रुका नाश करसक्ता है) आश्रितोंको दो वार स्थापित नहीं करता (अर्थात् एकही बारमें अभय करदेता है) याचकोंको दो बार नहीं देता (अर्थात् एकही बारमें निहाल करदेता है) और दो प्रकारकी बात नहीं कहता (अर्थात् जो एक बार कहता है, बराबर उसीका पालन करता है) ॥ ४८ ॥

तदा सीतानाट्यम् ।

तच्चापमाकर्षति ताटकारावाकर्णमाकर्णविशाल-
नेत्रा । सामूयमैक्षिष्ट विदेहजासौ कन्यां किम-
न्यां परिणेष्यतीति ॥ ४९ ॥

(उस समय सीताजीकी दशाका वर्णन) ताडका शत्रु श्रीरामचन्द्रजीके कान तक उस धनुषको खैंचनेपर विशालनेत्रा इस सीताने इस कारण आवेशमें भरकर देखा कि क्या अब यह किसी दूसरी कन्याके साथ विवाह करेंगे (तात्पर्य यह है कि सीताजीने समझा कि यह स्त्रियोंपर निर्दयी होनेके कारण पहिले ताडका वध कर चुके हैं सो क्या शिवधनुषको चढाय मुझे वरकर भी अब जो परशुरामजीके

धनुषको चढ़ा रहे हैं तो क्या अब किसी दूसरी कन्याके साथ विवाह करके मुझपर भी निर्दयीपना दिखावेंगे ॥ ४९ ॥

रामनाट्यवर्णनम् ।

रामस्तदादाय धनुः सहेलं बाणं गुणे योज्य यदा चकर्ष । भाति स्म साक्षान्मकरध्वजः स्वर्गातिं प्रचिच्छेद च भार्गवस्य ॥ ५० ॥

(श्रीरामचन्द्रजीके नाट्यका वर्णन) उस समय श्रीरामचन्द्रजीने लीलाके साथ धनुषको उठा जब प्रत्यञ्चापर बाणको चढ़ाकर खैंचा तब साक्षात् कामदेवके समान शोभाको प्राप्त हुए, और उस बाणसे परशुरामजीकी स्वर्गतिको काट दिया ॥ ५० ॥

भार्गवः सानुनयम् ।

यः कार्त्तवीर्यस्य भुजासहस्रं चिच्छेद वीरो युधि जामदग्न्यः । स सायके रामकराधिरूढे ब्राह्मण्यदैन्यप्रणयी बभूव ॥ ५१ ॥

(परशुराम नम्रताके साथ) जिस जमदग्निकुमार वीर परशुरामने संग्राममें कार्तवीर्य अर्जुनकी सहस्र भुजाओंको काटा था, अब वही दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रके धनुषको चढ़ानेपर ब्राह्मणोंकी स्वाभाविक दीनताका प्रेमी हुआ ॥ ५१ ॥

यावद्धूर्जटिधर्मपुत्रपरशुक्षुण्णाखिलक्षत्रियश्रेणी-शोणितपिच्छिला वसुमती कोऽस्यामधास्यत्पदम् । त्रैलोक्याभयदानदक्षिणभुजावष्टम्भदिव्योदयो देवोऽयं दिनकृत्कुलैकतिलको न प्राभविष्यद्यदि ॥ ५२ ॥

यदि यह त्रिलोकीको अभय दान देनेमें दाहिने हाथका सहारा देनेवाले दिव्य मूर्ति सूर्यकुल तिलक श्रीरामचन्द्रजी अवतार न लेते तो क्षत्रियोंका नाश करनेमें शीघ्रता करनेवाले रुद्रभगवान्के शिष्य

परशुरामके कुठारसे छिन्नभिन्न हुई सकल क्षत्रियमण्डलीके रुधिरसे गीली हुई इस पृथ्वीमें कौन चरण रखसक्ता था ॥ ५२ ॥

रामः पश्चाज्जामदग्न्यचरणकमलयोर्निपत्य-

उत्पत्तिर्जमदग्नितः स भगवान्देवः पिनाकी गुरु-
र्वीर्यं यत्तु न यद्विरामनुपथं व्यक्तं हि तत्कर्मभिः ।
त्यागः सप्तसमुद्रमुद्रितमहीनिर्व्याजदानावधिः
सत्यब्रह्मतपोनिधे भगवतः किं किं न लोकोत्तरम् ५३॥

रामचन्द्र (अनन्तर परशुरामजीके चरणोंमें गिरकर) हे सत्य ब्रह्म और शारीरिक तपके निधान भगवन् ! आपमें ऐसी कौन बात है जो अलौकिक नहीं अर्थात् सबही अलौकिक है, आपका जन्म जमदग्नि ऋषिसे हुआ है, प्रसिद्ध भगवान् पिनाकधारी आपके गुरु हैं, और आपकी जिस वीरताका वाणियोंसे कहना नहीं बन सकता वह आपके कर्त्तव्योंसे ही प्रकट हो रही है, और आपने तो सातों समुद्रोंसे घिरी हुई सकल पृथ्वीको निष्कपट भावसे दानके द्वारा त्याग दिया ॥ ५३ ॥

सदयं परशुरामः ।

माता का न शिशोर्वचांसि कुरुते दासीजनोक्तानि या
कस्तातः प्रमदाप्रतारितमतिर्जानाति कृत्यं न यः ।
कश्चायं भरतश्रियामविधिना यो राजते दुर्नयो
व्यापेधार्थमधिज्यधन्वनि मयि श्रीरामभृत्ये स्थिते५४

परशुराम (दयामें भरकर) ऐसी कौनसी माता है जो दासीजनोंकी कही हुई अपने बालककी बातोंको पूरा नहीं करती ? ऐसा कौन पिता है जो स्त्रियोंसे अपनी बुद्धिको ठगाकर करने न करने योग्य कार्यको नहीं जानता है, और धर्मयुद्ध तथा विद्याके प्रभावसे होनेवाले अन्यायको दूर करनेके लिये धनुष चढाये रहनेवाले मुझ आपके सेवकके होते हुए भरतवंशी राजाओंका अन्याय कौन वस्तु है॥५४॥

ज्ञात्वावतारं रघुनन्दनस्य स्वकीयमालिङ्ग्य ततो-
ऽवगाढम् ॥ विन्यस्य तस्मिञ्जमदग्निसूनुस्तेजो
महत्क्षत्त्रवधान्निवृत्तः ॥ ५५ ॥

जमदग्निकुमार परशुरामजी रघुनन्दन रामचन्द्रजीको अवतार जानकर और उनको दृढताके साथ हृदयसे लगा फिर अपना बडा तेज उनमें रखकर क्षत्रियोंके वधसे निवृत्त हुए ॥ ५५ ॥

रामविवाहवर्णनम् ।

निःसाणमर्दलरसालगभीरभेरीझङ्कारतालरवका-
हलनादजालैः ॥ पूर्णं बभूव धरणीगगनान्तरालं
पाणिग्रहे रघुपतेर्जनकात्मजायाः ॥ ५६ ॥

(श्रीरामचन्द्रजीके विवाहका वर्णन) श्रीरामचन्द्रजीके साथ जनकीजीका विवाह होते समय पृथ्वी आकाशका मध्यभाग निसान ढोल रसाल नामक बाजोंके शब्द और घहराते हुए नगाडोंके शब्दसे मिले हुए अनेको बाजोंके शब्दोंसे भरगया ॥ ५६ ॥

रामे श्यामे सकामे स्पृशति जनकजापाणिपद्मं प्रदत्तं
पित्रा नेत्रालिपद्मे प्रवरपुरवधूमण्डलानां मुहूर्तं ।
तत्पाणिस्पर्शसौख्यं परमनुभवती सच्चिदानन्दरूपं
तत्रासीद्बाणभिन्ना रमणरतिपतेर्योगनिद्रां गतेव ॥५७॥

जिस समय पिता जनकजीके दिये हुए जानकीके करकमलको श्यामसुन्दर सकाम श्रीरामचन्द्रजीने स्पर्श किया उस क्षणमें देवताओंकी स्त्रियोंके कमलनयन खिल उठे और सच्चिदानन्द श्रीरामचन्द्रजीके हाथका स्पर्श होनेके परम सुखको अनुभव करती हुई सीताजी सकल जगत्को रमण करानेवाले कामदेवके बाणसे बिंधकर योग निद्राको प्राप्त हुईसी होगईं ॥ ५७ ॥

वैवाहिकं कुशिकनन्दनजामदग्न्य
वाल्मीकिगौतमवसिष्ठपुरोहिताद्यैः ।
रामो विधिं सह समाप्य सलक्ष्मणस्तै-
रानन्द्यजनकजां स्वपुरं जगाम ॥ ५८ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके जानकीस्वयंवरो नाम प्रथमोऽङ्कः ॥ १ ॥

लक्ष्मण, सहित श्रीरामचन्द्रजी विश्वामित्र, परशुराम, वाल्मीकि, गौतम, वसिष्ठ और पुरोहित शतानन्दके द्वारा विवाहकी विधिको समाप्त करके जनककुमारीको आनन्दित करते हुए अपनी अयोध्यापुरीको चले गये ॥ ५८ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटकभाषाटीकायां जानकी स्वयंवर नामक
प्रथम अङ्क समाप्त ।

द्वितीयोऽङ्कः ।

प्राप्यायोध्यां स्वजनपरमोत्साहसंभावनाभि-
र्नत्वा मूर्ध्नोऽखिलगुरुजनं सीतया लक्ष्मणेन ॥
रामो यामत्रयमपि कथं मारनाराचभिन्नो
नीत्वा सीतां किमिति तुरगांस्ताडयामास दण्डैः १॥

श्रीरामचन्द्रजी अपने कुटुम्बियोंके परम उत्साहके आदरोंके साथ अयोध्यामें पहुँचकर तथा सीता और लक्ष्मणको साथ लिये सकल गुरुजनोंको मस्तकसे प्रणाम कर और कामदेवके बाणोंसे विद्ध होनेके कारण किसी प्रकार दिनके तीन पहरोंको बिताकर सीताजीको लिये हुए अश्वशालामें गये और तहां दण्डोंसे घोडोंको ताडने लगे ॥१॥

सर्वलक्षणोपेतान्देवभूपालयोग्यान्मेदुरमन्दुरायां
तुरगानवलोक्य मारज्वराकुलितचित्तभ्रान्त्या वधू-
पुत्रयोर्मङ्गलावलोकनायागतस्य भगवतस्तरणेः
किरणमालिनस्तुरगा इमे स्वभावतेजस्विनस्त-

त्ताडनमसोढारस्ताडिताः पुनःपुनर्भगवन्तं भास्करं द्रुतगत्यास्ताचलं नयन्त्विति बुद्धा दाशरथिर्जनकपुत्री च दण्डाघातैस्तुरगांस्ताडयामास निशायां प्रौढायां शीघ्रमावयोः संगमो भवत्वित्यभिप्रायः ।

सकल लक्षणोंसे युक्त देवता और राजाओंके योग्य घोडोंको चित्र लिखित घुडसालमें देखकर, कामदेवकी पीडाके कारण व्याकुल हुए चित्तकी भ्रान्तिसे, पुत्रवधू और पुत्रका मङ्गल देखनेके निमित्त आये हुए भगवान् सूर्यके स्वभावसेही तेजस्वी यह घोडे इनके ताडनको न सहते हुए बार २ ताडित होकर भगवान् भास्करको शीघ्रतासे अस्ताचलको प्राप्त करदेंगे, ऐसा जानकर दशरथकुमार और जानकीजी दंडोंके प्रहारसे घोडोंको प्रहारने लगे, अभिप्राय यह था कि–शीघ्रही प्रौढरात्रिमें उन दोनोंका समागम हो ।

अस्तं याते मुकुलनलिनीबान्धवे सिन्धुपुत्रे
प्राचीभागे प्रमदमुदिते पक्वनारिङ्गपिङ्गे ।
रामं कामं गुरुजनगिरा मन्दिरं सुन्दरं स्वं
रम्भोरुस्तं जनकतनया नन्दयन्ती जगाम ॥ २ ॥

मुँदी हुई नलिनीको खिलानेवाले सूर्यके अस्त होनेपर और पूर्वभागमें पकी हुई नारंगीके समान पीले वर्णके चन्द्रमाके उदय होनेपर सास आदि गुरुजनोंके कहनेसे इच्छा करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको आनन्दित करती हुई रम्भोरु जनककुमारी अपने सुन्दर मन्दिरमें गई॥२॥

प्राचीभागे सरागे तरणिविरहिणि क्रान्तमुद्रे समुद्रे
निद्रालौ नीरजालौ विकसितकुमुदे निर्विकारे चकोरे ।
आकाशे सावकाशे तमसि शममिते कोकलोके सशोके
कंदर्पेऽनल्पदर्पे वितरति किरणाञ्छर्वरीसार्वभौमः ॥३॥

सूर्यकी वियोगिनी पूर्वदिशाके लालीयुक्त होनेपर, समुद्रके वेलाको त्यागनेपर, कमलोंके मुँद जानेपर, कुमुदोंके खिलनेपर, चकोरके प्रसन्न होनेपर, आकाशके अवकाश पानेपर, अन्धकारके शान्त होनेपर, चकोरोंके समूहके शोकयुक्त होनेपर रात्रिका चक्रवर्ती राजा चन्द्रमा अपनी किरणोंको डालता है ॥ ३ ॥

भविष्ये रामशापेत्यन्तनिकटवर्तिनि कोकलोका-
नामकस्मान्महोत्पातनिमित्तं पार्श्वस्थितानामपि
प्रियाणामनवलोकतः शोकसंभवः ॥

होनहार रामके शापके अत्यन्त निकटवर्ती होनेपर चकवोंके समूहको अकस्मात् महान् उत्पातका कारण, समीपमें स्थित भी प्रियजनोंको न देखनेसे शोक उत्पन्न हुआ ।

स्वैरं कैरवकोरकान्विदलयन्यूनां मनः खेदय-
न्नम्भोजानि निमीलयन्मृगदृशां मानं समुन्मूलयन्।
ज्योत्स्नां दन्दलयंस्तमः कवलयन्नम्भोधिमुद्वेलयन्
कोकानाकुलयन्दिशो धवलयन्निन्दुः समुज्जृम्भते४

अपनी इच्छानुसार चन्द्रविकाशी कमलोंकी कलियोंको खिलाता, तरुण स्त्री पुरुषोंके मनको सन्ताप देता, कमलोंको मूँदता मृगनयनियोंके मानका उखाडता, चांदनीको छिटकाता, अन्धकारको ग्रसता, समुद्रको झकोरता, चकवोंको व्याकुल करता, और दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ चन्द्रमा उदयको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

अद्यापि स्तनतुङ्गशैलशिखरे सीमन्तिनीनां हृदि
स्थातुं वाञ्छति मान एष धिगिति क्रोधादिवालोहितः।
उद्यद्दूरतरप्रसारितकरः कर्षत्यसौ तत्क्षणात्
फुल्लत्कैरवकोशनिःसरदलिश्रेणी कृपाणं शशी ॥ ५ ॥

मेरा उदय होनेपर भी यह मान स्तनरूप ऊँचे शिखरवाले स्त्रियोंके हृदयमें बैठना चाहता है, इसको धिक्कार है। इस प्रकार क्रोध करके लाल २ हुआ और उदय होती हुई बडी २ किरणें रूप हाथोंको बढाता हुआ यह चन्द्रमा उदय होतेही खिलनेवाले चन्द्रविकासी कमलोंकी कलीरूप म्यानोंमेंसे निकलती हुई भौरोंकी पंक्ति रूप तलवारको खैंच रहा है ॥ ५ ॥

यातस्यास्तमनन्तरं दिनकृतो वेषेण रागान्वितः
स्वैरं शीतकरः करं कमलिनीमालिङ्गितुं योजयन् ।
शीतस्पर्शमवाप्य संप्रति तया युक्ते मुखाम्भोरुहे
हास्येनैव कुमुद्वतीवनितया वैलक्ष्यपाण्डूकृतः ॥६॥

अथवा अस्तको प्राप्त हुए सूर्यके वेष करके लाल हुआ स्वच्छन्द विचरनेवाला यह चन्द्रमा कमलिनीको आनन्दित करनेके निमित्त युक्ति रचता हुआ शीत स्पर्शको पाकर इस समय उसके मुखरूपी पुष्पको मूँद लेनेपर कुमुदिनी रूप अपनी स्त्री करके खिलने रूप हास्यके द्वाराही दिये हुए सलाहनेकी अधिक लज्जासे पीला पड-गया है ॥ ६ ॥

कर्पूरैः किमपूरि किं मलयजैरालेपि किं पारदै-
रक्षालि स्फटिकान्तरैः किमघटि द्यावापृथिव्योर्वपुः।
एतत्तर्कय कैरवक्लमहरे शृङ्गारदीक्षागुरौ
दिक्कान्तामुकुरे चकोरसुहृदि प्रौढे तुषारत्विषि ॥७॥

चन्द्र विकाशी कमलोंके परिश्रमको हरनेवाले, शृंगारकी रचना करनेमें चतुर, दिशारूप स्त्रीके दर्पण समान और चकोरके मित्र वफके समान श्वेतकान्तिवाले चन्द्रमाके पूर्णरूपसे प्रकाश करनेपर आकाश और पृथ्वीका शरीर क्या कपूरकी धूलियोंसे भर गया ? क्या चन्दनोंसे लिप गया ? क्या पारेसे धो दिया गया ? अथवा बिल्लोरकी शिलाओंसे जड दिया गया ॥ ७ ॥

अमृतममृतरश्मेर्मण्डलस्यानुभूय
द्विजचतुरचकोरप्रीतिरङ्गारकेषु ।
प्रभवति भवदीया चेद्विधातुर्विधानं
तदिह पुनरपि स्यात्कोऽन्यथाकर्तुमीशः ॥ ८ ॥

अरे पक्षियोंमें चतुर चकोर ! यदि अमृतमय किरणोंवाले चन्द्रमण्डलको अमृतका स्वाद लेकर भी तेरी प्रीति अंगारोंमें होती है तो इस जगत्में विधाताके कर्तव्यको फिर उलटनेके लिये कौन समर्थ होसक्ता है ॥ ८ ॥

चक्रक्रीडाकृतान्तस्तिमिरचयचमूस्फारसंहारचक्रं
कान्तासंहारसाक्षी गगनसरसि यो राजते राजहंसः ।
सम्भोगारम्भकुम्भः कुमुदवनवधूबोधनिद्रादरिद्रो
देवः क्षीरोदजन्मा जयति रतिपतेर्बाणनिर्वाणशाणः९॥

अब पिंजरेमें बैठी हुई मन्दिरमेंकी मैना सखियोंके अपने २ स्थानमें जानेके लिये आशीर्वाद पढती है, चकवोंकी क्रीडाको यमराज रूप अन्धकारके समूहकी सेनाके विस्तारका नाश करनेके लिये चक्ररूप, स्त्रियोंकी पीडाका साक्षी सम्भोगके आरम्भका, सूचक चन्द्रविकाशी कमलोंके वनरूप वधूको जगानेके कारण निद्रा न देनेवाला कामदेवके बाणोंको तीखा करनेका सानरूप अथवा कामदेवके बाणोंको छोडनेमें सहायता करनेवाला क्षीरसमुद्रसे उत्पन्न हुआ चन्द्रमा आकाशरूप सरोवरमें राजहंसकी भाँति शोभा पाता है वह जयको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

इत्याकर्ण्य चन्द्रमण्डलशाणे शाणोत्तीर्णो रतिपतेर्बाणो जानकीरामचन्द्रयोर्वक्षःस्थले निपतति, इति श्लोकाभिप्रायमवगम्य निष्क्रान्तः सर्व आलिजनः । अत्रापि

तरुणरात्रौ शुकसारिकादीनां पक्षिणां मधुरस्वरैर्मदनोर्मिः संसूचिता ॥

रामः-

अङ्के कृत्वा जनकतनयां द्वारकोटेस्तलान्तात्
पर्यङ्काङ्के विपुलपुलकां राघवो नम्रवक्त्राम् ।
बाणान्यच्च प्रवदति जनः पञ्चबाणोऽप्रमाणै-
र्बाणैः किं मां प्रहरति शनैर्व्याहरन्ती जगाम ॥१०॥

ऐसा सुनकर चन्द्रमण्डलरूपी सानसे तेज हुआ कामदेवका बाण जानकी और श्रीरामचन्द्रके वक्षःस्थलमें पडता है, ऐसे श्लोकके अभिप्रायको समझ कर सकल सखियोंका समूह तहाँसे चलागया ऐसी तरुण रात्रिमें भी तोते मैना आदि पक्षियोंकी मीठी कूकोंसे कामदेवकी तरंग सूचित की ।

राम-जिनका शरीर रोमाञ्चित होरहा है, और मुख नीचेको नम रहा है; ऐसी जानकीको द्वारकी दहलीजसे गोदमें भरकर रघुनाथजीने पलंग पर पहुंचाया । संसार कामदेवके पाँच बाण कहता है, परन्तु वह मुझको असंख्य बाणोंसे क्यों प्रहार कर रहा है, ऐसा धीरेसे कहती हुई जानकी भी चली गई ॥ १० ॥

गाढंगाढं कमलमुकुलं पुण्डरीकाक्षवक्षः-
पीठं काठिन्यमपि कुचयोर्जानकी मानकीर्णा ।
पूर्णा कामैः शिथिलमनिलस्यागमायाचकार
नीतं स्फीतं सदयहृदयं स्वामिनालिङ्ग्य मत्वा ११॥

और मुझको स्पर्श न करो, मुझको स्पर्श न करो इस प्रकार कहने लगी । मानको करनेवाली और कामदेवके आवेशोंसे भरी हुई जानकी अतिगाढ आलिङ्गनके समय कमलनेत्र श्रीरामचन्द्रजीके वक्षःस्थल रूप शिलाको कमलके समान कोमल और अपने स्तनोंकी काठिनताको मानकर पवन आनेके लिये हृदयको शिथिल करती

दिग्भागो धूसरोऽभूदहनि बहुतरस्फारताराः स्फुरन्ति
स्वर्भानोर्भानवीयं ग्रहणमसमये रौधिरी बिन्दुवृष्टिः ।
मध्याह्नोर्ध्वास्यकोशश्वगणरुतमतिस्फीतफेरुप्रचारो
वारंवारं गभीरप्रलय इव महाकालचीत्कारघोरः ॥ २ ॥

दिशाओंका मध्यभाग धुमेला-होगया दिनमें ही बडे २ तारे चमकने लगे । असमयमें राहुसे सूर्यका ग्रहण होने लगा, रुधिरकी बूंदोंकी वर्षा होने लगी, मध्याह्नकालमें कुत्ते ऊपरको मुख करके रोने-लगे । गीदड अधिकताके साथ इधर उधर फिरने लगे । वारंवार घोर प्रलयकी समान महाकालका घोर चीत्कार शब्द होने लगा ॥ २ ॥

कैकेयी-(आत्मगतम्)

प्रातः किलमद्वाग्बन्धकालस्तर्हि द्रुतं राजानं भरतराज्यं प्रार्थयामि न खलु कालक्षेपः श्रेयसे (रहसि उपगम्य प्रकाशं) राजन्नमंगलीरियं वधूर्यतोऽस्या आगमनमात्रेण महोत्पाताः सम्भवन्तीति ।

तानुत्पातानवेक्ष्य क्षितिपमथ दशस्यन्दनं क्रन्दयन्ती
लोकाञ् शोकानलौघैः शिव शिव तरसा भस्मसात्कुर्वतीव ॥ कैकेयी वाचमूचे निखिलनिजकुलांगारमूर्त्तिः
ससीतः शान्त्यै पुत्रस्य राज्यं भवतु वनमभिप्रेष्यतामेष रामः ॥ ३ ॥

कैकेयी (अपने मनमें) ओः मेरा अपनी वाणीसे महाराजको बाँध लेनेका समय आय पहुँचा,तो अब शीघ्र ही महाराजसे भरतकुमारके लिये राज्यको माँगूँ । निस्संदेह अब देर करनेमें भलाई नहीं है (एकान्तमें) वधू सीता सुलक्षणा नहीं है, क्योंकि, इसके मात्रसेही कैसे बडे २ उत्पात होरहे हैं, उन उत्पातोंको देख राजा दशरथको विलाप करती हुई हे शिव ! हे शिव ! सकल लोकोंको मानो शोक-

रूपी अग्निके समूहोंसे भस्म करती हुई अपने सकल कुलको अङ्गारकी मूर्त्तिके समान रानी कैकेयी इस बचनको कह उठी कि, यह रामचन्द्र उत्पातोंसे होनेवाले दोषोंकी शान्तिके लिये कुलक्षण सीता सहित वनको चलें जायँ और मेरे पुत्रको राज्य हो ॥ ३ ॥

दशरथः सकरुणस्त्रीवचनस्वीकरणं मरणोत्साहं नाटयन्महतीं मूर्च्छामासाद्य धरणीतलमुपगतः कथमपि चेतनामुपलभ्य—

रामं कामाग्रजमिव वनं प्रस्थितं वीक्ष्य शक्तो धर्त्तुं प्राणान् शिव शिव कथं तान्विहायाथ वाहम् ।
निर्मुक्तः स्यां वचनमनृतं तत्पुनर्नान्यथा मे भूयाद्भूयस्तदनु वचनं हा बभाषे तथेति ॥ ४ ॥

दशरथ (बडी करुणाके साथ स्त्रीके वचनको स्वीकार करना रूप मरणका उत्साहसा दिखाते हुए बडी भारी मूर्छाको प्राप्त होकर भूतलपर गिरपडे । तदनन्तर बडी कठिनतासे सावधानी पाकर) कामदेवके बडे भाईसे परम सुन्दर श्रीरामचन्द्रजीको वनको जाते हुए देख हाय ! हाय ! मैं अपने प्राणोंको कैसे रख सकूंगा और प्राणोंके न छोडकर भी तो मैं झूंठा होजाऊँगा । नहीं नहीं ! मेरा वचन झूँठ नहीं होना चाहिये, (कुछ देर विचार करनेके अनन्तर) हाय ! हाय ! ! अच्छा कैकेयी ! जैसा तूने कहा है वैसाही हो (अर्थात् राजा दशरथने विचारा कि यदि कैकेयीका कहना मानता हूँ तब रामके वियोगसे प्राण जाते हैं और कहना नहीं मानता हूं तो मिथ्या भाषण होता है चाहे प्राण चले जायँ परन्तु मिथ्याभाषण ठीक नहीं—" रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्राण जाहिं पर वचन न जाई । " ऐसा विचार कैकेयीका कहना मान लिया ॥ ४ ॥

रामभरतौ स्वं स्वं कालमधिगम्य हर्षशोकौ नाट्यन्तौ गुरोर्गिरा जटावल्कलच्छत्रचामरधारिणौ वनप्रस्थानरा-

ज्याभिषेकारंभाय राजानं दशरथं नमस्कर्त्तुमवतरतः ।

तत्र भरतः-

हा तात मातरहह ज्वलितानलो मां
कामं दहत्वशनिशैलकृपाणबाणः ।
मन्थन्तु तान्विसहते भरतः सलीलं
हा रामचंद्रपदयोर्न पुनर्वियोगम् ॥ ५ ॥

रामचन्द्र और भरत अपने २ समयपर रंगभूमिमें आकर हर्ष और शोकका भाव दिखाते हुए अर्थात् जब राजा दशरथने कहा कि रामचन्द्र राज्य न पाकर बनको जाँय और राज्यके अनधिकारी भरत राज्य पावें, उस समय रामचन्द्र वन जानेमें हर्ष और भरतजी उनके वियोगके कारण शोकका भाव दिखाते हुए महाराज दशरथको प्रणाम करनेके लिये आये। उस समय आपने पिता महाराज दशरथकी आज्ञासे जटा और वल्कल रूप छत्र और चामरको धारण किये रामचन्द्र और भरत दोनोंही वन गमन रूप राज्याभिषेकके लिये उद्यत हुए, उस समय भरत-

हा पितः ! हा मातः ! हाय हाय ! चाहे जलती हुई अग्नि मुझे भलेही भस्मकर डाले, वज्र, पर्वत, तलवार और बाण मुझको भलेही मथ डालें, भरत उनको सह सक्ता है; परन्तु हाय ! श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका वियोग नहीं सहा जायगा ॥ ५ ॥

मां बाधते नहि तथा गहनेषु वासो
राज्यारुचिर्जनकबान्धववत्सलस्य ।
रामानुजस्य भरतस्य यथा प्रियायाः
पादारविन्दगमनक्षतिरुत्पलाक्ष्याः ॥ ६ ॥

रामचन्द्र-मुझको अपना वनोंमें वसना वैसा कष्ट नहीं देता है, और पिता दशरथ तथा मुझमें प्रेम करनेवाले मेरे छोटे भ्राता भरतका

राज्यको स्वीकार न करना भी वैसा दुःखदायक नहीं है, जैसा कि कमलनयनी प्रिया जानकीका चरणकमलोंसे विचरनेका दुःख खटकता है ॥ ६ ॥

श्रुत्वा सुमन्त्रवचनेन सुतप्रयाणं
शापस्य तस्य च विचिन्त्य विपाकवेलाम् ।
हा राघवेति सकृदुच्चरितं नृपेण
निश्वस्य दीर्घतरमुच्छ्वसितं न भूयः ॥ ७ ॥

मन्त्री सुमन्तके कहनेसे पुत्रका वनको जाना सुनकर और तिस यज्ञदत्तके शापके परिपाकका समय विचारकर राजा दशरथने हा राम ! ऐसा एक बार कहकर लम्बा श्वास लिया और फिर श्वास भी न आया (अर्थात् एक बार हा राम ! कहकर महाराज दशरथने प्राण त्याग दिये) ॥ ७ ॥

मातस्तातः क्व यातः सुरपतिभवनं हा कुतः पुत्रशोका-
त्कोऽसौ पुत्रश्चतुर्णांत्वमवरजतया यस्यजातःकिमस्य ।
प्राप्तोऽसौ काननान्तंकिमितिनृपगिराकिंतथासौ बभाषे
मद्वाग्बद्धः फलं तेकिमिहतवधराधीशताहा हतोऽस्मि८

भरत–(अत्यन्त मूर्च्छित होकर विकलता दिखाते हुए)–मातः । पिताजी कहां गये ? कैकेयी–इन्द्रलोकको । भरत–हाय ! क्यों ? कैकेयी–पुत्रके शोकसे । भरत–चारोंमेंसे कौनसा पुत्र ? कैकेयी–जिनके तुम छोटे भाई जन्मे थे, वह राम । भरत–उन राम भैयाको क्या हुआ ? कैकेयी–वह वनमें पहुचे । भरत–क्यों ? कैकेयी–महाराजकी आज्ञासे । भरत–उन्होंने ऐसी आज्ञा क्योंदी ? कैकेयी–मेरे वचनोंके बँधे हुए थे इस कारण ! भरत–इसमें तुझे क्या फल मिला ? कैकेयी–तुम्हारा भूपति होना । भरत–हाय ! मैं मारा गया (इस प्रकार मूर्च्छित होकर फिर पृथ्वीपर गिरपडे) ॥ ८ ॥

गुरोर्गिरा राज्यमपास्य तूर्णं वनं जगामाथ रघुप्रवीरः।
नेषंगपृष्ठः शरचापहस्तस्तंलक्ष्मणोगामिव बालवत्सः९

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी पिताकी आज्ञासे राज्यको त्याग शीघ्रही पीठपर तरकस लगाय हाथमें धनुष बाण लिये वनको चले गये और जैसे गौके पीछे छोटासा बच्चा जाता है तैसेही श्रीलक्ष्मणजी भी उनके पीछे २ हो लिये ॥ ९ ॥

गुर्वाज्ञापरिपालनाय च वनं संप्रस्थितं राघवं
दृष्ट्वासौ त्वरिता विदेहतनया श्वश्रूजनं पृच्छति।
नत्वा कोसलकन्यकांघ्रियुगलं पश्चात्सुमित्रां पुन-
र्दृष्ट्वा हाशुकसारिकापिककुलंरामानुगाप्रस्थिता १०

पिताजीकी आज्ञाको पालनेके लिये श्रीरामचन्द्रजीको बनको जाते हुए देख यह विदेहकुमारी जानकी भी शीघ्रतासे अपनी सासोंके पास जाकर बूझने लगी, पहिले कौशल्याके दोनों चरणोंमें प्रणाम करके पीछे सुमित्राको भी प्रणामकर आज्ञा ली । हा ! फिर पासे हुए तोते, मैंना, कोकिला आदिकी ओरको निहारती हुई सीता अपने प्राणनाथ श्रीरामचन्द्रजीके पीछे २ चली गई ॥ १० ॥

रामे प्राप्ते वनान्तं कथमपि भरतश्चेतनां प्राप्य तातं
नीत्वा देवेन्द्रलोकं मुनिजनवचनादूर्ध्वदेहक्रियाभिः।
भ्रातुः शोकाज्जटावानजिनवृततनुः पालयामास नन्दि-
ग्रामे तिष्ठन्नयोध्यां रघुपतिपुनरागामिभोगाय वीरः११॥

श्रीरामचन्द्रजीके वनको चलेजानेपर भरतजी बडी कठिनतासे सावधानी पाकर वसिष्ठ आदि मुनियोंके कहनेसे पिता दशरथजीको और्ध्वदैहिक क्रियाओंके द्वारा स्वर्गलोकमें पहुँचाकर और भ्राता श्रीरामचन्द्रजीके वनसे आकर फिर भोगनेके लिये वीरताके साथ अयोध्याका शासन करते रहे ॥ ११ ॥

सद्यः पुरीपरिसरेषु शिरीषमृद्वी
गत्वा जवात्त्रिचतुराणि पदानि सीता ।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद्ब्रुवाणा
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम् ॥ १२ ॥

सिरसके फूलके समान कोमल अंगवाली सीता अयोध्या पुरीके संमीपकी भूमिमें शीघ्रतासे तीन चार पग चलकर ही इस प्रकार बारबार कहकर कि हे नाथ ! कितना मार्ग और चलना है श्रीरामचन्द्रजीके आंसुओंका प्रथम जन्म कराती हुई ॥ १२ ॥

श्रीरामः—

आदावेव कृशोदरी कुचतटीभारेण नम्रा पुन-
र्लीलाचंक्रमणं च नैव सहसे दोलाविधौ श्राम्यसि ।
स्रोतः काननगर्तनिर्झरसरित्प्रायानपूर्वानिमान्भू-
भागानपि भूतभैरवमृगान्वैदेहि यायां कथम् ॥ १३ ॥

राम--प्रथमसेही कृशोदरी है; तिसपर कुचतटोंके भारसे नमी जाती है इसकारण क्रीडाके लिये घरमेंभी नहीं फिर सक्ती थी, और झूला झूलनेके समय भी थकजाती थी, फिर जिनमें जहां तहां झरने, झाडी, गडहे और पहाडी नदियें पडती हैं, ऐसे प्राणियोंके डरानेवाले, पशुओंसे भरे इन भूमिके प्रदेशोंमें हे वैदेही ! कैसे चलसकेगी ॥ १३ ॥

अरुणदलनलिन्या स्निग्धपादारविन्दा
कठिनतनुधरण्यां यात्यकस्मात्स्खलन्ती ।
अवनि तव सुतेयं पादविन्यासदेशे त्यज निज-
कठिनत्वं जानकी यात्यरण्यम् ॥ १४ ॥

हे पृथ्वी ! यह लाल दलोंवाली कमिलिनीके समान चारों ओरसे चिकने चरणकमलवाली सीता भूमिकी कठिनताके कारण पग २ पर ठोकरें खाती हुई चलरही है, इस कारण तू अपनी पुत्रीके चरण रख-

नेके स्थानमें कठोरताको त्याग दे देख यह जानकी वनको जारही है ॥ १४ ॥

पथि पथिकवधूभिः सादरं पृच्छ्यमाना
कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेति ।
स्मितविकसितगण्डं व्रीडविभ्रान्तनेत्रं
मुखमवनमयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता ॥ १५ ॥

मार्गमें बटोहियोंकी स्त्रियोंने जब आदरके साथ यह पूछा कि, हे आर्ये । यह नीलकमलके समान नेत्रवाले तुम्हारे कौन हैं ? मुखको नीचा करती हुई जानकीने स्पष्टही उत्तर देदिया अर्थात् जब जानकीने लज्जाके कारण कुछ उत्तर न देकर नीचेको मुख करके मुस्करादिया तब स्त्रियें समझ गईं कि यह इनके पति हैं ॥ १५ ॥

घृणमसृणपादा गम्यते भूः सदर्भा
विरचय शिवजातं मूर्ध्नि घर्मः कठोरः ।
इति ह जनकपुत्री लोचनैरश्रुगर्भैः
पथि पथिकवधूभिर्वीक्षिता शिक्षिता च ॥१६॥

कमलकी कालियोंके समान कोमल चरणवाली तू कुशोंसे भरी हुई भूमिपर चलरही है मस्तकपर कठोर धूप है, इस कारण शिरपर छत्र और चरणोंमें पादुका धारणकर इस प्रकार पथिकोंकी स्त्रियोंने आँखोंमें आँसू भरकर जानकीकी ओरको देखा और शिक्षा दी॥१६॥

तत्र चित्रकूटे जानकी सकरुणं सबाष्पम्-

मूर्ध्ना बद्धजटेन वल्कलभृता देहेन पादानतिं
कुर्वाणे भरते तथा प्ररुदितं तारस्वरैः सीतया ॥
येनोद्विग्नविहङ्गनिर्गततरुर्निःसंमदः श्वापदः
शैलेन्द्रोऽपि किलैष भूरिभिरभूत्साश्रुःपयःप्रस्रवैः १७

(चित्रकूटपर पहुँच जानकी करुणाके साथ) मस्तकपर जटा बाँधे शरीरपर भोजपत्र लपेटे भरतजीने जब श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रणाम किया तब सीता इस प्रकार ऊँचे स्वरसे रोई कि, जिसके कारण वहांके वृक्षोंमेंसे पक्षी व्याकुल होकर डरगये, जंगली हिंसक जीव सुस्त होगये और यह चित्रकूट पर्वत भी मानो उसी दुःखसे बहुतसे जलके झरनेरूप आँसुओंकी धाराओंसे रोया ॥ १७ ॥

तत्रैव सुमित्रा लक्ष्मणं प्रति–

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ पुत्र यथासुखम्॥१८॥

(वहाँही भरतजीके साथ मिलनेको आई हुई सुमित्रा लक्ष्मणजीसे कहने लगी) कि, हे पुत्र ! अब तू रामचन्द्रजीको ही पिताके समान समझ, जानकीको मुझ माताके समान समझ और बनको ही अयोध्या मान, यथासुखके साथ यात्रा कर ॥ १८ ॥

पदकमलरजोभिर्मुक्तपाषाणदेहा--
मलभत यदहल्यां गौतमो धर्मपत्नीम् ।
त्वयि चरति विशीर्णग्रावविन्ध्याद्रिपादे
कति कति भवितारस्तापसा दारवन्तः ॥ १९॥

(भरतजीके लौटनेपर जब रामचन्द्रजी आगे बढ़े तब सीता कहने लगी कि हे नाथ !) जब कि, गौतमऋषिने शापसे शिलारूप हुई अहल्याको तुम्हारे चरणकमलोंकी रजोंसे पाषाण शरीर रहित हो दिव्यशरीरवाली पाया है तो अब जिसमें चारों ओर फैली पडी हैं, ऐसे इस विन्ध्याचलकी तलैटीपर तुम्हारे विचरनेके कारण न जाने कितने २ तपस्वी स्त्रीवाले हो जायँगे, अर्थात् जैसे पहिले शिलारूप भी अहल्या दिव्यशरीरवाली होगई, तैसे ही अब जिन २ शिलाओंपर आपके चरणोंका स्पर्श होगा वह भी तो दिव्य स्त्रियें बनकर ऋषियोंकी पत्नी होजायँगी ॥ १९ ॥

वैदेही अदृष्टराजमन्दिराद्बहिर्व्यवहारतया बालभावाच्च दैवयोगात् नौकासुखमनुभूय वने चरन्ती स्थलेऽपि भाराक्रान्ता सती नौः प्रचरतीति मन्यमानास्माभिरतः परमनयैव सुखप्रयाणं कर्त्तव्यं न पद्भ्यामिति बुद्ध्या राममधिकृत्याब्रवीत् ॥

उपलतनुरहल्या गौतमस्यैव शापा-
दियमपि मुनिपत्नी शापिता कापि वा स्यात् ।
चरणनलिनसङ्गानुग्रहं ते भजन्ती
भवतु चिरमियं नः श्रीमती पोतपुत्री ॥ २० ॥

(विदेहकुमारी जानकीने राजमंदिरसे बाहरका कोई व्यवहार नहीं देखा था,इस कारण तथा बालस्वभावसे जब दैववश वनवासके समय तमसा नदीको पार होते हुए नौकामें बैठकर चली तब थलमें भी बोझेसे लदी हुई नौका चलती होगी यह समझकर हम अब आगे भी इस नौकाहीमें बैठकर सुखसे यात्रा करेंगे,पैदल नहीं चलेंगे ऐसी बुद्धिसे रामचन्द्रजीकी ओरको कहने लगी) गौतम ऋषिके शापसे पाषाणका शरीर पानेवाली अहल्याके समान यह नौका भी यदि शापको प्राप्त हुई किसी मुनिकी स्त्री हो तो आपके चरणकमलके संगका उपकार मानती हुई चिरकाल तक हमको सुख देनेवाली होजाय अर्थात् आपके चरणसे शापमुक्त होकर उपकार मानती हुई हमको सर्वत्र लिये फिरेगी ॥ २० ॥

दृष्ट्वातिदैन्यं जनकात्मजाया-
स्तत्रैव रामः सह लक्ष्मणेन ।
गोदावरीतीरसमाश्रितेषु
वनेषु चक्रे निजपर्णशालाम् ॥ २१ ॥

लक्ष्मणजीके साथ जाते हुए रामचन्द्रजीने इस प्रकार जानकीकी अतिदीनताको देखकर वहाँ ही गोदावरीके तटकी भूमियोंके वनोंमें अपनी कुटी बनाली ॥ २१ ॥

एषा पंचवटी रघूत्तमकुटी यत्रास्ति पंचावटी
पान्थस्यैकघटी पुरस्कृततटी संश्लेषभित्तौ वटी ।
गोदा यत्र नटी तरंगिततटी कल्लोलचंचत्पुटी
दिव्यामोदकुटी भवाब्धिशकटीभूतक्रियादुष्कुटी२२

(लक्ष्मणजी उस कुटीकी रमणीयताको देखकर कह उठे कि हे रघुकुलमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ! बडके पांच वृक्षोंका झुण्डारूप यह पंचवटी हमारी कुटीके योग्यही है क्योंकि इन पांचों बटोंके वृक्षोंकी जडोंमें सरस्वतीके पांच कुण्ड हैं यहां बटोहियोंको जल छाया आदि मिलता है इसके दोनों और बडी सुन्दर भूमि है स्त्री पुत्रादिकी मायामें फँसेहुए पुरुषोंके क्लेशको दूर करनेवाली औषधमय वटिकारूप है इसके समीपमें ही गोदावरी नाचती हुई चली जारही है जिस गोदावरीके तटोंपर तरंगें उठरही हैं सोतोंमेंसे कल्लोलोंका शब्द होरहा है, पद्मकी गन्धकी तो यह गोदावरी मानो कुप्पी है, संसारसागरकी नौका है और प्राणियोंको साधारण कर्मोंके फलोंसे तो इसका मिलना ही कठिन है ॥ इस श्लोकका दूसरा अर्थ यह भी होसकता है कि-हे महाराज रामचन्द्रजी ! यह स्थान कुटी बनानेके योग्य ही है, क्योंकि यह पृथिवी जल, तेज, वायु, और आकाश रूप पांच तत्त्वोंकी नाश करनेवाली है, अर्थात् यहां आकर साधना करनेवाले पुरुषोंको फिर पाञ्चभौतिक शरीर धारण करना नहीं पडता है जहाँ रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द रूप इन्द्रियोंके विषयोंका जीतना सहजहीमें बन पडता है, मोक्षमार्गमें यात्रा करनेवालोंको यह पंचवटी अनुपम घटी अर्थात् विश्रामका स्थान है, यहांकी वेदका प्रचार करनेवाली मुनियोंकी सभा प्रसिद्ध है, जिस मुनिसभामें समिधा और कुशही सम्पत्ति मानीजाती है जो मुनि सभा ज्ञानदानके द्वारा स्त्री पुत्रादिकी ममताको काटनेमें वज्र समान है जो त्यागी जीवोंको तारनेमें तीर्थ-

मान है जिस मुनिसभाकी कुंजोंमें इधर उधर देवता विचरते हैं जो स्वाभाविक वासनाओंको काटनेवाली है इस कारणही संसारसे तारनेमें नौकारूप और बहुतसे पुण्योंके विना प्राणियोंको दुष्प्राप्य है॥ २२ ॥

क्रीडाकल्पवटं विसर्पितजटं विश्वाम्बुजन्मावटं
पिष्टाण्डौघघटं धृतांघ्रिशकटं ध्वस्तक्षमासंकटम् ।
विद्युच्चारुरुचाविधूतकपटं सीताधरालम्पटं
भिन्नारीभघटं विरुग्णशकटं वन्दे गिरां दुर्घटम्२३॥

(तदनन्तर मार्गकी थकावट दूर होनेपर जानकी कुटीकी रचनासे आनन्दित हो पुराणपुरुष श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करती है) देव मनुष्यादि अवताररूप क्रीडाके कल्पवृक्षरूप विश्वरूप शरीरको प्रकट करनेवाले, निर्लेपभावसे विश्वरूप कमलको प्रफुल्लित करनेके निमित्त सूर्यरूप, ब्रह्माण्डोंके समूहको चूर्ण करनेवाले केवल अपने चरणरूप अवलम्बको हृदयमें धारनेवाले, भक्तोंको संसारसे तारनेके निमित्त नौकारूप अतएव जिन्होंने शांतिशील अम्बरीष आदिके संकटको नष्ट किया, जिनके शरीरकी बिजलीकी समान सुंदर दमकनेवाली कान्तिसे मायाका आवरण दूर हो गया है, सीताके अधरके लोभी अर्थात् सीतारूप भक्तके मनोरथको पूर्ण करनेके लिये रामावतार धारनेवाले, तथापि जिन्होंने कामादि शत्रुरूप मतवाले हाथियोंके समूहोंको छिन्न भिन्न करडाला है ऐसे बडे २ दैत्योंका विशेषरूपसे नाश करनेवाले वाणीके अगोचर श्रीरामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करती हूँ ॥ २३ ॥

अथ मारीचः-

अतीतानागतवर्तमानत्रिकालदर्शनो लंकापतेराज्ञामासाद्य चिन्तयामास ।
रामादपि च मर्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि ।
उभयोर्यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः ॥ २४ ॥

(इसके अनन्तर बीते हुए होनहार और वर्तमान तीनों कालोंके वृत्तान्तको जाननेवाला मारीच लंकापति रावणकी आज्ञा पाकर विचारने लगा) यदि रावणकी आज्ञा मानकर पंचवटीमें जाता हूँ तो रामचन्द्रजीके हाथसे मरनाही होगा, और यदि आज्ञा टालकर नहीं जाता हूँ तो रावणके भी हाथसे मरनाही होगा, इस प्रकार जब दोनोंही तरफसे मरनाही है तो रामचन्द्रजी अच्छे हैं रावण नहीं, क्योंकि—रामचन्द्रजीके हाथसे मरनेपर परलोकमें मुक्तिकी प्राप्ति और इस लोकमें स्वामीके निमित्त प्राण जानेमें कीर्तिकी प्राप्ति होगी॥२४॥

सुललितफलमूलैस्तत्र कालं कियन्तं
दशरथकुलदीपे सीतया लक्ष्मणेन ।
गमयति दशकण्ठोत्कण्ठितप्रेरितं द्राक्
कनकमयकुरंगं जानकी संददर्श ॥ २५ ॥

सीता और लक्ष्मण सहित दशरथकुलदीपक श्रीरामचन्द्रजीने उस पंचवटीमें सुन्दर फल फूलोंसे विहार करते हुए कितनाही समय बितादिया तदनन्तर जानकीने उत्कंठाके साथ रावणके भेजे हुए सोनेके मृगको अचानक देखा ॥ २५ ॥

देहं हेममयं हरिन्मणिमयं शृङ्गद्वयं वैद्रुमा-
श्चत्वारोऽपि खुरा रदच्छदयुगं माणिक्यकान्तिद्युति।
नेत्रे नीलसुतारके सुविततेतद्भ्रूचलं प्रेक्षितं
तत्तद्रत्नमयं किमत्र बहुना सर्वाङ्गरम्यो मृगः॥२६॥

उस मृगका सारा शरीर सुवर्णका, दोनों सींग मरकत मणिके, चारों खुर मूंगोंके, दोनों ओठ मोतियोंकी कान्तिसे दमकते हुए, दोनों नेत्र सुन्दर नीली पुतली युक्त तथा अति विशाल थे, उस हिरनका चारों ओरको देखना अति चंचलतायुक्त था और वह सभी अंगोंमें रत्नमय था, इस विषयमें अधिक क्या कहैं वह मृग सभी अंगोंमें सुन्दर था ॥ २६ ॥

सांगं मायाकुरंगं द्रुतनिधननिशाचारिमारीचमग्रे
धावन्तं संचरन्तं क्षणमपि गहने जानकीयाचते स्म।
रामं कामाभिरामं निशितशरधनुर्धारिणं लक्ष्मणेन
क्षिप्रं तद्रक्षणायोल्लिखिततटभुवा सोऽप्यगात्तद्वधाय२७

इति हनुमन्नाटके मारीचागमनं नाम तृतीयोऽङ्कः ॥ ३ ॥

सकल अंगोंयुक्त मायासे मृगका रूप धारण करनेवाले प्रतिक्षणमें आगे आकर दौड़ते और बनमें विचरते हुए तथा शीघ्र ही जिसकी मृत्यु होनेवाली है, ऐसे मारीच राक्षसको जानकीने, कामदेवकी समान सुन्दर और तीखे धनुष बाणको धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीसे मांगा अर्थात् जानकी कहनेलगी कि हे नाथ! इस मृगका चर्म मुझे लादीजिये, तब श्रीरामचन्द्र भी तत्काल जानकीकी रक्षाके लिये, धनुषकी नोंकसे पृथ्वीपर रेखा खींचनेवाले लक्ष्मणजीके सहित उस मृगका वध करनेको चले गये ॥ २७ ॥

इति भाषाटीकामें मारीचागमन नामक तीसरा अंक समाप्त ३.

चतुर्थोऽङ्कः ।

आन्दोलयन्विशिखमेककरेण सार्धं
कोदण्डकाण्डमपरेण करेण धुन्वन् ।
सन्नह्य पुष्पलतया पटलं जटानां
रामो मृगं मृगयते वनवीथिकासु ॥ १ ॥

एक हाथके साथ बाणको घुमाते और दूसरे हाथसे धनुषपर टंकार देते तथा अधिक होनेके कारण जटाओंका जूडा बांधकर श्रीरामचन्द्रजी वनकी पहाडियोंमें हरिणको खोजते हैं ॥ १ ॥

हस्ताभ्यां समुपैति लेढि च तृणं न स्पृश्यतां गाहते
गुल्मान्प्राप्य निवर्तते किसलयानाघ्राय चाघ्राय च ।

भूयस्त्रस्यति पश्यति प्रतिदिशं कण्डूयते स्वां तनुं दूरं धावति तिष्ठति प्रचलति प्रान्तेषु मायामृगः ॥२॥

उस समय वह मायाका मृग कभी हाथसे पकडने योग्य स्थानपर आ पहुंचता है, कभी घास सूंघने लगता है, परन्तु हाथ नहीं आता है, कभी लताकुंजोंमें जा कोमल पत्तोंको सूंघ २ कर लौट आता है, फिर भयभीत होता है, और चारों दिशाओंकी ओर देखने लगता है, कभी अपने शरीरको खुजलाता है, कभी भागता है, कभी दूर खडा हो जाता है, और कभी इधर उधरको कतरा जाता है॥ २ ॥

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्पन्दने बद्धदृष्टिः पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद्भूयसा पूर्वकायम्। दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा पश्योद्विग्नप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ॥ ३ ॥

(रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीको दिखातेहुए) देखो भय्या यह मृग कैसी सुन्दरताके साथ ग्रीवाको फेरकर बार २ उछलता है, पीछेको देखता है, पीछे चलनेवाले मेरी ओर टकटकी लगाय बाण बिधनेके भयसे पिछले शरीरको मानो अगले शरीरमेंको सिकोडे लेता है, थकावटके कारण फले हुए मुखमेंसे गिरनेवाले आधे काटे हुए कुशोंसे मार्गको व्याप्त कर रहा है। घबडाकर कभी आकाशमें कुलाँचें भर रहा है, और कभी पृथ्वीपर चौकडियें भरने लगता है ॥ ३ ॥

बाणेन दिव्येन रघुप्रवीरस्ततो मृगं वक्षसि बद्धलक्ष्यः। विव्याध यावत्तरसातपस्वीदशाननस्तावदिहाजगाम४॥

तदनन्तर रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीने ज्योंही निशाना बाँधकर उस मृगकी छातीमें दिव्य बाणका प्रहार किया उसी समय उधर पंचवटीमें शीघ्रतासे तपस्वीका वेष धार रावण आपहुँचा ॥ ४ ॥

मारीचमृगयाव्यग्रे रामे प्राप्ते च रावणे ।
भयादिव कुरंगीणामस्याः पश्यामि लोचने ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके मारीचके शिकारमें लगजानेपर रावण पंचवटीके समीप आपहुँचा और सीताजीको देखकर मनमें कहने लगा कि इसके सुन्दर नेत्र तो भयके मारे कातर हुई मृगीके नेत्रोंकी समान प्रतीत होते हैं ॥ ५ ॥

सव्याहरद्धर्मिणिदेहि भिक्षामलंघयँल्लक्ष्मणलक्ष्मलेखाम्
जग्राह तांपाणितलेक्षिपन्तीमाकारयन्तींरघुराजपुत्रौ ६॥

वह रावण लक्ष्मणजीकी की हुई रेखाको न लांघकर बाहरसे ही कहनेलगा कि-हे अतिथि सेवा आदि धर्मको जाननेवाली नारि ! 'भिक्षां देहि' यह सुन ज्योंही सीता रेखासे बाहर होकर रावणके हाथमें भिक्षा देने लगी त्योंही रावण उठाकर ले गया उस समय सीता हा राम ! हा लक्ष्मण ! इस प्रकार बार बार पुकारती ही रह गई ॥ ६ ॥

रे रे भोः परदारचोर किमरेऽधीरं त्वया गम्यते
तिष्ठाधिष्ठितचन्दनाचलतटःप्राप्तो जटायुः स्वयम् ।
मुञ्चैनां पतिदेवतां न खलु चेन्मच्चंडतुंडांकुश-
क्रूरावस्करणव्रणासृगुरसः पास्यन्ति गृध्रास्तव॥७॥

मार्गमें जटायु ललकारकर-अरे नीच ! अरे परस्त्रीकी चोरी करनेवाले ! अरे क्यों घबडाया हुआ दौडा चला जा रहा है ? ठहर; मैं मलयाचल पर रहनेवाला जटायु आपहुंचा हूँ, इस पतिव्रताको छोड दे नहीं तो निस्संदेह मेरी चोंचरूप प्रचण्ड भालेके घोर प्रहारसे होनेवाले घावोंमेंसे निकलते हुए तेरे हृदयके रुधिरको गिद्ध पियेंगे ॥ ७ ॥

जन्म ब्रह्मकुले हरार्चनविधौ कृत्वा शिरःकृन्तनं
शक्तिर्वज्रिणि घोरदंडदलनव्यापारशक्तं मनः ।

हेलोल्लासितकेलिकन्दुकनिभः कैलास उत्पाटित-
स्तत्किं रावण लज्जसे न हरसे चौर्येणपत्नीं रघोः८॥

अरे ! ब्रह्मकुलमें तेरा जन्म हुआ, शिवजीकी पूजाकी विधिमें तूने अपना शिर काट काट चढाया, इन्द्रपर अपनी शक्ति दिखाई, वशमें न होनेवाले शत्रुओंको वशमें करनेमें अपना मन लगाया, तूने अनायासहीमें खेलनेकी गेंदकी समान बडे भारी कैलासपर्वतको उखाड लिया, अरे ! ऐसा बल होनेपर भी तू चोरी करके रघुनाथजीकी पत्नीको हरकर लिये जा रहा है, ऐसा करनेमें तुझे लज्जा क्यों नहीं आई ॥ ८ ॥

मैनाकः किमयं रुणद्धि पुरतो मन्मार्गमव्याहतं
शक्तिस्तस्य कुतः स वज्रपतनाद्भीतो महेंद्रादपि ।
तार्क्ष्यःसोऽपि समं निजेन विभुना जानातिमांरावणं
हा ज्ञातं सजटायुरेष जरसा क्लिष्टो वधं वांछति॥९॥

(रावण मन ही मनमें) क्या यह मैनाक बेखटके मेरे सामने आकर मार्गको रोक रहा है ? परन्तु उसकी इतनी शक्ति कहाँ, क्योंकि वह तो इन्द्रके वज्रप्रहारसे डरगया था, तो क्या यह गरुड है ? परन्तु गरुड भी अपने स्वामी विष्णुसहित मुझ रावणको जानता है, ओः ! जान लिया यह वह जटायु है जो बुढापेके कारण क्लेशित हो मरना चाहता है ॥ ९ ॥

मा भैषीः पुत्रि सीते व्रजति मम पुरो नैष दूरं दुरात्मा
रे रे रक्षः क्व दारान्रघुकुलतिलकस्यापहृत्य प्रयासि ।
चंच्वाक्षेपप्रहारत्रुटितघमनिभिर्दिक्षु विक्षिप्यमाणै-
राशापालोपहारं दशभिरपिभृशंत्वच्छिरोभिःकरोमि१०

जटायु–बेटी सीते ! भय न मान, यह दुष्टात्मा मेरे सामनेसे दूर निकलकर नहीं जा सकता अरे नीच राक्षस ! रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीकी स्त्रीको हरकर तू कहां जाता है, अरे ! चोंचोंके प्रहारोंसे

रगोंको तोडकर तेरे चारों ओर डुडकते हुए इन शिरोंका बलिपा-लोंको बलि दिये देता हूं ॥ १० ॥

अक्षं विक्षिपति ध्वजं दलयते मुह्णाति नद्धं युगं
चक्रं चूर्णयति क्षिणोति तुरगान् रक्षःपतेः पक्षिराट् ।
रुन्धन्गर्जति तर्जयत्यभिभवत्यालंबते ताडय-
त्याकर्षत्यवलुम्पति प्रचलति न्यंचत्युदंचत्यपि॥११॥

पक्षिराज जटायु-राक्षसपति रावणके रथके धुरेको तोडता है, ध्वजाको मरोडता है, बंधे हुए धुरेको कुचलता है, पहियोंको चूरा २ करता है, घोडोंको घायल करता है, रोककर गर्जता है, भय दिखाता ह, तिरस्कार करता है, मार्गमेंसे निकलने नहीं देता है, रावणके शरीरपर चोंटें करता: केशोंको खसोटता, वस्त्रोंको फाडता और अपने उडनेकी फुरती दिखाता हुआ रावणके प्रहारसे अपने शिरको बचालेता है, तथा उसके प्रहारको बचानेके लिये ऊपरको उडजाता है ॥ ११ ॥

क्रुद्धस्ततो दृढचपेटशिलातलेन
रक्षः पिपेष गहनेऽद्भुतपक्षिराजम् ।
ईषत्स्थितासुरपतद्भुवि राम राम
रामेति मन्त्रमनिशं निगदन्मुमुक्षुः॥ १२ ॥

तब अतिक्रोधमें भरेहुए राक्षस रावणने शिलाके प्रहारके समान हाथके एक ही दृढ चपेटसे उस अद्भुत पक्षिराज जटायुको उस वनमें मसलडाला, उस समय जटायु हृदयमें मोक्षपद पानेकी अभिलाषा रक्खेहुए कुछेक प्राण शेष रहनेपर हे राम ! हे राम ! हे राम ! इस मन्त्रको बार २ जपता हुआ भूतलपर गिरपडा ॥ १२ ॥

न मैत्री निर्व्यूढा दशरथनृपे राज्यविषया
न वैदेही भ्राता हठहरणतो राक्षसपतेः ।
न रामस्यास्येन्दुर्नयनविषयोऽभूत्सुकृतिनो
जटायोर्जन्मेदं वितथमभवद्भाग्यरहितम् ॥१३॥

(उस समय जटायु मन ही मनमें शोक करने लगा कि) हाय! मैंने तुम्हारे राज्यके पालनमें सहायता करूंगा, इस कथनके अनुसार राजा दशरथकी मित्रताको न निभाया, हठके साथ हर लेजाते हुए राक्षसपति रावणसे सीताकी रक्षा न करसका, और पुण्यात्मा श्रीरामचन्द्रजीका मुखचन्द्र भी मेरे नेत्रोंको प्राप्त न हुआ, हाय! मुझ अभागे जटायुका यह जन्म ही निरर्थक गया ॥ १३ ॥

हा राम हा रमण हा जगदेकवीर
हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम् ।
इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्ती-
मादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम ॥ १४ ॥

हा राम ! हा रमण ! हा संसारके एक वीर ! हा नाथ ! हा रघुपते ! मेरी सुधि क्यों नहीं लेते ! इस प्रकार बार बार विलाप करती हुई जानकीको लेकर राक्षसपति रावण आकाशमार्गसे चलागया ॥ १४ ॥

आकृष्यमाणाभरणानि मुक्त्वासैरध्वजी मारुतिमद्रि-
मौलौ । उवाच रामायसलक्ष्मणायवरायदेयानिस-
देवराय ॥ १५ ॥

हरी जाती हुई जनककुमारी सीताजीने शीघ्रतासे गहने उतार पर्वतके शिखरपर छोडकर हनुमान्‌जीसे कहा कि--यह मेरे गहने देवर लक्ष्मणके साथ आनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको दे देना ॥ १५ ॥

रामः शुष्के स्थाणौ दक्षिणे रटन्तं करटमवलोक्य
पुनरागच्छन्निजप्राणप्रयाणमेव मन्वानः क्षणं विश्रम्य--
मायाकुरंगं विनिहत्य रामो भ्रात्रा सहागत्य च पर्ण-
शालाम् । कोणत्रयेषु प्रसमीक्ष्य सीतां दृष्टश्चतुर्थो न
च शोकभीत्या ॥ १६ ॥

इति श्रीमद्धनुमन्नाटके सीताहरणं नाम चतुर्थोऽङ्कः ॥ ४ ॥

(इधर श्रीरामचन्द्रजी लोटतेमें दाहिनी और सूखे ठूंटपर बोलते हुए काकको देखकर अपने प्राण निकलेहुएसे मान क्षणभर विश्राम करके) मायारूपी मृगको मारकर भ्रातासहित आएहुए श्रीरामचन्द्रजीने पर्णशालाके तीन कोनोंमें सीताको ढूँढा शोकके भयसे चौथे कोनेको न खोजसके ॥ १६ ॥

इति भाषाटीकामें सीताहरणनामक चतुर्थ अंक समाप्त ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽङ्कः ।

रामः प्राणोत्क्रमणसमयादपि घोरतरं वियोगसमयमधिगम्य पर्णशालान्तरालमालोक्य कथमपि विदीर्णहृदयमार्गादुज्जिगमिषून्प्राणान्धारयंस्तदुत्तरीयमुपलभ्य जानकीं स्मरन्नरोदीत्-

द्यूते पणः प्रणयकेलिषु कण्ठपाशः
क्रीडापरिश्रमहरं व्यजनं रतान्ते ।
शय्या निशीथसमये जनकात्मजायाः
प्राप्तं मया विधिवशादिदमुत्तरीयम् ॥ १ ॥

रामचन्द्र प्राण निकलनेके समयसे भी अधिक दुःखदायक वियोगके समयको पाकर पर्णशालाके भीतर देख बडी कठिनतासे विदीर्ण हुए हृदयरूपी मार्गसे निकलकर जानेकी इच्छा करनेवाले प्राणोंको धारते हुए जानकीका दुपट्टा पाय स्मरण कर रोने लगे-जो द्यूतके समय दाँवपर लगाया जाता था-प्रेमकी क्रीडाओंमें कण्ठपाश बनाया जाता था-और आधी रात्रिके समय शय्याका काम देता था, वह यही जानकीका दुपट्टा इस समय मैंने प्रारब्धवश पाया है ॥ १ ॥

बहिरपि न पदानां पंक्तिरन्तर्न काचित्
किमिदमियमसीता पर्णशाला किमन्या ।

अहमपि किल नायं सर्वथा राघवश्चेत्
क्षणमपि नहि सोढा हन्त सीतावियोगम् ॥ २ ॥

पर्णशालाके बाहर भी चरणोंके चिह्न नहीं हैं, और न पर्णशालाके भीतर ही को चिह्न हैं, क्या यह सीताविहीन कोई दूसरी ही पर्णशाला है ? या मैं ही कोई और हो गया हूँ, यदि राम होता तो क्षणभर भी सीताका वियोग न सहसक्ता ॥ २ ॥

मध्योऽयं हरिभिः स्मितं हिमरुचा नेत्रे कुरंगीगणैः
कान्तिश्चम्पककुड्मलैःकलरवो हा हा हृतः कोकिलैः ।
मातंगैर्गमनं कथं कथमहो हंसैर्विभज्याधुना
कान्तारे सकलैर्विनाश्य पशुवन्नीतासि भो मैथिलि ॥३॥

हाय सीते ! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, कि इस वनमें मेरे विना अवसर पाकर यह सब वनके प्राणी तुझे पशु समान मारकर लेगये हैं—मध्यभाग (पेट) सिंहोंने, मुस्कुरान चन्द्रमाने, नेत्र हरिणोंने, कान्ति चम्पेकी कलियोंने, मधुर भाषण कोकिलोंने, और हाय हाय तेरे गमनको हाथियों और इन हंसोंने न जाने कैसे बाँटकर लिया होगा ॥ ३ ॥

युक्तमेव हि कैकेय्या यदहं प्रेषितो वनम् ।
ईदृशी यस्य मे बुद्धिर्मृगः क्वापि हिरण्मयः ॥ ४ ॥

कैकेयीने ठीक ही किया जो मुझे वनको भेजदिया, जिस मेरी ऐसी (उलटी) बुद्धि है, कहीं सुवर्णका मृग होता है ॥ ४ ॥

आलिंगितात्र सरसीरुहकोरकाक्षी
पीताधरेति मधुरे विधुमंडलास्या ।
रंगावतारमकरंदविमर्दितानि
पुष्पान्यमूनि दयिते क्व गतेत्यरोदीत् ॥ ५ ॥

(पर्णशालामें पुष्पमाला पडी देखकर) हे प्रिये ! तू कहाँ गई, हे कमलकी कलीसमान नेत्रवाली यहां मैंने तुझे आलिङ्गन किया था, हे मधुरे ! चन्द्रमण्डलकी समान तेरे मुखका अधरामृत पिया था, यह केलिसमयमें कुचलेहुए मकरन्दवाले पुष्प अब भी पडे हुये हैं, हे प्रिये ! तू कहां गई, ऐसा कहकर रुदन करनेलगे ॥ ५ ॥

गाहंगाहं गह्वरकान्तारवनान्ता-
दर्शंदर्शं दर्पकभल्लीरिव वल्लीः ।
स्मारंस्मारं दूरगतां तामथ कान्तां
रामः कान्तामद्रिचरो दीनमरोदीत् ॥ ६ ॥

गहन वनोंके दुर्गम मार्गोंमें घूम २ कर कामदेवके भाले समान लताओंको देखकर अपनेसे दूर हुई मनोहारिणी प्रिया सीताको स्मरण कर २ के पर्वतोंमें विचरनेवाले श्रीरामचन्द्रजी दीनताके साथ रुदन करने लगे ॥ ६ ॥

स भूरजोरञ्जितसर्वकायो
बभौ विभुर्मन्युविदीर्णचेताः ।
योषिद्वियोगानलदह्यमानं
स्वकान्तमालिङ्गयतीव भूमिः ॥ ७ ॥

पृथ्वीकी धूलिसे जिनका सब शरीर अटरहा है, शोकसे विदीर्ण चित्तवाले सर्वव्यापी श्रीरामचन्द्रजी ऐसी शोभाको प्राप्त हुए मानों स्त्रीके वियोगके अग्निसे भस्म होतेहुए अपने पतिको पृथ्वी आलिङ्गन कररही है ॥ ७ ॥

सीतेति हा जनकवंशजवैजयन्ति
हा मद्विलोचनचकोरनवेन्दुलेखे ।
इत्थं स्फुटं बहु विलप्यविलप्य राम-
स्तामेव पर्णवसतिं परितश्चचार ॥ ८ ॥

सीता ! हा जनकवंशियोंकी पताकारूप ! हा मेरे नेत्ररूप चकोरोंको नवीन चन्द्रकी समान, इस प्रकार प्रकटरूपसे बार २ विलाप करके श्रीरामचन्द्रजी तिस पर्णशालाके ही चारों ओर विचरने लगे॥८॥

हा जानकि प्रचलितोत्पलपद्मनेत्रे
हा मे मनःकमलकाननराजहंसि ।
एष प्रिये तव वियोगजवह्निदग्धो
दीनं प्रयामि भवतीं क्व विलोकयामि ॥ ९ ॥

हा जानकि ! हा खिलते हुए नीलकमलकी समान नेत्रवाली ! हे मेरे मनोरूप कमलवनकी राजहंसि ! हे प्रिये ! यह देख मैं तेरी वियोगाग्निसे दग्ध हुआ दीनके समान फिररहा हूं हाय तुझे कहाँ देखूँ

रे वृक्षाः पर्वतस्था गिरिगहनलता वायुना वीज्यमाना
रामोऽहं व्याकुलात्मा दशरथतनयः शोकशुक्रेण दग्धः ।
बिम्बोष्ठी चारुनेत्री सुविपुलजघना बद्धनागेन्द्रकांची
हा सीता केन नीता मम हृदयगता को भवान्केन दृष्टा॥

अरे पर्वतके वृक्षो ! हे वायुसे हिलतीहुई पर्वतकी वनकी लताओ ! मैं व्याकुल हुआ शोकाग्निसे भस्मीभूत दशरथपुत्र रामचन्द्र हूँ, क्या तुममेंसे किसीने कंदूरीके समान ओठवाली, सुन्दरनयना अतिविशाल जंघाओंवाली और गजमुक्ताओंकी तागडीको पहिने सीता देखी है, न जाने उस मेरी हृदयेश्वरीको कौन लेगया अरे तुम कौन हो ! बताओ तो सही किसीने देखी है ॥ १० ॥

हे गोदावरि पुण्यवारिपुलिने सीता न दृष्टा त्वया
सा हर्तुं कमलानि चागतवती याता विनोदाय वा ।
इत्येवं प्रतिपादपं प्रतिनगं प्रत्यापगं प्रत्यगं
प्रत्येणं प्रतिबर्हिणं तत इतस्तां मैथिलीं याचते ॥ ११ ॥

हे गोदावरी ! हे पवित्र जलके पुलिनवाली, तूने कमलोंको लेनेके

लिये आती हुई सीता तो नहीं देखी ? इस प्रकार हरएक वृक्षसे, हरएक पर्वतसे, हरएक नदीसे, प्रत्येक मृगसे और प्रत्येक मोरसे, जिधर तिधर श्रीरामचन्द्रजी मैथिलीको माँगते थे ॥ ११ ॥

(पुनर्लक्ष्मणमासाद्य वैक्लव्यं नाटयति)

के यूयं वद नाथनाथ किमिदं दासोऽस्मि ते लक्ष्मणः
कोऽहं वत्स स आर्य एव भगवानार्यः स को राघवः ।
किं कुर्मो विजने वने तत इतो देवी समुद्वीक्ष्यते
का देवी जनकाधिराजतनया हाहा प्रिये जानकि॥१२॥

(फिर लक्ष्मणको पाय विकलताका नाट्य करते हैं) राम-बताओ तुम कौन हो ? लक्ष्मण-हे नाथ ! हे महाराज ! आपको यह क्या हुआ ? मैं आपका दास लक्ष्मण हूं । राम-हे तात ! मैं कौन हूं ? लक्ष्मण-महाराज आप वही अवधेश रामचन्द्र हैं । राम-वह कौन राम ? लक्ष्मण-वही रघुकुलभूषण । राम-इधर उधर निर्जन वनमें घूमते हम क्या कर रहे हैं ? लक्ष्मण-देवीको खोजते फिरते हैं । राम-कौनसी देवी ? लक्ष्मण-महाराज ! जनकजीकी पुत्री । राम-हाय हाय प्रिये जानकी ! तू कहाँ है ॥ १२ ॥

सौमित्रिणा सह रामः,अत्रान्तरे वनान्तं पर्यटञ्जनकतनयातापिनः पापिनो रजनिचरपतेर्भुजभुजंगमंडलीखण्डितोरगवधूवैधव्यधातारं विपक्षरक्षसा निहतं घोरसमरमूर्च्छितं पक्षिराजं जटायुषं भग्नं च रावणरथमालोक्य

ज्ञात्वा दशरथस्यैनं मित्रं शत्रुनिषूदनम् ।
हा तात किमिदं नाम रामः पक्षीन्द्रमब्रवीत्॥१३॥

(इस बीचमें लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजी वनमें घूमते हुए जानकीको ताप देनेवाले पापी राक्षसपति रावणकी भुजारूप नाग-मण्डलीसे घायल हुए. सर्पोंकी वधुओंको रण्डापा देनेवाले शत्रु

रावणके साथ घोर संग्राम करके मृतकसमान मूर्च्छित पडे हुए पक्षिराज जटायु तथा टूटे हुए रावणके रथको देखकर) इस पक्षिराजको पिता दशरथका मित्र और अपने शत्रुका नाश करनेवाला जानकर श्रीरामचन्द्रजी कह उठे कि, हा तात ! यह तुम्हारी क्या दशा हुई है ॥ १३ ॥

जटायुः-

अर्धरात्रे दिनस्यार्धे अर्धचंद्रेऽर्धभास्करे।
रावणेन हृता सीता कृष्णपक्षे सिताष्टमी ॥१४॥

जटायु-अर्धरात्रि (पितरोंकी) दिनके मध्य समय (देवताओंके) शुक्ल पक्षमें अष्टकलायुक्त चन्द्रमा और मध्याह्नकालिक अर्ध सूर्य होनेपर शुक्रवार अष्टमीके दिन अर्थात् देवताओंके आधे दिन रूप चैत्रमासकी पितरोंकी अर्ध रात्रि रूप अष्टमीके दिन शुक्रवार सहित मध्याह्नकालमें रावणने सीताको हरा था ॥ १४ ॥

रामः-

भग्नोऽयं कथमस्ति रावणरथस्तातेन वज्रांकुर-
क्रूरावस्करणेन भंगुरलसत्कोटिव्रुटज्ज्यं धनुः।
हे सीरध्वजराजपुत्रि स तथा दृष्टस्त्वया धन्यया
पक्षीन्द्रो दशकंठकुंजरशिरःसंचारिपंचाननः ॥१५॥

राम-हे तात ! आपने वज्रकी धारसमान आपकी भयानक चोंचको भी फाड डालनेसे टेढी कोटिवाले अब जिसका रोदा टूटगया है ऐसे रावणके धनुषको और रथको कैसे तोडा था, हे जनकनन्दिनी सीते ! रावणरूप हाथिके शिरोंपर फिरनेवाले सिंहके समान इस पक्षिराज जटायुका तूने दर्शन किया इस कारण तू धन्य है ॥१५॥

तात त्वं निजतेजसैव गमितः स्वर्गं व्रज स्वस्ति ते
ब्रूमस्त्वेकमिमां वधूहृतिकथां तातान्तिके मा कृथाः।

रामोऽहं यदि तद्दिनैः कतिपयैर्वीडानमत्कन्धरः
सार्धं बन्धुजनेन सेंद्रविजयी वक्ता स्वयं रावणः ॥१६॥

हे तात जटायु ! तुम अपने तेजसे ही स्वर्गको प्राप्त हुए हो, जाओ तुम्हारा कल्याण हो, परन्तु तुमसे एक इतना कहना है, कि इस सीताहरणकी बातको पिता दशरथजीके समीप न कहना, यदि मैं रघुवंशी राम हूँ तो थोडेही दिनोंमें कुम्भकर्णादि अपने बन्धुजन तथा इन्द्रविजयी मेघनाद सहित यह रावणही लज्जासे ग्रीवाको नवाये हुए तहाँ आकर अपने आप ही सब समाचार सुना देगा ॥१६॥

रामः-

वनेचरान्मृगान्विलोक्य । आः खलु दुरात्मनाममीषां रूपेण मारीचेन प्रपञ्चमवलम्ब्य प्राणवल्लभाश्लेषतो विश्लेषितोऽहमिति अहं पुनः मृगीचक्रवधेन कुरंगाणां प्रियाविरहमुत्पादयामीति विचार्य-

अमोघाः कृष्टनालीकाः काननेषु मृगीवधे ।
रामः किं दूरघातीति सीतानयनशंकया ॥ १७ ॥

राम-(वनचारी मृगोंको देखकर) ओः निस्संदेह इन दुष्टात्माकेही रूपसे मारीचने माया फैलाकर मुझे प्राणप्रियाके संगसे छुडाया है, इस कारण अब मैं भी हरिणियोंके समूहका वध करके मृगोंको स्त्रीवियोगका दुःख उत्पन्न करूँ; ऐसा विचार कर-

वनोंमें मृगियोंके वधके लिये कानों तक खैंचेहुए निशानोंको पार करनेवाले लोहेके बाण और दूरसेही प्रहार करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी उनके नेत्रोंमें जानकीके नेत्रोंकी समानता देख वध करनेमें अपराधकी शंकासे निवृत्त हुए ॥ १७ ॥

ततः कथमपि भगवति भास्करेऽस्ताचलावलंबिनि प्रलयकालोदितप्रचण्डमार्तण्डमण्डलमिवोदितंचन्द्रमण्डलं

तरुणकोपारुणदारुणं तरणिनन्दनमिवावलोक्य रामः-
सौमित्रे ननु सेव्यतां तरुतलं चण्डांशुरुज्जृंभते
चण्डांशोर्निशि का कथा रघुपते चन्द्रोऽयमुन्मीलति ।
वत्सैतद्भवता कथं नु विदितं धत्ते कुरंगं यतः
क्वासि प्रेयसि हा कुरंगनयने चन्द्रानने जानकि ॥१८॥

हे लक्ष्मण ! देखो सूर्यका उदय हुआ प्रतीत होताहै, चलो वृक्षकी छायामें चलकर बैठें । लक्ष्मण–नाथ आप रात्रिमें सूर्यकी क्या बातें करते हैं, महाराज ! यह तो चन्द्रमाका उदय होरहा है, राम–भैया यह तुमने कैसे जाना ? लक्ष्मण–यह मृगका चिह्न धारण कियेहुए हैं, इस कारण । राम–हा कुरङ्गनयनी चन्द्रमुखी प्रिये जानकी ! तू कहाँ है ? ॥ १८ ॥

रामश्चंद्रमाधिक्षिपति–

मन्दरेण मथितोऽसि न पापिञ्ज्वालितोऽसि तमसा
न दुरात्मन् । त्वां शरेण शतधा परिनिन्ये जानकी-
मुखसमो यदि न स्याः ॥ १९ ॥

रामचन्द्र–(चन्द्रमाको धिक्कार देते हुए) अरे पापी ! तुझे मन्दराचलने क्यों न मथा अरे दुष्टात्मन् ! तुझे राहुने भस्म क्यों नहीं किया, यदि तू जानकीके मुखकी समान नहीं होता तो मैं अभी बाण लेकर तेरे सैकडों टुकडे करडालता ॥ १९ ॥

अपि च लक्ष्मणं प्रति–

सौमित्रे दाववह्निस्तरुशिखरगतो वार्यतां निर्झरौघैः
का वार्ता दाववह्नेरयमुदयगिरेरुज्जिहीते हिमांशुः ।
धत्ते धूमं हिमांशुः कथय कथमयं नैव धूमो धरण्या-
श्छायेयं संगताऽभूदयि धरणिसुते कुत्र कान्तेसिसीते२०

(और भी लक्ष्मणजीसे) लक्ष्मण! देखो यह वृक्षोंकी शाखाओं-पर वनकी दौ लगरही है, झरनोंके जलोंसे इसको बुझाओ। लक्ष्मण-महाराज! इस समय दौंकी अग्निकी क्या बात है, यह तो उदयाचलसे चन्द्रमा उठ रहा है, राम-तो भला कहो तो सही चन्द्रमा धुएँको कैसे धाररहा है, लक्ष्मण-महाराज यह धुवाँ नहीं है, किन्तु चन्द्रमापर पृथ्वीकी छाया पडरही है। राम-हे भूमिसुते! सीते! प्रिये! तू कहाँ है? ॥ २० ॥

रामः सकरुणं आत्मनि प्राणवल्लभायाः परम-
प्रेमाणमधिगम्य-

शंके शशांके जगुरंकमेके पंकं कुरंगं प्रतिबिंबितांगम्।
धूमं च भूमण्डलमुद्धताग्नेर्वियोगजातस्यममप्रियायाः२१

(श्रीरामचन्द्रजी बडी करुणाके साथ अपने ऊपर प्राणप्रि-याके परम प्रेमको स्मरण करके) कोई कवि अपने चित्तमें कहते हैं कि-चन्द्रमापर कलंक लगा है। एक कहते हैं, कि समुद्रकी कींच लगरही है। दूसरे कहते हैं कि, चन्द्रमामें इसके वाहन मृगका प्रतिबिम्ब पडरहा है, और कोई कहते हैं, कि इसपर पृथ्वीकी छाया पडरही है, परन्तु मुझको तो ऐसी शंका होती है कि-यह मेरे वियोगसे उत्पन्न हुए प्रिया सीताके शोकाग्निका धुआं है ॥२१॥

रे रे निर्दय दुर्निवार मदन प्रोत्पुल्लपङ्केरुहान्
बाणान्त्संवृणु संवृणु त्यज धनुः किं पौरुषं मां प्रति।
कान्तासंगवियोगजातहुतभुग्ज्वालाप्रदग्धं वपुः
शूराणां मृतमारणेनहि वरो धर्मः प्रयुक्तो बुधैः॥२२॥

अरे नीच! कठिनतासे हटाने योग्य कामदेव! खिले हुए कमलरूप अपने बाणोंको लौटा २, अरे धनुषको छोडदे मेरे ऊपर क्या पुरुषार्थ करता है क्योंकि मेरा शरीर तो अपने आपही प्रियाके संगका वियोग होनेके कारण उत्पन्न हुए शोकाग्निकी ज्वालाओंसे

भस्म होरहा है, चतुरोंका कहना है कि–मेरे हुओंको मारने. शूर पुरुषोंका श्रेष्ठ धर्म नहीं है ॥ २२ ॥

अथवा–

आपुंखाग्रममी शरा मनसि मे मग्नाः समं पंच ते
निर्दग्धं मदनाग्निना वपुरिदं तैरेव सार्धं पुनः ।
कष्टं काम निरायुधोऽसि भवता जेतुं न शक्यो जनो
दुःखी स्यामहमेक एव सकलो लोकः सुखं जीवतु॥२३॥

अथवा यह तेरे पांचों बाण परोंसहित मेरे मनमें गडगये और हे काम ! उन तेरे पांचों बाणोंसहित मेरा यह शरीर जानकीकी वियोगाग्निसे भस्म होगया, अरे मार ! बडे दुःखकी बात है कि अब तू शस्त्रहीन होगया, इस कारण संसारमें किसीको जीत नहीं सकेगा, अच्छा हुआ अकेला मैं ही दुःखी रहूँ, और सब संसार सुखसे जीवे ॥ २३ ॥

तत्रापि क्षणं विकसिताशोकतरुतले विश्राम्याह स्म दाशरथिः–

रक्तस्त्वं नवपल्लवैरहमपि श्लाघ्यैः प्रियाया गुणै-
स्त्वामायान्तिशिलीमुखाःस्मरधनुर्मुक्ताः सखे मामपि।
कान्तापादतलाहतिस्तव मुदे तद्वन्ममाप्यावयो-
स्तुल्यं सर्वमशोक केवलमहं धात्रा सशोकः कृतः२४॥

(तिस दशामें भी खिलेहुए अशोकवृक्षके नीचे क्षणभर विश्राम करके दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे) हे अशोक ! तू नये २ पत्तोंसे रक्त (लाल) और मैं प्रशंसायोग्य प्रिया जानकीके गुणों करके रक्त (अनुरक्त) हूँ, हे मित्र ! तेरे ऊपर शिलीमुख (भौंरे) आते हैं तो मेरे ऊपर भी कामदेवके धनुषसे छूटेहुए शिलीमुख (बाण) आते हैं, तू स्त्रीके चरणतलकी ठोकरसे प्रसन्न होता है, तैसे ही मैं भी, मेरी तेरी सब बातें समान हैं,

केवल विधाताने तुझको अशोक और मुझको सशोक (शोकयुक्त) बनाया है ॥ २४ ॥

पुनरपि प्रलपति-

हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा ।
इदानीमन्तरे जाताः पर्वताः सरितो द्रुमाः॥ २५ ॥

(फिर भी प्रलाप करते हैं) अन्तर पडनेके भयसे मैंने कंठमें हारभी नहीं पहरा था, परन्तु इस समय मेरे और तेरे अन्तर (मध्यमें) पहाड, नदियें, वृक्ष होगये ॥ २५ ॥

चन्द्रश्चण्डकरायते मृदुगतिर्वातोऽपि वज्रायते
माल्यं सूचिकुलायते मलयजालेपः स्फुलिंगायते ।
रात्रिः कल्पशतायते विधिवशात्प्राणोऽपि भारायते
हा हन्त प्रमदावियोगसमयः संहारकालायते॥२६॥

मेरे लिये चन्द्रमा सूर्यकी समान सन्तापदायक हो गया है, मन्द २ चलनेवाला वायु भी वज्रसा प्रतीत होता है, पुष्पमाला सुइयेंसी छिदती हैं, चन्दनका लेप अग्निकी चिनगारियोंसा प्रतीत होता है, रात्रि सैकडों कल्पकी समान हो गई, दैवकी प्रतिकूलतासे प्राण भी भार लगते हैं। हाय ! अधिक क्या कहूँ जानकीके वियोगका समय मुझे तो प्रलयकालकी समान हो गया है ॥ २६ ॥

मांसं कार्श्यादभिगतमपां बिन्दवो बाष्पपाता-
त्तेजः कान्तापहरणवशाद्वायवः श्वासदैर्घ्यात् ।
इत्थं नष्टं विरहवपुषस्तन्मयत्वाच्च शून्यं
जीवत्येवं कुलिशकठिनो रामचन्द्रः किमेतत् ॥ २७ ॥

दुर्बलताके कारण मांसरूप भूमितत्त्व नष्ट हो गया, निरन्तर आंसुओंके गिरनेसे जलकी बिन्दुरूप जलतत्त्व नष्ट हो गया, स्त्रीके हरे-जानेसे तेजःस्वरूप तत्त्व भी जाता रहा, लम्बे २ श्वासोंके कारण वायु तत्त्व नष्ट हो गया , मनमें प्रियाके वसनेसे आकाश तत्त्व भी

न रहा इस प्रकार विरही शरीर नष्ट हो गया, परन्तु वज्रकी समान कठोर मैं रामचन्द्र अब भी जी रहा हूँ, यह कैसे आश्चर्यकी बात है ? ॥ २७ ॥

सलक्ष्मणो रामः-

एवं दैवयोगाद्गौरगवयगजभुजंगशरभशार्दूलकोलबहुलकोलाहलाहूतभूतवेतालसमुत्तालकालकरालचक्रवालकंठनालप्रोच्छलत्तुमुलघोरचीत्कारमिलितबहलान्धकारकलितगह्वरान्तरालविलसदविरलसरलपरिमलबहलचंचलगलद्विमलमकरन्दबिन्दुकीलालजालपिच्छलालवाललुलितप्रमत्तालिमालमंदानिलान्दोलवाचालदरदलितललितमाकन्दवृन्दबकुलमुकुलधूलिजालखेलत्कोकिलकुलविलासिनीकोमलालापनिखिलगिरिशिखरिशिखिलास्यलीलाकलापसानुकूललोलद्वोलांगूलचञ्चच्चकोरचक्रमञ्जुगुञ्जद्वृक्षपक्षिणीपक्षवृद्धिम् ।

(लक्ष्मण सहित राम) इस प्रकार दैवयोगसे गौरवर्ण गवय, सर्प, शरभ (आठवर्णवाला मृग), शेर, सूकरोंके अत्यन्त कोलाहलसे आये हुए, भूत वेतालोंके बडे बडे कराल मंडलोंके कंठसे निकले हुए, बडे भारी चिल्लाहटसे मिले, घने अन्धकारसे भरी हुई गहनगुफाओंमें विलास करनेवाला जो निरन्तर देवदारुका गन्ध तिनसे युक्त जो बहुतसे गिरते हुए स्वच्छ मकरन्दके बिन्दु तद्रूप जलके प्रवाहसे भरे हुए जो वृक्षोंके थामले, तिनमें गुंजारनेवाले जो मतवाले भौंरे तिनकी पंक्तियोंसे मन्द २ पवनके झकोले आनेके कारण शब्दायमान स्वच्छ खिले हुए सुन्दर मौलश्रीके वृक्षोंके समूहोंमें धूलिसे अटी क्रीडा करती हुई कोकिलाओंकी कोमल कूकसे भरे हुए पर्वतोंके शिखरोंमें मोरोंके नाचनेकी लीलाओंके अनुकूल इधर उधरको चला-

यमान चमरगायोंकी पूँछे और चंचल चकोरोंके समूहोंसे युक्त होकर शब्द करती हुई जो वृक्षोंपरकी पक्षियोंकी स्त्रियें तिनके परोंकी वृद्धिको।

गगनचुंबनबद्धलक्ष्यविपुलफलाभारावलंबनालम्बितानं-तजंतुसंतोषपोषनिर्दोषभूषणाध्युषितनिःशेषसविशेषामृ-तवर्षस्पर्धिवर्धिष्णुरसरसालप्रियालहिन्तालतमालकृत-मालविशालशाल्मलमालूरशल्लकीशिरीषासनशमीशा-कशिंशपाशोकचम्पकसुरदारकोविदारकर्णिकारसिन्दु-वारबहुसारनिम्बजम्बूदुंबरकदंबकरञ्जसौभाञ्जनबकुल-निचुलकरुखर्जूरबीजपूरजंबीरभांडीरवानीरकाश्मरिना-रङ्गकर्मरंगकदलीचन्दनालिंगितालवलीधात्रीवटकुटज-पाटकांकोलकंकोलचोलभल्लातकबिभीतकहरीतक्याम्रा-तककेतककंकतवैंकंकतमधूकबन्धूकजयन्तीजपाश्वत्थ-कपित्थतिन्तिणीनागकेसरादिदुस्तरामरण्यानीं पर्य-टन्महावराहस्कन्धारूढमुत्कटं रटन्तं करटं वामतो विलोक्य।

आकाशको छूनेमें जिन्होंने बांधा है ध्यान, भारीपनसे लटकते हुए फलोंके गुच्छोंमें स्थित अनेकों प्राणियोंको संतोष और पुष्टि देनेसे निर्दोष भूषणवाले वृक्षोंमें स्थित जो पूर्ण अनेकों प्रकारका स्वादवाला अमृतसे भी सुन्दर प्रतिदिन बढता हुआ रस तिस करके युक्त जो आम, चिरौंजी, हिंगोटक, तमाल, कृतमाल, विसाल, सेमल, बेल, शाल, सिरस, विजयसार, शमीशाक, अशोक, चम्पा, देवदारु, कचनार, कनेर, सप्तपर्ण, सेंजना, नीम, जामुन, गूलर, कदम्ब, कंजा, मौलश्री, समुद्रफल, खजूर, बिजोरा, जमीरी, भाण्डीर, बेत, केशर, नारंगी, अगर, केला, चन्दनसे लिपटाहुआ आंबला, बड, कुटज, पाणल, अंकोल, कंकोल, चोल,

भिलावा, बहेडा, हर्र, अमलबेत, केतकी, कंघी, कंकत, महुआ, कंडूरी, जयन्ती, जया, पीपल, कैथ, इमली, नागकेशर आदि वृक्षोंसे अति-दुस्तर वनोंमें विचरते हुए श्रीरामचन्द्रजी अपने वामभागमें बडेभारी सूकरके कन्धे पर बैठकर घोर शब्द करनेवाले काकको देखकर ।

दक्षिणतस्तु दक्षिणाचलप्रचलितमलयमालतीमरुबक-लवङ्गकंकोलदमनकजातीतगरशतपत्रादिकमलमुकुल-कुमुदिनीकह्लारपरिमलमिलितचुम्बिततामपर्णीकावेरी-तुङ्गभद्रासान्द्रगम्भीरनीरधारातरंगपरिपीतमैत्रावरुणत-रुणीलंकाशशांकरुद्रपादाद्रिसरलसिंहलसालकश्रीगो-पालकपाण्डयमण्डलगिरिप्रवालचोलकुन्तलकेरलपु-न्नाटककर्णाटककरहाटविदग्धान्ध्रकामिनीनीरन्ध्रपीन-स्तनवदनघनजघनदोर्मूलधम्मिल्लभारान्तराधिष्ठितश्री-खण्डागरुकर्पूरमृगमदकुंकुमस्तोमसंभूतयक्षकर्दमविमर्द-वार्धितविविधगन्धकुसुमबहुलपरिमलोद्गारिमारुताशनो-त्थितक्षीरनीहारकाश्मीरस्फटिकशुद्धशंखकर्पूरकुन्दाव-दातमहाभुजंगस्फीतफूत्कारप्रफुल्लफणामणौ क्रीडन्तं शोकभञ्जनं खञ्जनं चावलोक्य वामेनाक्ष्णा सकरुणं सबाष्पं च दक्षिणेन सविस्मयं सानन्दमभवदिति ।

और दाहिनी ओर दक्षिणी पवनोंसे हिलायेहुए मलयाचलके मालती, मरिच, लवंग, कंकोल, कुन्द, चमेली, तगर, शतपत्र, कमलोंकी कली, और चन्द्रविकासी कमल और कह्लारोंकी सुग-न्धिसे मिलेहुए, तथा ताम्रपर्णी, कावेरी, तुंगभद्रा आदि नदि-योंकी गहन गंभीर जलधाराओंकी तरंगोंसे मिली हुई मैत्रावरुणकी तरुणी, लंका, शशाङ्क, कैलास पर्वत, सरल, सिंहलद्वीप, शालक, और श्रीगोपालक देशोंकी तथा पाण्डय गिरिप्रवाल, चोल कुंतल,

सीता नीता केनचित्क्वापि दृष्टा
दृष्टः कष्टं संहरन्प्राह वीरः ॥ ३३ ॥

और उस किष्किन्धा पर्वत पर रौद्र रसके स्वरूप रुद्रावतार पवनकुमार हनुमान्‌जीको देखकर यह वचन कहने लगे कि क्या इधर किसीने कहीं कोई सीता नामकी स्त्री देखी है ? इतना सुनकर वीर हनुमान् जी श्रीरामचन्द्रजीके कष्टको हरतेहुएसे प्रसन्नताके साथ कहनेलगे ॥३३॥

पापेनाकृष्यमाणा रजनिचरवरेणाम्बरेण व्रजन्ती
किष्किन्धाद्रौमुमोचप्रचुरमणिगणैर्भूषणान्यर्चितानि।
हा राम प्राणनाथेत्यहह जहि रिपुं लक्ष्मणेनालपन्ती
यानीमानीति तानि क्षिपति रघुपुरः कापि रामाञ्जनेयः

राक्षसोंमें परमपापी रावण करके हरीहुई हा राम ! हा प्राणनाथ ! हाय ! हाय ! मुझको बडा कष्ट है इस शत्रुका लक्ष्मणके द्वारा नाश करो, इस प्रकार बार २ विलाप करके आकाशमार्गसे जातीहुई किसी स्त्रीने अनेकों मणियोंसे जडेहुए अपने जिन गहनोंको किष्किन्धापर्वत पर डालादिया था, इन उनही आभूषणोंको अंजनीकुमार श्रीरघुनाथजीके सामने अर्पण करता है ॥ ३४ ॥

रामः सकरुणं सबाष्पम्-

जानक्या एव जानामि भूषणानीति नान्यथा ।
वत्स लक्ष्मण जानीषे पश्य त्वमपि तत्त्वतः ॥ ३५ ॥

रामचन्द्र-(दीनताके साथ आखोंमें आँसू भरकर) यह आभूषण जानकीकेही हैं, मैं केवल इतनाही जानता हूँ, और कुछ नहीं परन्तु भैय्या लक्ष्मण ! तुम भी तो जानते हो, जरा ठीक २ देखो तो सही ॥३५॥

लक्ष्मणः सबाष्पम्-

कुण्डले नैव जानामि नैव जानामि कङ्कणे ।
नूपुरावेव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥३६ ॥

लक्ष्मण (आंखोंमें आंसू भरके) नाथ ! मैं कुण्डलों और कङ्कणोंको तो जानता ही नहीं (क्योंकि कभी दृष्टि उठाकर ऊपरकी ओरको नहीं देखा) केवल पायजेबोंकोही जानता हूँ, क्योंकि चरणोंमें प्रणाम किया करता था ॥ ३६ ॥

रामः आभरणानि हृदय विन्यस्य गाढमालिंग्य-

सर्वेषु सत्स्वपि तवाभरणेषु हारो
नारोपितो हृदि चिरं हृदयंगतोऽपि ।
मुक्तार्थसूत्रगुणवेधविशुद्धराशि-
स्तत्पंक्तिभेदफलदारुणमित्यरोदीत् ॥ ३७ ॥

राम-(आभूषणोंको हृदय पर रखकर और सबको आलिङ्गन करके) तेरे पास सकल गहनोंके होते हुए, चित्तको प्यारा लगता हुआ, और जिसमें मोतियोंके पिरोनेके डोरेमें श्रेष्ठ रत्न पुहरहे थे वह भी हार चिरकाल हो गया, परन्तु मैंने तेरे हृदयमें न पहराया, (क्योंकि-मैं बीचमें हार आपडनेके अन्तरको भी नहीं सहसकता था) सो मैंने अन्य आभूषणोंको पहराकर हारको जो नहीं पहराया, यह पांक्तिभेद किया, हा ! क्या उसके ही फलसे मुझको यह दारुण दुःख उठाना पडा है, ऐसा कहकर रोपडे ॥ ३७ ॥

पुनरपि-

अहह जनकपुत्रीवक्त्रमुद्रामपश्यन्
व्रजति परमहंसो नाक्षमो वापि गन्तुम् ।
तदुरुविरहवह्निज्वालया दग्धदेहः
किमुत पवनसूनोर्भूषणैः स्तम्भितो मे ॥ ३८ ॥

(फिर कहने लगे) आह ! मुझको इतना कष्ट हो रहा है, फिर भी जानकीके मुखकी छविको न देखता हुआ यह मेरा परमहंस (जीवरूपी हंस) निकल क्यों नहीं जाता ? प्रतीत होता है, यह जान-

कीके असह्य वियोगकी ज्वालासे भस्मीभूत होनेके कारण जानेमें असमर्थ हो गया है या पवनसूनुके आभूषण लानेसे रुकगया है॥ ३८॥

हनुमान् सानुनयम्-

श्रीराम क्षोणिपाल त्यज निजदयिताशोकमेकः सलोकं
लंकेशं जेतुमीशे तमपि कपिपतेराज्ञयाहं हनूमान् ।
सुग्रीवस्याथ सार्धं गिरिमवतरणं पादविन्यासलक्ष्मी-
निक्षेपादुत्पलाक्ष क्षपितरिपुबलं दर्शनं त्वं च देहि ३९॥

हे पृथ्वीनाथ श्रीराम ! आप जानकीका शोक न करैं, कपिराज सुग्रीवकी आज्ञासे अकेला मैं हनुमान्ही लंकावासी राक्षसोंके सहित लंकेश रावणको जीतसक्ता हूँ, अब आप सुग्रीवके भवनरूप पर्वत पर चलकर उसको अपने चरण अर्पणकी शोभासे कृतार्थ करिये, हे कमलनयन!आपके दर्शनमात्रसे शत्रुओंका बल नष्ट होजाता है॥ ३९॥

ततो हनूमान्सहलक्ष्मणेन रामेण सुग्रीवपुरःस्थितोऽभूत्
तांस्तत्र साक्षात्कपियूथनाथःपापानिदग्धुं दहनं ददर्श॥

तदनन्तर-श्रीराम और लक्ष्मणको साथ लिये हनुमान् सुग्रीवके सन्मुख जापहुँचे उस समय कपिदलनायक सुग्रीवने इन तीनोंको त्रिविध पापोंको भस्म करनेके निमित्त आयेहुए दक्षिण गार्हपत्य और आहवनीय अग्निरूप समझा ॥ ४० ॥

श्रुत्वा रामस्य कान्ताहरणमनिलजस्याननाद्वानरेन्द्रो
निःश्वस्यात्मीयमस्यानुवदति पुरतस्तद्वलाद्वालिनोऽपि।
हा नाथे विद्यमाने किमितिरघुपतिस्तं निहन्तुं प्रतिज्ञा-
मारूढः प्रौढरोषानलबहलकलालंकृतोऽधिज्यधन्वा ४१

पवनकुमारके मुखसे श्रीरामचन्द्रजीकी स्त्रीका हरण सुनकर वानरराज सुग्रीवने लम्बी श्वास ली, और इनको बालिसे अपनी स्त्रीके हरणका वृत्तान्त सुनाकर कहनेलगा कि, हा ! आपसे स्वामीके

होते हुए मेरी यह दशा क्यों है ? उसी समय श्रीरघुनाथजीने परम क्रोधाग्निसे जाज्वल्यमान होकर धनुषपर रोदा चढाते हुए बालिका वध करनेकी प्रतिज्ञा की ॥ ४१ ॥

नत्वा ससंभ्रममथो जगदेकवीर-
मालिंगयन्नघुपतिं शुशुभे कपीन्द्रः ।
तद्विस्मृतं पुनरिवाभ्यसते प्रियायाः
कन्दर्पकेलिषु पुनर्द्रुतभाविनीषु ॥ ४२ ॥

उस समय सुग्रीव जगत्में एक वीर श्रीरघुनाथजीको आदर सहित प्रणाम करके आलिङ्गन करतेहुए ऐसी शोभाको प्राप्तहुए कि मानो चिरकालसे प्रियाका वियोग होनेके कारण विस्मृत हुए और फिर शीघ्रही प्राप्त होनेवाली कंदर्पक्रीडाओंमेंके प्रियाके आलिङ्गनका अभ्यास कररहे हैं ॥ ४२ ॥

सुग्रीवः-

अये मरुत्तनय कोऽसौ चतुर्णां ताटकान्तकः ।

सुग्रीव-अयि पवनकुमार ! इन चारों दशरथराजकुमारोंमेंसे ताडकाका वध करनेवाले कौनसे हैं ? ॥

मारुतिः-

ये चत्वारौ दिनकरकुलक्षत्रसन्तानवल्ली-
मालाम्लानस्तबकमधुपा जज्ञिरे राजपुत्राः ।
रामस्तेषामभवदमलस्ताटकाकालरात्रि-
प्रत्यूषोऽयं सुचरितकथाकन्दलीमूलकन्दः ॥ ४३ ॥

हनुमान्-सूर्यवंशीय क्षत्रियोंकी सन्तानरूप लतामालाके खिले हुए पुष्पगुच्छकमें भौंरेरूप जो चार कुमार महाराज दशरथके यहां उत्पन्न हुए हैं, उनमें यह निर्मल श्रीरामचन्द्रजी ताडकारूप कालरात्रिको नाश करनेके लिये प्रातःकालरूप और श्रेष्ठ चरित्रवाली कथारूप कन्दलीके मूलकन्द हैं ॥ ४३ ॥

ततः-

श्रुत्वा वाली तदनु महतीं राघवस्य प्रतिज्ञां
तालान्सप्त प्रकृतिकुटिलान्प्रेरयामास योद्धुम् ।
सौमित्रिस्तानकृतसरलाञ्शेषपृष्ठस्थमूलान्
भारेणांघ्रेरथ रघुपतिः संदधे दिव्यमस्त्रम् ॥ ४४ ॥

(तदनन्तर) वालीने रघुनाथजीकी महती प्रतिज्ञाको सुनकर स्वभावसे कुटिल सात तालोंको युद्ध करनेके लिये भेजा, लक्ष्मणजीने जिनकी जड शेषजीकी पीठ पर स्थित थी, उन सातों तालोंको चरणके भारसे सूधा करादिया, तब रघुनाथजीने अपने दिव्य अस्त्रको सम्हाला ॥ ४४ ॥

लक्ष्मणः सशंकं रामं प्रतिदेव ज्ञात्वा बाणःप्रहर्त्तव्यः।
यतः-एकदैव शरेणैकेनैव भिन्नकलेवराः ।
म्रियन्ते सप्त तालास्तं घ्नन्ति हन्तारमन्यथा ॥ ४५ ॥

लक्ष्मण-(शङ्कित होकर श्रीरामचन्द्रजीसे) महाराज ! समझकर बाण छोडना चाहिये क्योंकि-एक समय ही एकही बाणसे यदि इन सातों तालोंका शरीर वेधाजायगा तो मरसकते हैं, नहीं तो प्रहार करनेवालेकाही वध करेंगे ॥ ४५ ॥

रामः सावज्ञम्-

मा भैषीर्मयि सौमित्रे राघवेऽधिज्यधन्वनि ।
सतां देहं परित्यज्य निर्जगामासतां भयम् ॥४६॥

राम-(अवहेलनाके साथ) लक्ष्मण! भय न मानो मुझ रघुवंशीके धनुष चढाने पर भय सत्पुरुषोंके शरीरको छोडकर परस्त्रीहरण करनेवाले वाली समान दुर्जनोंके शरीरमें चलागया ॥ ४६ ॥

रामः करेण बाणमालभ्य-

भावोऽस्ति चेत्कुशिकनन्दनपादयोर्मे
यद्यस्म्यहं द्विजतिरस्कृतिरोषहीनः ।

नान्यांगनासु च मनः शर सप्त तालान्
भित्त्वा तदा प्रविश भूतलमप्यगाधम् ॥ ४७ ॥

(बाणको हाथसे छूकर) यदि विश्वामित्रजीके चरणोंमें मेरी भक्ति है, यदि मैं ब्राह्मणोंके तिरस्कारको भी सहकर क्रोध नहीं करता हूँ, और यदि मेरा मन कभी परस्त्रियोंपर नहीं चला है, तो रे बाण ! तू इन सातों तालोंको फोडकर अगाध भूतलमें घुसा चलाजा ॥४७॥

एकेनैव शरेण बालकदलीकाण्डप्रभंगक्रमात्
कृत्तेषु प्रथमेषु दाशरथिना तालेषु सप्तस्वथ ।
अश्वाः सप्त जगन्ति सप्त मुनयः सप्ताब्धयः सप्त गाः
सत्यं सप्त च मातरो भयभृतः संख्यानसाम्यादिह॥४८॥

एकही बाणसे कोमल केलेके खम्भोंके काटनेके समान जब श्रीरामचन्द्रजीने सातोंको काटडाला, तब सात संख्याकी समतासे भयभीत हुए सूर्यके सातों घोडे, सात लोग, सप्त ऋषि, सातों समुद्र सातों द्वीप, सातों पर्वत, और सातों माता यह सब निस्सन्देह काँपउठे ॥४८॥

रामबाणः सक्षोभम्–

बाणः प्रमाणमधिगम्य वसुंधरायाः
संबोधयन्निव भुजंगमभंगभीत्या ।
ब्रह्माणमंबरचरान्विधुनोति पक्षात्
पुंखावशेष इति रामकराद्विमुक्तः ॥ ४९ ॥

रामका बाण–(क्षोभके साथ) श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे छूटकर पृथ्वीका गहराई समान लम्बा हो शेषजीके नाश होनेके भयसे पक्ष-मात्र ऊपर शेष बचेहुए अपने भागको आकाशव्यापी पक्षोंको सरसराता हुआ मानो ब्रह्माजीको पुकारनेलगा ॥ ४९ ॥

पौरंदरिः सक्रोधम्–

श्रुत्वा हतान्समरमूर्धनि सप्त तालान्

रामेण पापहृदयेन विनापराधम् ।
कोपानलज्वलितहृत्कमलोऽथ वाली
रंगावतारमगमद्गिरिचित्वरेषु ॥ ९० ॥

वाली-(क्रोधमें भरकर) क्रोधयुक्त हृदयवाले श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा निरपराध सातताओंका वध सुना और क्रोधाग्निसे भस्म होने-लगा है हृदयकमल जिसका ऐसा वह वाली पर्वतके मैदानोंमें संग्राम करनेको उतर आया ॥ ९० ॥

तारा सहर्षम्-

अवश्यं भगवतः श्रीपुरुषोत्तमस्य रामचन्द्रस्य प्रसादादद्य चिरविरहिणः प्राणवल्लभस्य सुग्रीवस्य वक्षःपीठे लुठिष्यामीति मन्यमाना गिरिवरशिखरमारुह्य रामपौरन्दरिसमरमाकांक्षती चिन्तयामास-

तारा(हर्षके साथ) अवश्यही भगवान् पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीके अनुग्रहसे आज चिरकालके विरही प्राणप्यारे सुग्रीवके वक्षःस्थलमें शयन करूँगी, ऐसा मानतीहुई श्रेष्ठ पर्वतके शिखपर चढकर, रामचन्द्र और वालीका युद्ध होनेकी इच्छा करतीहुई विचारने लगी ।

तारा संत्यक्तहारा गिरिशिखरचरा स्रस्तधम्मिल्लभारा
शोकाब्धिप्राप्तपारार्पितमदनशरा वीरसुग्रीवदाराः ।
नारा नाराचधारा निजरमणरता तापिनः पापिनोऽस्य
प्राणाञ्छाणावतीर्णाहरतुकलिकलाशालिनोवालिनोऽद्य

हारको त्याग पर्वतोंके शिखरोंमें घूमती, जिसके केश बिखरेहुए हैं, शोकसमुद्रके पारको पानेवाली कामदेवके बाणसे विधीहुई, अपने पतिमें प्रेम करनेवाली तारा (मनमें विचारनेलगी कि) आज शानपर धरेहुए, रामके बाणोंकी धार दुःख देनेवाले, कलियुगी कार्य करनेवाले, इस पापी वालीके इस प्राणोंको हरलेवे ॥ ९१ ॥

रामः सक्षोभं पौरन्दरिं गिरिगरिमगम्भीरमहिमानमवलोक्य सौमित्रिमित्रमनुस्मृत्याब्रवीत् वत्स–

किं वाली वानराली बहलकलकलाहूतदेवेन्द्रवज्रं
वांछत्याकृष्ययोद्धुं शिवशिवतुमुलोत्कालसंचालितार्कः।
प्रोद्यल्लांगूलवल्लीशिखरकवलितं चण्डदोर्दण्डकांड-
भ्रान्तामूलाग्रशैलप्रहरणनिपुणःकेन योद्धव्यएषः॥५२॥

रामचन्द्र–क्रोधके साथ पर्वतके समान भारी और गम्भीर महिमायुक्त, इन्द्रकुमार वालीको देखकर लक्ष्मणजीको मित्रसमान मानकर कहनेलगे कि हे तात ! जो वानरोंके समूहोंके कलकल शब्दसे पुकारेहुए देवराजके वज्रको ऊपरको वेगसे जाती हुई पूछके लपेटमें डाल और छीनकर युद्ध करना चाहता है, जो भयानक पराक्रमसे सूर्यको भी चलायमान करदेता है, जिसको प्रचण्ड भुजदण्डके बाणका घमण्ड है, और जडसे उखाडे हुए पर्वतोंके द्वारा युद्ध करनेमें परमचतुर है, ऐसे इस वालिके साथ शिव शिव भला कौन युद्ध करसकता है, और इसके साथ युद्ध करनेके लिये कौनसा शस्त्र काममें लाना चाहिये ॥ ५२ ॥

सावष्टम्भं नारायणं बाणमादाय–

वेदोद्भवैर्द्विजगणेन पुराभिषिक्तो
मूर्ध्ना समं त्वमपि बाणगुणेन मन्त्रैः।
तत्तेजसा परवधूजनहारिणस्त्वं
प्राणान्गृहाण समरेष्वतिदारुणस्य ॥ ५३ ॥

(धैर्यके साथ नारायणबाणको लेकर) हे बाण ! पूर्वकालमें ब्राह्मणोंने वेदमन्त्रोंके द्वारा प्रत्यंचासहित तेरा मूर्धाभिषेक किया है, उसी तेजसे तू इस संग्राममें परस्त्रीहरण करनेवाले अतिकठोर-वालीके प्राणोंको ले ले ॥ ५३ ॥

रामबाणः-पौरन्दरिश्च ब्रह्मतेजोभिगम्य परदारापहरणपराभवंच-

अथ रघुपतिबाणः प्राप्तवीरप्रमाणः
प्रलयदहनरोचिः कोटिविद्युन्मरीचिः ।
अकृत हृदयभेदं वालिनः सोऽप्यरोदी-
दनिहतपितृशत्रुः किं सशल्यो हतोऽस्मि ॥५४॥

रामचन्द्रजीका बाण ब्रह्मतेजको और वालि परस्त्रीहरणके कारण तिरस्कारको प्राप्त होकर-अनन्तर वीर वालीकी थाह पाये हुए प्रलयकालकी अग्निके समान जाज्वल्यमान करोडों बिजलियोंके समान चौंधातेहुए रघुनाथजीके बाणने वालिके हृदयको फाडडाला तब वह वालिभी रोकर यह कहने लगा कि हाय ! मैं पिता इन्द्रके शत्रु रावणको विना मारेही क्यों मारागया यह कांटा तो मरकर भी मेरे चित्तमें खटकताही रहैगा ॥ ५४ ॥

रामः सकरुणं सविषादं च-

वत्स सौमित्रे गिरिगह्वरेषु स्वयोनिविहितं महत्सुखम-
नुभवन्तं महावीरं अनपराधिनं वालिनं हत्वा मन्द-
भाग्यः कथमहं जानकीसुखमनुभविष्यामीति शिरो
धुन्वन्पौरन्दरिं व्याजहार-

शस्त्रौघप्रसरेण रावणिरसौ यो दुर्यशोभागिनं
चक्रे गौतमशापयन्त्रितभुजस्थेमानमाखण्डलम् ।
कक्षागर्तकुलीरतां गमयता वीर त्वया रावणं
तत्संमृष्टमहो विशल्यकरणो जागर्ति सत्पुत्रता ॥५५॥

राम-(दया और खेदके साथ) तात लक्ष्मण ! पर्वतोंकी गुफाओंमें अपनी योनिके लिये विहित परमसुखका अनुभव करते-हुए महावीर निरपराध वालिको मारकर मैं अभागा किस प्रकार जानकीके सुखको भोग सकूँगा, इतना कह अपना शिर धुनते हुए

वालिसे कहने लगे कि–हे वानर ! वीर ! जिस रावणकुमार मेघनादने अनेकों शस्त्रोंका प्रहार करके गौतमके शापसे रुका है भुजबल जिसका ऐसे इन्द्रका अपयश किया, उस इन्द्रके अपयशको, बगलके भीतर रावणको कीडेकी समान दाबनेवाले तुमने धोकर दूर कर दिया और यह तुम्हारा सत्पुत्र अंगद तुम्हारे कांटेको दूर करनेके लिये जीवितही है ॥ ५५ ॥

वाली प्राणांस्त्यक्तुमिच्छन्–

सुग्रीवोऽपि क्षमः कर्तुं यत्कार्यं तव राघव ।
किमहं न क्षमः कस्मादपराधं विना हतः ॥ ५६ ॥

वाली–(प्राणोंको त्यागनेकी इच्छा करता हुआ) हे राघव ! आपके जिस कार्यको सुग्रीव कर सकता है, उसको क्या मैं नहीं कर सक्ता था, फिर विना अपराधके मुझे किस कारणसे मारा ॥ ५६ ॥

रामः सबाष्पम्–

शुद्धिर्भविष्यति पुरन्दरनन्दन त्वं
मामेव चेदहह पातकिनं शयानम् ।
सौख्यार्थिनं निरपराधिनमाहनिष्य-
स्यस्मात्पुनर्जनकजाविरहोऽस्तु मा मे ॥ ५७॥

राम–(नेत्रोंमें आँसू भरकर) हे इन्द्रनन्दन वाली ! जब तू मुझ पातकी निरपराधीको सुखकी इच्छासे सोतेमें मारेगा. तब ही मेरे चित्तकी शुद्धि होगी, इस तेरे मारनेके अपराधसे अब फिर मुझको जानकीका विरह न हो ॥ ५७ ॥

पौरन्दरिः–

तथेत्युक्त्वा पुनः स्वर्ग्या गतिस्ते न भविष्यति ।
यावत्त्वां न हनिष्यामि स्थास्यसि त्वं यमालये
॥ ५८ ॥ इति प्राणान्मुमोच ।

वाली-तथास्तु कहकर बोला कि-जबतक मैं आपका वध न करूं, तबतक आप निज धामको न पधारें, किन्तु भुवर्लोकमें अवतार धारते रहें, ऐसा कहकर प्राण छोड दिये ॥ ५८ ॥

हनूमान स्वगतम्-

दासैरहो रघुपतिः परिभूयते किं
वैवस्वतादिभिरुवास तदालयेऽपि ।
यो देववाक्यमनतिक्रमयन्कियन्तं
कालं निहत्य पुरुहूतसुतं तु देवः ॥ ५९ ॥

हनुमान्-(मनही मनमें) जो देव रामचन्द्रजी देवताओंके कथनको पालन करनेके निमित्त वालिको मारकर, वैवस्वतादिके सहित उनके स्थानमें निवास करते हुए, आश्चर्य है क्या वह रघुनाथजी दासोंसे तिरस्कार किये जाते हैं ॥ ५९ ॥

रामः कथंचिद्विषादं परित्यज्य पौरुषमवलम्ब्य-

राज्ये सुग्रीवमादौ सदयितमभिषिच्याङ्गदं यौवराज्ये
रामः सेनाधिपत्ये सपवनतनयान्वानरेन्द्रान्प्रतस्थे ।
लंकां संत्यज्य शंकां तदनु कपिभटैर्मौल्यवत्युत्तमाद्रौ
वर्षाकालं सलीलं गमयितुमचिरान्मन्त्रिभिःसंमतोऽभूत

रामचन्द्र-(किसी प्रकार खेदको त्याग और धैर्य धरकर) पहिले स्त्री सहित सुग्रीवको राज्यपर और अंगदको युवराज पदपर तथा पवनकुमार सहित वानरेन्द्रोंको सेनापतियोंके पदोंपर अभिषेक करके निःशंक हो लंकापर चढाई कर चले इतना विचार होनेपर वीर वानरोंने वर्षाकालको लीलासे बितानेकी ही सम्मति दी; और रामचन्द्रजीने भी इस बातको स्वीकार कर लिया ॥ ६० ॥

रामात्परः शूरतरो न कश्चित्पराभवःस्त्रीहरणान्न चान्यः।
तथापिनाब्धिप्रविवेश रामोबबन्धसेतुंविजयासहिष्णुः॥

श्रीरामचन्द्रजीसे बढकर कोई परम शूरमा नहीं है, और स्त्री हरणसे बढकर और कोई तिरस्कार नहीं है, तथापि श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रमें प्रवेश नहीं किया किन्तु सेतु ही बाँधा ॥ ६१ ॥

अपि च—

रामाद्बलीयान्न परोऽत्र कश्चिद्दारापहारान्न परोऽभिमानः।
तथापि रामःशरदं प्रतीक्ष्य बद्ध्वांबुधौ सेतुमरिं जगाम ६२

(और भी) इस संसारमें श्रीरामचन्द्रजीसे बढकर कोई बली नहीं है, और स्त्रीको हरलेनेसे बढकर कोई अभिमान नहीं है, तथापि श्रीरामचन्द्रजीने वर्षाकालकी बाट देख, समुद्रमें सेतु बांधकर ही शत्रुपर चढाई की ॥ ६२ ॥

रामस्तत्र जनकतनयाकमनीयतामनुस्मृत्य—

इन्दुर्लिप्त इवांजनेन गलिता दृष्टिर्मृगीणामिव
म्लानारुणमेव विद्रुमदलं श्यामेव हेमप्रभा ।
पारुष्यं कलया च कोकिलवधूकंठेष्विव प्रस्तुतं
सीतायाःपुरतस्तु हन्त शिखिनां बर्हाःसगर्हा इव६३

राम—(तहाँ जानकीकी कमनीयताका स्मरण करके) जानकीके सामने चन्द्रमा मानो अंजनसे पुतगया, हरणियोंकी दृष्टि मानो नीचेको झुकगई, मृगोंकी लाली मानो अतिमलिन होगई, सुवर्णकी आभा काली पडगई और प्रियाके थोडेसे भाषणके सामने ही कोकिलाओंके कंठोंमें मानो कठोरता प्रतीत होने लगी तथा मोरोंकी चन्द्रकायें निन्दनीय होगईं ॥ ६३ ॥

रामः कादम्बिनीतांडवाडम्बरं विलोक्य—

यत्त्वन्नेत्रसमानकान्तिसलिले मग्नं तदिन्दीवरं
मेघैरन्तरितः प्रिये तव मुखच्छायानुकारी शशी।

येऽपि त्वद्गमनानुकारिगतयस्ते राजहंसा गता-
स्त्वत्सादृश्यविनोदमात्रमपि मे दैवेन न क्षम्यते६४॥
इति श्रीहनुमन्नाटके वालिवधो नाम पञ्चमोऽङ्कः ॥ ५ ॥

राम-फिर (मेघमालाके परम आडम्बरको देखकर) यह जो तेरे नेत्रोंकी समान कान्तीवाला प्रसिद्ध नीकलमल जलमें डूबगया, और हे प्रिये ! तेरे मुखकी कांतिका अनुकरण करनेवाला चन्द्रमा भी मेघोंसे छुपगया, तथा तेरे गमनकी समान चलनेवाले जो राजहंस थे वे भी चलेगये इससे प्रतीत होता है कि, तेरी समतावाले जिन पदार्थोंमें मैं जी बहलाता था मेरे उस विनोदकोभी दैव नहीं सहसकता है ॥ ६४ ॥

इति भाषाटीकामें वालिवध नामक पञ्चम अंक समाप्त ५.

षष्ठोऽङ्कः ।

रामः वानरभटानाचष्टे । भो भो सुग्रीवसैनिकाः शृणुत-

व्यसने महति प्राप्ते स्थिरैः स्थातुं न युज्यते ।
लंकां निःशंकमालोक्य क इहागन्तुमर्हति ॥१॥

राम-वीर वानरोंसे कहनेलगे कि-रे रे सुग्रीवके सैनिको ! सुनो बडी भारी विपत्ति आपडनेपर धैर्यवान् पुरुषभी स्थिर नहीं रहसकते हैं, सो तुममें कोई ऐसा धैर्यवान् है कि जो निःशंक लंकाको देखकर फिर यहीं लौट आनेकी शक्ति रखता हो ॥ १ ॥

हनुमान् (सहर्षं दोस्तम्भास्फालनकेलिमभिनीय निजप्रचण्डदोर्दण्डयोर्महतीं प्रौढिं नाटयति । देव पश्य-)

अष्टांगुलमयः कायः पुच्छो मे द्वादशांगुलः ।
बाहू मे पश्य भो नाथ कथं रत्नाकरं तरे ॥ २ ॥

हनूमान्-(बडी प्रसन्नताके साथ भुजदण्डोंको ताल देनेका अभिनय करके) अपने भुजदण्डोंकी परम प्रौढी दिखातेहुए कहनेलगे कि, भगवन् देखिये ! मेरा शरीर आठ अंगुलका और पूंछ बारह अंगुलकी

है तथा मेरी भुजाओंको भी देखलीजिये, तथापि हे नाथ ! देखिये मैं समुद्रको कैसा तरता हूं ॥ २ ॥

रामचन्द्रः सविस्मयो बभूव-

ततो जाम्बवान् । देव रुद्रावतारोऽयं मारुतिः रुद्रस्तुतिः क्रियताम् । रामचन्द्रो रुद्रस्तुतिं कृत्वा भो भो मारुते, त्वया विहीनः कः कर्तुं समर्थोऽस्ति । तत्र हनूमान्महावीराद्भुतपराक्रमः । सहर्षं वाक्यम् । देवाकर्णय-

श्रीरामचन्द्रजी आश्चर्यमें हो गये तब जाम्बवान्ने कहा कि-हे देव ! यह पवनकुमार रुद्रके अवतार हैं, इस कारण रुद्रदेवकी स्तुति करना चाहिये, तब श्रीरामचन्द्रजी रुद्रदेवकी स्तुति करके कहने लगे कि, भो भो पवनकुमार ! तुम्हारे सिवाय इस कार्यको कौन कर सकता है ? तब महावीर अद्भुतपराक्रमी हनुमान्जी परम प्रसन्न होकर यह वाक्य बोले कि हे देव ! सुनिये-

कूर्मो मूलवदालवालवदपां नाथो लतावद्दिशो
मेघाः पल्लववत्प्रसूनफलवन्नक्षत्रसूर्येन्दवः ।
स्वामिन्व्योमतरुर्मम क्रमतले श्रुत्वेति गां मारुतेः
सीतान्वेषणमादिशन्दिशतु वो रामः सहर्षः श्रियम् ३

कूर्म जिसकी जडसमान है, समुद्र जिसके थामलेकी समान हैं, दिशायें जिसकी लताकी समान हैं, मेघमण्डल जिसके पत्तोंकी समान हैं, तारागण और सूर्य चन्द्रमा जिसके फूल फलोंकी समान हैं, हे नाथ ! ऐसा आकाशरूपी वृक्ष मेरे चरण उठाने और रखनेके नीचे दबा हुआ है, पवनकुमारके ऐसे कथनको सुनकर जिन्होंने सीताकी खोज करनेको आज्ञा दी, वह प्रसन्नतायुक्त श्रीरामचन्द्रजी तुमको लक्ष्मी दें ॥ ३ ॥

देवाज्ञापय किं करोमि सहसा लंकामिहैवानये
जम्बूद्वीपमितो नये किमथवा वारांनिधिं शोषये।
हेलोत्पाटितविन्ध्यमन्दरगिरिः स्वर्णत्रिनेत्राचल-
क्षेपक्षुण्णविवर्तमानसलिलं बध्नामि वारांनिधिम् ४

(हनुमान्) महाराज ! आज्ञा दीजिये मैं कौन कार्य करूं क्या अभी लंकाको ही यहां उठालाऊँ या जम्बूद्वीपको लंकाके समीप पहुँचा दूँ, अथवा समुद्रको सुखाडालूं, या काहिये तो सहजमेंही उखाडे हुए विन्ध्य, मंदराचल, सुमेरु, और कैलाशको डालनेसे जलको विलोडनेसे समुद्रको पाट दूं ॥ ४ ॥

अपि च-

देवाज्ञां देहि राज्ञां त्वमसि कुलगुरुः शोषये किं पयोधिं
किंवा लंकां सलंकाधिपतिमुपनये जानकीं मानकीर्णाम्।
सेतुं बध्नामि मत्तः स्फुटितगिरितटीभूतभङ्गातरङ्गा-
दुद्भ्राम्यन्नक्रचक्रोऽपि च मकरकुलग्राहचीत्कारघोरम् ५

(और भी) अब मुझे आज्ञा दीजिये कि, मैं समुद्रको सुखाऊ, या रावण सहित लंकापुरीको ही यहाँ ले आऊं, या पतिव्रत धर्ममें बढी हुई जानकी माताको लिवा लाऊं, अथवा कहिये तो समुद्रका पुल बांध डालूं जिससे कि, अभी मेरे तोडे हुए पर्वतोंके शिखरोंसे समुद्रमेंके जलजंतुओंका नाश होने लगे, और तरंगोंके साथ उछलते हुए नाके मच्छ और ग्राहोंके समूहोंका घोर चीत्कार होने लगे ॥ ५ ॥

किं प्राकारविहारतोरणवतीं लंकामिहैवानय
किं वा सैन्यसमुद्धृतं च सकलं तत्रैव संपादये।
हेलान्दोलितपर्वतोच्चशिखरैर्बध्नामि वारांनिधिं
देवाज्ञापय किं करोमि सकलं दोर्दण्डसाध्यं मम ॥६॥

हे देव ! क्या परकोटे, बिहारके स्थान और बडे २ द्वारोंवाली, लंकाको भी यहाँ ले आऊँ, या रावणकी सब सेनाको तिस लंकापुरीमें ही नष्ट कर डालूं अथवा सहजमें ही उठाये हुए पर्वतोंके ऊंचे २ शिखरोंसे समुद्रको पाट दूं हे देव ! आज्ञा दीजिये मैं क्या करूं इन मेरे भुजदण्डोंसे सब कुछ हो सकता है ॥ ६ ॥

रामः सत्वरं करमुद्रां समुद्धृत्य, वीर मारुते–

मुद्रां समुद्रमुल्लंघ्य शीघ्रमाश्वस्य जानकीम् ।
विन्यस्य पुरतस्तस्या आगच्छ मयि जीवति ॥७॥

रामचन्द्र शीघ्रही हाथमेंसे अंगूठी उतारकर कहनेलगे कि हे पवनकुमार ! यह अंगुठी ले और शीघ्रही समुद्रको लांघ जानकीको धैर्य दे और उसके सामने इसको रखकर मेरे जीवतेहुएही शीघ्र लौट आओ ॥ ७ ॥

हनूमांस्तथेति श्रीरामसुग्रीवौ प्रणम्य समादाय मुद्रां–
समुद्रोपकण्ठं पीठावतारमासाद्य सद्योचिन्तयत्–

एते ते दुरतिक्रमाः क्रममिलद्घूर्णोर्मिमर्मच्छिदः
कादम्बेन रजोभरेण ककुभो रुन्धन्ति झञ्झानिलाः।
गाढाम्रेडनरूढनीरदघटासंघट्टनीलीभव-
द्व्योमास्फोटकटाहनिर्झरपयोवेणीकणग्राहिणः॥८॥

हनुमान्–श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाको तैसे ही मानकर, श्रीरामचंद्र और सुग्रीवको प्रणाम कर तथा अंगूठीको लेकर समुद्रके एक ऊंचे स्थान पर आपहुंचे और सहसा विचारनेलगे, कि यह कठिनसे लांघनेयोग्य क्रमसे मिलकर घूमतीहुई तरंगोंके द्वारा लोकोंके मर्मस्थानमें पीडा पहुंचानेवाले बडीभारी आँधीके मिलनेसे बढीहुई मेघघटाके संयोगसे श्यामवर्ण हुए आकाशमें झझरे ब्रह्मकटाहमेंसे टपकते हुए गंगाके प्रवाहके जलकणोंको ग्रहण करनेवाले यह वर्षाके पवन कदम्बके रजोंसे दिशाओंको ढकते हैं॥८॥

धैर्यमवलम्ब्योच्चलांगूलास्फालकेलिव्याकुली-
कृताम्बरचरः सज्जो बभूव-

अथ सविलसदम्भःस्तम्भिताक्षिप्रकाशं
जलचरखललेखास्फालवाचालिताशम् ।
जलनिधिमधिवीरोल्लंघितुं जांघिकत्वं
खगपतिरिव चण्डोड्डीनमङ्गीचकार ॥ ९ ॥

धैर्य धरकर ऊपरको उठीहुई पूंछको हिलानेकी क्रीडासे आकाशचारी जीवोंको व्याकुल करतेहुए, तैयार होगये और जलके विलाससे नेत्रोंकी दृष्टिको चौंधानेवाले और जलचरोंकी निरन्तर क्रीडाके उत्पातोंसे दिशाओंको शब्दायमान करतेहुए समुद्रको लांघनेके लिये हनुमान्‌जी शीघ्रगामी गरुडजीकी समान आकाशमें उडनेकी प्रचण्डगतिसे चलदिये ॥ ९ ॥

लांगूलोत्तालकेतुर्नभसि पृथुगतिः स्फारसीमन्तिताभ्रः
स्फूर्जत्प्रौढोरुवेगोल्ललितजलनिधिः पृष्ठकृष्टोग्रसत्त्वः ।
दूरात्सिन्दूरपूरारुणमरुणरुचिस्तेजसः संविभागै-
श्चक्रेदिग्वारणानांकटितटमभितः सूर्यविद्धाम्बुदाभम् ॥ १० ॥

आकाशमें पताकाकी समान पूछको उठाये, बडी बडी डिगोंसे छलांगें मारते, कुलांचोंसे मेघोंको फाडते दौडते,जंघाओंके परमवेगसे समुद्रके जलको उछलाते पीठसे बडे बडे राक्षसोंको खैंचते सिंदूरकी समान रक्तवर्ण दिग्गजोंके कटितटके चारों ओर अपने शरीरकी कान्तिको फैलाकर सूर्ययुक्त मेघमण्डलकी समान दृश्य करतेहुए हनुमान्‌जी चलनेलगे ॥ १० ॥

तत्रावसरे समुद्रादुत्थितो मैनाकः-

विश्रान्तस्तत्र हर्षात्सपदि जलधिना प्रेरितो रत्ननाभो
मैनाकः काञ्चनाङ्गस्तुहिनगिरिसुतः प्राह दूरागतस्त्वम्।

हंहो दूराध्वखेदं जहि मम शिखरे प्राप्य तस्येति वाचं
स्पृष्टांगुल्या तदग्रं भुजरयपवनापूरिताशं जगाम॥ ११॥

उसी समय मैनाक समुद्रमेंसे उठकर कहनेलगा कि हे पवनकुमार ! पक्ष काटनेवाले इन्द्रके भयसे मैं यहां छुपाहुआ रहता हूं मेरी नाभीमें अनेकों रत्न हैं मैं हिमालयका पुत्र सुवर्णके शरीरवाला मैनाक, समुद्रकी प्रेरणासे आपसे प्रार्थना करता हूं कि तुम दूरसे आये हो मेरे शिखरपर ठहरकर मार्गके श्रमको दूर करो इसकी यह वाणी सुन पवनकुमारने उसके शिखरके अग्रभागको चरणकी अंगुलिसे छूदिया, और भुजाओंकी वेगकी पवनसे दिशाओंको भरते हुए आगेको चल दिया ॥ ११ ॥

वेलातटे शालतमालमालां विलोकमानः सहसाञ्जनेयः।
उल्लोलयन्वालधिवल्लिमुच्चैः कल्लोलिनीवल्लभमुल्ललंघे।

समुद्रके तटपर शाल और तमालके वृक्षोंकी पंक्तिको देखते हुए अंजनीपुत्र हनुमानजी पुच्छलताको ऊपर फहराते हुए अनायासमेंही नदीनाथ समुद्रके पार होगये ॥ १२ ॥

अथ दशरथसूनोराज्ञया वायुपुत्रो
रजनिचरपुरीमालोक्य भूत्वा द्विदंशः।
अकलितपरिमाणो मात्रया सत्रपस्तां
क्षिपति जनकजाग्रे शिंशपाग्रावतीर्णः ॥ १३॥

इसके अनन्तर पवनकुमारने दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाके अनुसार राक्षसपुरी लङ्काको देखकर मच्छरकी समान रूप धार गणनाके अयोग्य शरीरके आकारसे लज्जायुक्त अशोकके वृक्षसे उतर उस मुद्रिकाको जानकीके आगे डालदिया ॥ १३ ॥

जानकीं नमस्कृत्य मारुतिः-

मातर्जानकि को भवानिह मृगः केनात्र संप्रेषित-
स्त्वद्दौत्येन रघूत्तमेन किमिदं हस्तेऽस्ति तन्मुद्रिका

दत्ता तेन तवैव तां निजकरादालभ्य चालिंग्य च
प्रेम्णाश्रूणि ससर्ज सम्यगुदभूद्गात्रेषु रोमोद्गमः॥१४॥

जानकीको प्रणाम करके पवनकुमार-मातः जनकनंदिनी! जानकी-तू कौन है यहां? हनुमान्-वानर। जानकी-यहां किसने भेजा है? हनुमान्-तुम्हारा सन्देशा लेकर रघुनाथजीने। जानकी-यह हाथमें क्या है? हनुमान्-उनकी अंगूठी है और उन्होंने तुम्हारे ही लिये दी है। जानकी उस अंगूठीको अपने हाथसे उठा और हृदयसे लगाकर प्रेमके कारण आंसू गिरानेलगी तथा उनके अंगोंपर भलीप्रकार रोमांच हो आये॥ १४॥

हनुमानविरलगलदश्रुपूर्णलोचनाभ्यां सौवर्णमंगुलीयकं मन्यमानां जानकीं संभावयामास। हे भामिनि-

सुवर्णस्य सुवर्णस्य सुवर्णस्य च मैथिलि।
प्रेषितं रामचन्द्रेण सुवर्णस्यांगुलीयकम्॥ १५॥

हनुमान् निरन्तर गिरतेहुए आँसूओंसे भरे नेत्रों करके सुवर्णकी अंगूठीको मान्य देनेवाली जानकीको आश्वासन देनेलगे कि हे भामिनी! सुन्दर रंगवाले सुन्दर रामनाम वर्णोंसे युक्त दशमासे सोनेकी यह अंगूठी हे माता जानकी! श्रीरामचन्द्रजीने तुम्हारे लिये भेजी है॥ १५॥

जानकी आशालेशमासाद्य क्षणमश्रूणि प्रमृज्य मुद्रिकाव्याजेन मारुतिं प्रति-

मुद्रे सन्ति सलक्ष्मणाः कुशलिनः श्रीरामपादाः सुखं
सन्ति स्वामिनि मा विधेहि विधुरं चेतोऽनया चिन्तया।
एतां व्याहर मैथिलाधिपसुते नामान्तरेणाधुना
रामस्त्वद्विरहेण कङ्कणपदं ह्यस्यै चिरं दत्तवान्॥१६॥

जानकी (कुछेक आशा पाकर और कुछ देरमें आंसुओंको पोंछकर अंगूठीके मिससे हनुमान्जीके प्रति)-

हे मुद्रिके ! लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीके चरण प्रसन्न हैं ? यह सुन हनुमान्‌जीने कहा कि हे भगवति ! तुम इस चिन्तासे अपने चित्तको दुःखित न करो, जनकराजकुमारी ! इस मुद्रिकाको अब तुम दूसरे नामसे पुकारो क्योंकि तुम्हारे विरहके कारण श्रीरामचन्द्रजीने अब इसको चिरकालके लिये कंकणका स्थान देदिया है ॥ १६ ॥

अत्रांगुलीयकमणौ प्रतिबिम्बमासी-
द्रामस्य सादरमतीव विलोकयन्ती ।
मद्रूप एव किमभून्मम वीक्षयेति
मीमांसया जनकराजसुता मुमोह ॥ १७ ॥

इस अंगूठीके नगीनेमें बडे आदरके साथ श्रीरामचन्द्रके नामके अक्षरोंको देखती हुई सीता उसमें अपनाही प्रतिबिम्ब देखने लगी अथवा मणिमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर भ्रममें पडगई कि इसमें तो श्रीरामचन्द्रजीका चित्र था क्या प्राणनाथ मेरी चिन्तासे मेराही रूप हो गये ऐसे विचारमें जनककुमारी मूर्च्छित हो गई ॥ १७ ॥

कथंचिच्चेतनां प्राप्य-

अये मरुत्तनय यद्यंगुलीयकमेव कंकणमभूत्स्वा-
मिनो रामदेवस्य तर्हि किमिव तनुतां गतः ?

(किसी प्रकार चेतना पाकर) अयि पवनकुमार ! यदि अँगूठी ही प्राणनाथका कंकण हो गई तो यह तो बताओ कि वह किसके समान दुर्बल हो गये हैं ?

हनुमान्-

स्वभावादेव तन्वङ्गि त्वद्वियोगाद्विशेषतः ।
प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गतः ॥१८॥

हनुमान्-हे दुर्बलाङ्गी ! एक तो महाराज स्वभावसे ही दुर्बल थे, और तुम्हारे वियोगके कारण तो अब ऐसे विशेष दुर्बल होगये हैं कि-जैसे प्रतिपदाके दिन पढनेवाले विद्यार्थीकी विद्या क्षीण होजाती है ॥ १८ ॥

जानकी-

चन्द्रो यत्र दिनेशदीधितिसमः पद्मं स्फुलिंगोपमं
कर्पूरः कुलिशोपमः शशिकला शम्पासमा भासते ।
वायुर्वाडववह्निवन्मलयजो दावाग्निवत्सांप्रतं
संदेशं नय रामसंनिधिमितो यात्रां द्रुतं कारय॥१९॥

जानकी-जहां चन्द्रमा सूर्यकी किरणोंकी समान, कमल अग्निके कणोंकी समान, कपूर वज्रकी समान, चद्रमाकी कला बिजलीकी समान, वायु वडवानलकी समान और चन्दन अग्निकी समान प्रतीत होता है इस कारण हे पवनकुमार ! इस संदेशेको लेकर तुम शीघ्रही यहांसे श्रीरामचन्द्रजीके समीप चलेजाओ और उनको लिवाकर लाओ ॥ १९ ॥

हनुमान्-

किं दूरमिन्दुमुखि रामशिलीमुखानां
किं दुर्गमर्गलभिदां हरियूथपानाम् ।
दैवं प्रसन्नमिव देवि तवाद्य सत्यं
रक्षांसि कानि कुपितस्य सलक्ष्मणस्य ॥ २० ॥

हनुमान्-हे चन्द्रवदनि ! श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंको क्या दूर है परकोटोंको तोडनेवाले वानरोंको क्या दुर्गम है हे देवि ! मुझे तो दैव प्रसन्नसा प्रतीत होता है यदि लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजीको क्रोध आ गया तो मैं इस समय तुमसे सत्य कहता हूं कि- यह राक्षस बिचारे हैं ही क्या ॥ २० ॥

अत्रान्तरे जानकीं सप्रपञ्चं पृच्छन्हनुमान्-मातः कुत्रास्ते राजवाटिका ?

इसी वार्त्तालापके बीचमें जानकीसे बातोंही बातोंमें हनुमान्जीने पूछा कि हे माता ! राजा रावणकी बगीची कहाँ है ? ॥

दर्शयति जानकी–

रे पुत्र पश्चिमदिग्भागेनास्यास्ति वाटिका । हनू-
मान् उद्यल्लांगूलप्रचण्डरूपेण प्रचलितः–
इत्युक्त्वा रजनीचरस्य हनुमानुद्भिद्य लीलावनं
वीरं तत्सुतमक्षमात्तपरिघाघातैर्जघानागतम् ।
तत्कोपारुणलोचनेन्द्रजयिना प्राङ् निष्फलत्वाद्धृतं
ब्रह्मास्त्रेण विगर्हितेन विधिना बद्धो विदग्धः कपिः २१

(जानकी दिखाती है) रे पुत्र ! इस बगीचीके पश्चिम भागमें वह बगीची है, हनुमान्–(पूंछको उठाये प्रचण्डरूपसे चलदिये) सीताजीके इस प्रकार कहनेपर हनुमान्‌जीने रावणके लीलावनको उजाडकर और उस रावणके पुत्र अक्षकुमारके युद्ध करनेको आने पर किसीसे छीने हुए मुद्गरसे उसको यम-पुर पहुंचा दिया तदनन्तर हनुमान्‌जीके ऊपर क्रोधके कारण लाल लाल नेत्रवाले मेघनादके पहिले निष्फल होनेके कारण निंदा किये हुए, ब्रह्माजीके अस्त्रसे हनुमान्‌जी बँध गये ॥ २१ ॥

रावणः तमालोक्य–

रे रे वानर को भवानहमरे त्वत्सूनुहन्ताहवे
दूतोऽहं खरखण्डनस्य जगतां कोदण्डदीक्षागुरोः ।
महोर्दण्डकठोरताडनविधौ को वा त्रिकूटाचलः
को मेरुः क्व च रावणस्यगणना कोटिस्तु कीटायते२२

रावण–(हनुमान्‌जीको देखकर) रे रे वानर ! तू कौन है ? हनुमान् अरे ! मैं संग्राममें तेरे पुत्र अक्षको मारनेवाला खरदूषणादिके हन्ता जगत्‌में धनुर्विद्याके गुरु श्रीरामचन्द्रजीका दूत हूं, मेरे कठोर भुजदण्डोंकी कठोर झपेटमें त्रिकूटाचल सुमेरु पर्वत क्या है और रावणकी तो गिनती ही क्या, ऐसे ऐसे करोड़ों कीडे कुचल जाते हैं ॥ २२ ॥

ईषत्सज्जनमैत्रीव नाभिद्यत कपेस्तनुः ।
निहता चंद्रहासेन रावणेनातिरंहसा ॥ २३ ॥

रावणने बडे वेगके साथ हनुमान्‌जीके ऊपर चन्द्रहास नामक तलवारका प्रहार किया परन्तु सज्जनकी मित्रताके समान हनुमान्‌जीके शरीरमें उससे कुछ भी चोट न लगी ॥ २३ ॥

लांगूले चैलतैलप्लुतबहलशणैर्वेष्टिते दीप्यमानो
रक्षोभिर्वीक्षितोऽग्निर्द्विजपरुषगिरा राघवो यद्यतुष्टः ।
तुष्टो यद्याज्यहोमैस्त्वमपि रघुपतेर्यद्यहं भक्तियुक्ता
सतप्तः प्रार्थितोमातदिहहनुमतःसीतया शीतलोऽभूत् ॥

(तलवारके निष्फल होनेपर अपनी पूर्वोक्त चतुराईको प्रकट करनेके लिये हनुमान्‌जीने कहा तू मुझको भस्म करवादे, तब रावणने उनकी पूँछमें अग्नि लगवादी, उस समय सीताजी कहती हैं कि) हे अग्निदेव ! यदि श्रीरामचन्द्रजी ब्राह्मणोंको किसीके दुर्वचन कहनेपर असंतुष्ट होते हैं, तुम घृतके होमोंसे संतुष्ट हो, और रामचन्द्रजीमें मेरी भक्ति है तो राक्षसोंके कुतूहल देखतेमें तेलसे भीगे पुराने वस्त्र और बहुतसे सनसे लिपटी और जलती हुई पूंछसे हनुमान्‌को कष्ट न दो इस प्रकार सीताजीके प्रार्थना करनेपर अग्नि शीतल हो गया ॥ २४ ॥

वह्निर्वभौवानरपुच्छजन्मासदाह्यलङ्कांखमिवोत्पतिष्णुः।
रामाद्भयंप्राप्यकिलप्रतापःपलायमानो दशकंधरस्य२५

वह हनुमान्‌जीकी पूंछसे उत्पन्न हुआ अग्नि लंकाको भस्म करके आकाशमें उडता हुआ ऐसा प्रतीत हुआ कि—मानो रावणका प्रताप निःसंदेह रामचन्द्रजीके भयसे भागा जा रहा हो ॥ २५ ॥

पलानि भुक्त्वा चपलः पलाशिनां हुताशनस्तृप्ति-
मुपागतः पराम् । विराजते स्म प्रतियातनाछला-
ज्जलानि चाब्धौ तृषितः पिबन्निव ॥ २६ ॥

लपटें लेता हुआ अग्नि मांसभक्षी राक्षसोंका मांस भक्षण करके परम तृप्तिको प्राप्त हुआ, और ऐसी शोभाको प्राप्त हुआ कि मानो समुद्रके जलमें प्रतिबिम्बित हुई लपटोंके बहानेसे प्यासा हुआ समुद्रमें जल पी रहा है ॥ २६ ॥

रावणः स्वगतम्–

यद्ययं रुद्रो मारुतिस्तर्हि किमिति रुद्रभक्तस्य मे नगरीं दहति अहह ज्ञातम् ।

तुष्टः पिनाकी दशभिः शिरोभिस्तुष्टो न चैकादशको हि रुद्रः । अतो हनूमान्दहतीति कोपात्पंक्तेर्हि भेदो न पुनः शिवाय ॥ २७ ॥

(रावण अपने मनही मनमें) यदि यह पवनकुमार रुद्रावतार है तो मुझ रुद्रभक्तकी नगरीको क्यों भस्म करे डालते हैं ? ओहो ! समझ गया–

पिनाकधारी शिवजी दश मस्तकोंसे प्रसन्न हो गये परन्तु ग्यारहवें रुद्र प्रसन्न न हुए इसी कारण हनुमान् कोपकर लंकाको भस्म कर रहे हैं सो ठीक ही है क्योंकि पंक्तिका भेद कभी मंगलदायक नहीं होता ॥ २७ ॥

अपि च–

अब्धिः किं वडवानलेन तरणेर्बिम्बेन किं चाम्बरं मेघः किं चपलाचयेन शशिभृत्किं भालनेत्रेण वा । कालः किं क्षयवह्निनेन्द्रधनुषा धाराधरः किं महान् मेरुः किं ध्रुवमण्डलेन स कपिः पुच्छेन खे राजते२८

और भी–क्या वडवानलसे समुद्र शोभित होरहा है ? क्या सूर्यके बिम्बसे आकाश शोभित होरहा है ? क्या बिजलियोंके समूहोंसे मेघमण्डल शोभित होरहा है ? क्या धधकती हुई अग्नि-

ाले तीसरे नेत्रसे युक्त चन्द्रशेखर शिव हैं ? क्या क्षयकारक ाग्निवाला महाकाल है ? क्या इन्द्रधनुषधारी मेघ है ? क्या ध्रुव-ण्डलयुक्त सुमेरु पर्वत है ? अथवा यह दहकतीहुई पूंछवाले वह वनकुमार हनुमानजी ही आकाशमें विराजरहे हैं ॥ २८ ॥

अथ राक्षसाः-

मरुत्पुत्रस्त्वेकः कपिकटकरक्षामणिरसौ
समुद्यल्लांगूलो ध्वज इव समाश्लिष्टगगनः ।
पुनः प्रत्यायास्यत्यहह कपिसैन्ये प्रचलिते
पदं प्रोचुर्नीचैर्भयचकितलङ्कापुरजनाः ॥ २९ ॥

(लंकानिवासी राक्षसगण) वानरोंकी फौजकी रक्षाका सर-ार ऊंची पूंछवाला पताका (झंडी) की समान आकाशको ोडनेवाला यह अकेला पवनपुत्र ही जिस समय वानरोंकी सेना ाथ चलकर आवैगी उस समय फिर भी इस लंकामें आवैगा इस ाकार भयसे चकित हो लंकाके रहनेवाले धीरे २ आपसमें हनेलगे ॥ २९ ॥

अथाह गगनमण्डलस्थो मारुतिः-

एकोऽहं पवनात्मजो दशमुख त्वं चापि कोटीश्वर-
स्त्वां जित्वा समरे प्रभोः प्रणयिनीं सीतां च नेतुं क्षमः।
किं तूत्थाप्य भुजं पुरा भगवता रामेण सुग्रीवतो
हत्वा दक्षिणपाणिना वसुमतीं त्वां हन्तुमुक्तं वचः॥३०

इसके उपरान्त आकाशमें स्थित हुए हनुमान्‌जी बोले हे दशा-नन ! मैं तो पवनका पुत्र अकेलाही हूं और तू करोडोंका अधिपति है, मैं रणमें तुझसे विजय प्राप्त कर स्वामीकी पतिव्रता जानकी-को लेजासकता हूँ परन्तु पहिले भगवान् रामचन्द्रजीने अपनी भुजाको उठाकर दाहिने हाथसे पृथ्वीको ताडित कर स्वयं तेरा ,ध करनेकी सुग्रीवसे प्रतिज्ञा की है ॥ ३० ॥

इत्युक्त्वा दशग्रीवनगरीं भस्मसात्कृत्वा रक्षिता-
मशोकवनिकामागम्य जानकीं प्रणम्य रामाभि-
ज्ञानं याचते स्म हनूमान् ॥

ऐसा कहकर हनुमान्‌जी रावणकी पुरी (लंका) को जलाकर अग्निसे न जली अशोकवाटिकामें आ जानकीजीको प्रणाम करके श्रीरामजीके जतानेके लिये निशानी मांगने लगे ।

मैथिली–

शिखां धूमशिखां शत्रोः कालव्यालवधूमिव ।
उद्यम्यास्य शिरोरत्नं संज्ञानं स्वामिने ददौ ॥३१॥

इति प्रथममभिज्ञानम् ।

जानकीने कहा–शत्रुके कालरूप सर्पकी स्त्रीकी सदृश धूमशिखा (धूमकेतुकी पूँछ) की समान अपनी चोटीको खोल उसमेंकी अपनी चूडामणि स्वामी रामचन्द्रके निमित्त निशानी दी ॥ ३१ ॥

यह पहिली निशानी हुई ॥

तथा च चित्रकूटपर्वते–

वक्षोभिचारि चरुभाण्डमिव स्तनं यो
देव्या विदेहदुहितुर्विददार काकः ।
ऐषीकमस्त्रमधिकृत्य तदा ततोऽक्ष्णा
काणीचकार करुणो रघुराजपुत्रः ॥ ३२ ॥

इति द्वितीयमभिज्ञानम् ।

(चित्रकूट पर्वतमें) जिस कालरूपी जयन्तने छातीमें रहनेवाले चरुके पात्रकी समान देवी जानकीके कुचोंको विदीर्ण किया था तब तृण (तुनके) के बनायेहुए बाणको चढाकर करुणाकर रामचन्द्रजीने उस काकको एक नेत्रसे काना करदिया था ॥ ३२ ॥

यह दूसरी निशानी हुई ॥

मनःशिलायास्तिलकं तथा मे गण्डस्थले पाणितलेन मृष्टम् । स्मरेति संज्ञानमपि प्रयच्छ जीवाम्यतो राघव मासमात्रम् ॥ ३३ ॥

इति तृतीयमभिज्ञानम् ।

जिस समय कि मैनशिलाका तिलक मेरे कपोलस्थलमें हाथके रखनेसे विनसगया था उस समयकी पहिचानको याद करो, हे वायुपुत्र ! एक यह भी मेरी निशानी लेकर तुम जाओ, कहदेना कि हे रामचन्द्रजी ! आजसे लेकर एक महीनेतक आनेकी बाट देखती हुई मैं और जीवित हूँ ॥ ३३ ॥

यह तीसरी पहिचान है ॥

हनूमान्-

रत्नं यत्नाद्गृहीत्वा तदनु कपिभटश्चित्रकूटस्य संज्ञां नत्वा पादारविन्दद्वयमपि जनकस्यात्मजायाहनूमान् । पाणिभ्यामंघ्रियुग्मं पुनरुदधितटे मन्त्रयित्वाभ्रगर्भेणोर्व्यामुत्पत्य मग्नं तदुरुभुजबलाडम्बरेणाजगाम ॥३४॥

(हनुमान्) इसके अनन्तर वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमान्जी बडे यत्नसे चूडामणिको लेकर चित्रकूटकी पहिचानको स्मरण करके और महाराणी जनकतनयाके दोनों चरणकमलोंको प्रणाम करके दोनों हाथोंसे सीताके चरणोंको छूकर फिर समुद्रके तटपर आ विचार करके पृथ्वीसे ऊर्मिमाली समुद्रका उल्लंघन कर लम्बी चौडी भुजाओंके बलसे आकाशमार्गमें होकर आगये ॥ ३४ ॥

ततो मरुच्चुम्बितचारुकेसरः प्रसन्नताराधिपमण्डलाग्रणीः । वियुक्तरामातुरदृष्टिवीक्षितः समागतः श्रीहनुमान्वसन्तवत् ॥ ३५ ॥

तत्पश्चात् वायुसे चूमेहुए शुद्ध केसरवाले निर्मल चन्द्रमण्डलके आगे चलनेवाले वियोगी रामचन्द्रकी कातर दृष्टिसे देखे हुए श्रीहनुमान्जी वसन्त ऋतुकी समान आपहुँचे ॥ ३५ ॥

सीतापतिं ससंभ्रममालिङ्गितुमुद्यतं दृष्ट्वा–

अचंभेके साथ आलिंगन करनेको उद्यत सीतापति रामचंद्रको देखकर–

देव !

पीतो नाम्बुनिधिर्न कोणपपुरी निष्पिष्य चूर्णीकृता
नानीतानि शिरांसि राक्षसपतेर्नानायि सीता मया ।
आश्लेषार्पणपारितोषिकमहं नार्हामि वार्ताहरो
जल्पन्नित्यनिलात्मजः स जयति व्रीडाजडो राघवे ३६

हे देव ! न मैंने समुद्रका पान किया, न मैंने राक्षसकी लंकापुरीको पीसकर चूर्ण २ किया, राक्षसराज रावणके शिर भी नहीं लाया हूं और न सीता माताको लाया हूँ इस कारणसे एक संदेशमात्र लानेवाला मैं आलिंगनरूप इनामके योग्य नहीं होसकता इस प्रकार कहतेहुए और रामचंद्रजीके सम्मुख लज्जासे नम्र हुए हनुमान्जी जयको प्राप्त होरहे हैं ॥ ३६ ॥

रामः (सविकल्पं विधातारमुपलम्भते) क्रूरकर्मा विधाता किं विधास्यतीति ॥

रामचंद्र द्विविधाके साथ प्रारब्धको उलाहना देते हैं । नहीं मालूम यह क्रूर कर्मा विधाता क्या करैगा ॥

हनूमान् देव !

कुत्रायोध्या क्व रामो दशरथवचनाद्दण्डकारण्यमागात्
कोऽसौ मारीचनामा कनकमयमृगः कुत्र सीतापहारः ।

सुग्रीवे राममैत्री क्व जनकतनयान्वेषणे प्रेषितोऽहं
योऽर्थोऽसंभावनीयस्तमपि घटयति क्रूरकर्मा विधाता ३७

हनुमान्-स्वामिन् ! कहाँ अयोध्या पुरी ? और कहाँ आप ? कहाँ राजा दशरथके वाक्योंसे आपका दण्डक वनमें आना ? और कहाँ इस मारीचनाम राक्षसका सोनेका मृग बनना ? कहाँ जानकीका हराजाना ? और कहाँ सुग्रीवकी आपके साथ मित्रता ? कहाँ जानकीकी खोजमें मुझको भेजना ? जो काम होना असम्भवसा था क्रूरकर्मा ब्रह्मा उसको भी कर रहा है अर्थात् जिस ब्रह्माने यह सब कार्य किये हैं वही अब जानकीजीकोभी मिला देगा ॥ ३७ ॥

रामः-

हे वीर ! विदीर्यमाणहृदयद्वारेण प्राणा लोकान्तरं
गन्तुमिच्छन्ति किमिति तूर्णं चन्द्रवदनां नावेदयसि ।

रामचन्द्रजी-हे वीर ! विदीर्ण हुए हृदयरूपी द्वारसे यह प्राण परलोकको जाना चाहते हैं सो क्यों नहीं शीघ्र चन्द्रवदनी सीताकी कुशल सुनाते हो ?

हनुमान् सत्वरम्-

हा राम जगदानन्द किमिदं शिवमस्तु ते ।
तव प्राणगतिद्वारस्यार्गलेयं करे मम ॥ ३८ ॥

(हनुमान्-जल्दीसे) हे जगत्के आनन्द देनेवाले राम ! आपका कल्याण हो ! आप ऐसा क्या कह रहे हैं आपके प्राणोंके जानेके द्वारको बन्द करनेको डँडेला यह (चूडामणि) मेरे हाथमें है ॥३८॥

इति जानकीशिरोरत्नं रामाय प्रयच्छति ।

तथा च-

मनः शिलायास्तिलकं स्मर गण्डस्थले त्वया ।
संमृष्टं जानकीवक्षः स्पर्शात्काणीकृतं खगम् ॥ ३९ ॥

ऐसा कह जानकीकी चूडामणि रामचन्द्रजीको देते हैं (और भी) स्मरण करिये कि जानकीजीके गण्डस्थलमें लगा हुआ मैनसिलक तिलक आपसे बिगड गया था " और यह भी याद करिये कि' श्रीजानकीजीके वक्षःस्थलको स्पर्श करनेके अपराधमें आपने कौवेको काना किया था ॥ ३९ ॥

(रामोऽभिज्ञानत्रयमासाद्य) साधु मारुते साधु ।
अये प्रियायाः कुशलमस्ति ।

आञ्जनेयः-

कार्श्यं चेत्प्रतिपत्कलाः हिमनिधेःस्थूलाथ चेत्पाण्डिमा
नीला एव मृणालिकायदिघना बाष्पाःकियान्वारिधिः ।
संतापो यदि शीतलो हुतवहस्तस्याः कियद्वर्ण्यते
राम त्वत्स्मृतिमात्रमेव हृदये लावण्यशेषं वपुः ॥४०॥

(रामचन्द्रजी तीन चिह्नोंको लेकर) धन्य हो ! पवनतनय ! धन्य हो ! कहो प्यारी जनकदुलारी आनन्दसे तो है ? (हनुमान्) हे भगवन् ! श्रीजानकीजीकी दुर्बलताको बूझते हैं तो इतनी दुबली हो गई हैं कि प्रतिपद (पडवा) का चन्द्रमा भी उनसे बडा मालूम होता है, यदि उनके बडे भारी अश्रुप्रवाहकी ओर दृष्टि की जाय तो उसके सामने समुद्र भी कोई वस्तु नहीं और संतापाग्निको देखनेसे तो अग्नि भी ठंडी प्रतीत होती है । हे नाथ ! मैं जानकीकी किस किस दशाका वर्णन करूँ ? हे भगवन् हरघडी आपका स्मरण करनेसे केवल उनके एक हृदयमें ही लावण्यता (खूबसूरती) है ॥४०॥

रामः--मारुते का कथा ।

रामचंद्रजी- हनुमान् ! लंकाकी बात तो कहो ? ॥

हनूमान् भोः प्रभो-

का शृङ्गारकथा कुतूहलकथा गीतादिविद्याकथा
माद्यत्कुम्भिकथा तरङ्गमकथा कोदण्डदीक्षाकथा ।

एकैवास्ति मिथः पलायनकथा त्वद्भीतरक्षःपते-
र्देव श्रीरघुनाथतस्यनगरेस्वप्नेऽपि नान्या कथा४१

हनुमान्‌जी-हे भगवन्! न वहां शृंखगारकी बातें हैं, न खेलकी बातें, न गाने बजानेकी विद्याकी बातें हैं, न मतवाले हाथियोंकी चर्चा है और न घोडे और धनुषविद्याके सिखानेकी कथा है। हे भगवन्! राक्षसराज रावणकी पुरीमें आजकल लोग आपसमें केवल एक आपके भयसे भागनेकी चर्चा कररहे हैं। वहाँ तो स्वप्नमेंभी कोई दूसरी बात नहीं है॥ ४१॥

रामः-

त्रिदशैरपि दुर्धर्षां लंका नाम महापुरी।
कथं वीर त्वया दग्धा विद्यमाने दशानने॥ ४२॥

रामचन्द्र-हे वीर! देवताओंसे भी अजेय लंकापुरीको दशानन रावणके रहतेहुए भी तुमने कैसे जलादिया?॥ ४२॥

हनुमान-

निःश्वासेनैव सीताया राजन्कोपानलेन ते।
दग्धपूर्वा तु सा लंका निमित्तमभवत्कपिः॥ ४३॥

हनूमान्-हे भगवन्! श्रीजानकीके श्वासोंसे और आपके क्रोधरूपी अग्निसे वह लंका पहिलेही भस्म होचुकी थी मैं तो उसमें निमित्त-मात्रही होगयाहूँ॥ ४३॥

शाखामृगस्य शाखायाः शाखां गन्तुं पराक्रमः।
यत्पुनर्लंघितोम्भोधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव॥४४॥

एक डालीसे कूदकर दूसरी डालीपर जा बैठना इतनाही बान्दरका पराक्रम है और यह जो मैंने समुद्रको लाँघा, हे प्रभो! यह तो आपकीही प्रभुता थी॥ ४४॥

अन्तराले लंकायां सरमा नाम राक्षसी धार्मिणी
जानकीं वाचमूचे-

इसी बीचमें लंकामें धर्मव्रतको धारण करनेवाली सरमा नाम राक्षसी सीताजीसे बोली ॥

बिभेमि सखि संवीक्ष्य भ्रमरीभूतकीटकम् ।
तद्ध्यानादागते पुंस्त्वे तेन सार्धं कुतो रतिः ॥४५॥

हे सखि ! भ्रमरके ध्यानमात्रसे भ्रमर बनेहुए कीटको देखकर मुझे डर लगता है, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीके ध्यानसे तुममेंभी पुरुषपना आजानेसे उनके साथ फिर तुम्हारा प्रेम कैसे होगा ॥ ४५ ॥

मा कुरुष्वात्र संदेहं रामे दशरथात्मजे ।
त्वद्ध्यानादागते स्त्रीत्वे विपरीतास्तु ते रतिः॥४६॥

इति श्रीहनुमन्नाटके हनुमद्विजयो नाम षष्ठोऽङ्कः ॥

फिर कहनेलगी इसमें कुछ संन्देह नहीं कि दशरथतनय रामचन्द्रजीमें तुम्हारा ध्यान करनेके कारण स्त्रीपना आजानेपर तुम्हारी प्रीति उलटी होजायगी अर्थात् श्रीरामचन्द्रजीमें स्त्रीपना और तुममें पुरुषपना आजानेपरभी प्रीति होना सम्भव है ॥ ४६ ॥

इति श्रीहनुमान्नाटके हनुमद्विजयो नाम षष्ठोऽङ्कः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽङ्कः ।

रामदूतेनोक्तः सुग्रीवः-

कपिनृपतिरपास्य प्रेयसीं प्रेमभिन्नः
किमिति जनकपुत्रीरामयोः कार्यमुच्चैः ।
गतिरपि हरिसूनोर्विस्मृता राज्यगर्वा-
दिति रघुजनवाक्यादागतः सैन्ययुक्तः ॥ १ ॥

हनुमान्‌जी सुग्रीवसे कहते हैं-

राम और जानकीका यह कार्य हैही कितनासा ? ऐसा विचार कर स्त्रीके प्रेममें समय बितानेवाले वानरराज सुग्रीवसे जब रघुनाथके दूत हनूमान्‌जीने कहा कि राज मिलनेके घमण्डमें तुम वालिकी

गतिको भूलगये कि घमण्डके कारण उसकी क्या गति हुई ? और वह दिन भूलगये कि स्त्री भी छिनगई थी और दुचके २ रहते थे तब कामाभिलाषाके पूर्ण हुए विनाही अपनी प्रिया रुमाको त्यागकर सेनासहित सुग्रीव रामचन्द्रके पास आये ॥ १ ॥

अथ विजयदशम्यामाश्विने शुक्लपक्षे
दशमुखनिधनाय प्रस्थितो रामचन्द्रः ।
द्विरदविधुमहाब्जैर्यूथनाथैस्तथान्यैः
कपिभिरपरिमाणैर्व्याप्तभूदिक्खचक्रः ॥ २ ॥

इसके उपरान्त आश्विन शुक्लपक्षमें विजय मुहूर्त्तसे युक्त विजयादशमीको रामचन्द्रजीने रावणके वध करनेके लिये यात्रा की। उस समय १८ महापद्म सेनापति तथा और असंख्य वानरोंसे दिशा और आकाशमण्डल भरगया ॥ २ ॥

हनूमान् रामं प्रति-

नृपतिमुकुटरत्ने त्वत्प्रयाणप्रशस्तिं
प्लवगबलनिमज्जद्भूभराक्रान्तदेहः ।
लिखति दशनटंकैरुत्पतद्भिः पतद्भि-
र्जरठकमठभर्तुः खर्परे सर्पराजः ॥ ३ ॥

हनूमान्-(रामचन्द्रजीसे) हे राजाओंके शिरमौर ! वानरोंके बलसे नीचेको बसती हुई पृथ्वीके बोझसे आक्रान्त देहवाले शेषजी बूढे कच्छपराजकी पीठपर वानरोंके उछलनेपर ऊपरको उठतेहुए और वानरोंके पडने पर नीचेको बैठतेहुए दांतोंरूपी कीलोंसे मानो आपकी चढाईकी प्रशंसाको लिखते हैं ॥ ३ ॥

श्वासोर्मिप्रतिसन्धिरुन्धितगलप्रच्छिन्नहारावली
रत्नैरप्यदयालुभिः कृतफणाप्राग्भारभङ्गक्रमः ।
श्रोत्राकाशनिरन्तरालमिलितस्तब्धैः शिरोभिर्भुवं
धत्ते वानरवीरविक्रमभराभुग्नो भुजङ्गाधिपः ॥ ४ ॥

सेनाके बोझसे पुनः पुनः श्वास लेनेके कारण रुके हुए कण्ठ-मेंसे जिनके हारोंकी लडियोंके रत्न टूटगये हैं ऐसे आपसकी रगडके दुःखको न जाननेवाले, वानरोंके बलके भारसे टेढेहुए और फणोंके व्यग्र होनेसे मुडतेहुए तथा कानोंके छेद न होनेसे परस्पर सटेहुए सकल शिरोंके द्वारा शेषजीने कठिनतासे पृथ्वीको धारण किया है ॥ ४ ॥

रामः अये मरुत्तनय-

कूर्मं क्लेशयितुं दिशः स्थगयितुं भेत्तुं धरित्रीधरान्
सिन्धुं धूलिभरेण कर्दमयितुं तेनैव रोद्धुं नभः ।
नासीरेषु पुरः पुरश्चलबलालापस्य कोलाहलात्
कर्तुं वीरवरूथिनी मम परं जैत्रं पुनस्त्वद्भुजैः ॥५॥

रामचंद्र-हे पवनकुमार ! अग्रगन्ताओंसेभी आगे चलनेवाले यह मेरी वीरता वानरोंकी सेना बातचीतके कोलाहलसे ही कच्छपराजको क्लेश देनेको दिशाओंको व्याप्त करनेको, पहाडोंको तोडनेको, धूलिके समूहसे समुद्रको किचौंधा करदेनेको और उसी धूलिसे आकाशके रोकने और जय पानेको समर्थ है, फिर तुम्हारे भुजबलका तो कहना ही क्या ? ॥ ५ ॥

भिल्लीभिः सहासम्-

नो शस्त्रं नापि शास्त्रं न हि च रथकथा नापि दन्ती
न वाजी नोक्षाणो नापि चोष्ट्रा बत न च शिबिरो।
नापि राजा जटावान् । नो वित्तं नापि वस्त्रं न च
नृपरचना काचिदत्रास्ति मातः प्रातर्द्रष्टुं स्थिताभि-
र्गिरिवरकुहरेऽभाषि भिल्लीभिरेवम् ॥ ६ ॥

भीलनियोंने हँसकर कहा-

हे मातः ! इनके पास न कोई शस्त्र है; न शास्त्रही है और न कुछ रथकी बात है और न हाथी है, घोडा है; न बैल है और न

कोई ऊँटही है। दुःख है कि, इनके पास तम्बूभी नहीं है, और न यह राजाही है, न धन है और वस्त्रभी कुछ नहीं हैं और न कुछ राजाओंकीसी रचनाही है, ऐसे प्रातःकालके समय पहाडोंकी गुफाओंमें देखनेको बैठीहुई भीलानियोंने अपनी माताओंसे कहा॥६॥

भिल्लीमातरः--

विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधि-
र्विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः।
तथाप्येको रामः सकलमपि हन्ति प्रतिबलं
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे ॥ ७॥

भीलिनीकी माताओंने कहा—

यह अवश्य लंका जीतेंगे समुद्रको पैरोंसेही तर जायँगे यद्यपि इनका विपक्षी रावणसा बली है, और इनकी सहायता करनेवाले बन्दर हैं, तब भी यह रामचन्द्रजी अकेले ही शत्रुपक्षके समस्त बलका नाश कर देंगे क्योंकि बडे मनुष्योंकी क्रियाकी सिद्धि धैर्य वा बलसे होती है, कुछ हाथी घोडे आदि सामानसे नहीं होती ॥७॥

अत्रान्तरे तत्र लङ्कायां मन्त्रणायोपविष्टो मन्त्रिभिः
प्रोत्साहितो लंकाभटानुत्कण्ठं बभाषे विभीषणः—

सुवर्णपुंखाःसुभटाःसुतीक्ष्णा वज्रोपमा वायुमतः प्रवेगाः।
यावन्नगृह्णन्तिशिरांसिबाणाःप्रदीयतांदाशरथायमैथिली

इसी बीचमें सम्मति करनेको बैठे हुए मंत्रियों करके उत्साहित किये हुए विभीषण लंकाके योधाओंसे उत्कंठाके साथ बोले—

सोनेके पुंखोंवाले परम बली, बडे तीखे, वज्रकी समान दृढ पवन और मनकी सदृश परम वेगवाले बाण जबतक शिरोंको अपने वशमें नहीं करते हैं तबतक आप दशरथके पुत्र श्रीरामचन्द्रजीको जानकी दे दीजिये ॥ ८ ॥

विभीषणो रावणं प्रत्याह–

जातिं मानय मानुषीमभिमुखो दृष्टस्त्वया हैहयः
स्मृत्वा वालिभुजौ च सांप्रतमवज्ञातुं न ते वानराः।
तत्पौलस्त्यमहाग्निहोत्रिणमहं त्वामेवमभ्यर्थये
सीतामर्पय मुञ्च च क्रतुभुजःकाराकुटुम्बीकृतान्९॥

विभीषणने रावणसे कहा–

हे भाई ! मनुष्य जातिका आदर करो, तुमने अपना सामने करनेवाले सहस्रार्जुनको देखाही था, और वालीकी भुजाओंके बलको स्मरण करके इस समय वानरोंका अपमान नहीं करना चाहिये, इस कारण हे पुलस्त्यके कुलदीपक ! रामकी क्रोधसे प्रज्वलित अग्निमें हविके समान सम्पूर्ण राक्षसोंको हवन करते हुए आपसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि सीता श्रीरामजीको समर्पण करो, और जिनको कारागारका कुटुम्बी बना रक्खा है, उन यज्ञभोक्ता देवताओंको छोड दो ॥ ९ ॥

त्यजस्व कोपं कुलकीर्तिनाशनं भजस्व धर्मं कुलकीर्तिवर्धनम् । प्रसीद जीवेम सबान्धवा वयं प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ १० ॥

हे भ्रातः ! कुल और कीर्तिका नाश करनेवाले इस क्रोधको त्यागदो तथा कुल और कीर्तिको बढानेवाले अपने धर्मको धारण करो ऐसा करके हमारे ऊपर अनुग्रह करो, जिससे कि हम कुटुम्बियोंके साथ जीते रहैं श्रीरामचन्द्रजीको जानकी दे दो ॥ १० ॥

रावणः सक्रोधम्–

जानामि सीतां जनकप्रसूतां जानामिरामं मधुसूदनं च।
वधंच जानामिनिजंदशास्यस्तथापिसीतांनसमर्पयामि॥

इति वामचरणेन बिभीषणं ताडयामास–

जनकके कुलमें उत्पन्न हुई जानकीजीको भी मैं जानता हूँ और मधुदैत्यके नाशक विष्णुके अवतार रामको भी जानता हूँ, तथा अपनी मौतको भी जानता हूँ, परन्तु एक मुखवालेको भी अपनी मातकी हठ होती है मैं तो दश मुखवाला हूँ, इस कारण सीता नहीं दूंगा॥११॥ऐसा कहकर बाँये पैरसे विभीषणको एक लात लगाई ॥

विभीषणः-

ततश्चतुर्भिः सह मन्त्रिपुत्रैरुत्सृज्य रक्षः कुलधूमकेतुम्॥
लङ्कामहातंक इवाम्बरेण विभीषणो राघवमाजगाम १२॥

विभीषण-

इसके अनन्तर चार मंत्रिकुमारोंके साथ राक्षसकुलके धूमकेतुकी समान रावणको त्याग लंकाके परम भयकी तुल्य विभीषण आकाशमार्गसे श्रीरामचन्द्रजीके समीप आया ॥ १२ ॥

आगते विभीषणे परस्परं वानराः-

अद्यैवास्य विभीषणस्य शरणापन्नस्य मूर्ध्ना नते-
रानृण्याय ददात्ययं रघुपतिर्लंकाधिपत्यश्रियम् ।
एतस्यैव भुजाविह प्रतिभुवौ सुग्रीवराज्यार्पणे
त्रैलोक्यप्रथिमानसत्यचरिताःसर्वेवयं साक्षिणः १३॥

विभीषणके आनेपर वानर आपसमें कहनेलगे कि-

शरणमें प्राप्तहुए इस बिभीषणके माथा नमाकर प्रणाम करनेपर यह श्रीरामजी इस विभीषणको प्रणामके बदलेमें लंकाके प्रभुत्वकी लक्ष्मी देतेहैं इन्हीं रामचन्द्रकी भुजायें सुग्रीवको राज्य देनेमें उदारता दिखाचुकीहैं त्रिलोकीके सुन्दर चरित्रोंमें चित्त देनेवाले हम सब वानर इसके साक्षी हैं अर्थात् जैसे वालीको मार सुग्रीवको राज्य दिया ऐसेही रावणको मारकर विभीषणको राज्य देंगे ॥ १३ ॥

या विभूतिर्दशग्रीवे शिरच्छेदेपि शंकरात् ।
दर्शनाद्रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणे ॥ १४ ॥

जो विभूति (ऐश्वर्य) रावणको अपने शिर काटनेपर शिवजीसे मिली थी वही विभूति श्रीरामचन्द्रजीका दर्शनमात्र करनेसे बिभीषणको मिलगई ॥ १४ ॥

ततो रामेण–

अथ दशरथपुत्रे तत्र सौमित्रिमित्रे-
ऽप्युदगुदधितटान्ते गर्भदर्भावकीर्णे ।
अहमिह ह निविष्टे नागतोऽग्रेतिरोषा-
द्यदि जलधिरनेनाप्यात्तमाग्नेयमस्त्रम् ॥ १५

फिर रामचन्द्रजीने–

इसके उपरान्त अपने भ्राता लक्ष्मणके साथ मुझ रामके यहाँ उत्तर तट पर बिछेहुए कुशके आसनपर बैठनेपरभी ओः मेरे सामने समुद्र नहीं आया ! ऐसा विचार कर रामजीने बडे क्रोधमें भरकर अग्निबाण ग्रहण किया ॥ १५ ॥

श्रीरामचन्द्रे दशवक्त्रहानौ कृतोद्यमे क्रव्यभुजः समस्ताः।
मित्राण्यमन्यन्त मृगं कपिं च तपोधनं गाढतरं वनं च १६

श्रीरामचन्द्रजीके दशग्रीव रावणके दशों मस्तकोंके काटनेका उद्योग करनेपर समस्त मांसभक्षी जीवोंने और मृग (मारीच) वानर (हनूमान्) तपस्वी (श्रवणके पिता यज्ञदत्त) और बडे भारी वनको अपना विशेष मित्र माना अर्थात् अधिक राक्षसोंके मरनेसे बहुत मांस मिलेगा ऐसा मानकर मांसभक्षी परम प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥

समुद्रो रामं प्रति–

अस्मद्गोत्रे भविष्यद्दशरथनृपतेरश्वमेधेषु सर्पिः-
संपातोत्तापलोलज्वलदनलकलाव्याकुलंकूर्मराजम्।
ज्ञात्वा रोदःपुटं वा ननु तव सगरःप्राग्भवो भाविवेत्ता
नेता सप्ताम्बुधीनामपि सविधमवाग्वान्तरश्मिः
स्रवन्तीम् ॥ १७ ॥

(समुद्र श्रीरामचन्द्रजीसे) हमारे वंशमें उत्पन्न होनेवाले राजा दशरथके किये अश्वमेध यज्ञमें निरन्तर अग्निके विषे घृतकी आहुति छोडनेसे अत्यन्त प्रदीप्त हुई अग्निकी लपटोंसे कच्छपराज घबडा जायँगे, स्वर्ग और भूमि व्याकुल होजायँगे ऐसा विचार कर भावीके जाननेवाले तुम्हारे पूर्वपुरुष राजा सगर बडे विधानसे सात समुद्रोंके नीचे जो लहरें उनके सोतोंवाली गंगाजीको पहलेही लेआये थे और मेरी उत्पत्तिके कारण हैं ॥ १७ ॥

रामः सरोषम्—

चापमानय सौमित्रे राघवेऽधिज्यधन्वनि ।
समुद्रं शोषयिष्यामि पदा गच्छन्तु वानराः ॥१८॥

(रामचन्द्र क्रोधमें होकर) हे लक्ष्मण ! धनुष लाओ मैं धनुषको चढाकर अभी समुद्रको सुखाँदूंगा. फिर सब वानर पैदलही पार होजायँगे ॥ १८ ॥

ततःप्राञ्जलिपुटोपस्थितस्य समुद्रस्याज्ञया नलेननिबध्यमाने सेतौ तरतः प्रस्तरानवलोक्याह हनूमान्—

तब हाथ जोडकर खडे हुए समुद्रकी आज्ञासे नल वानरके द्वारा बांधे हुए पुलमें तैरते हुए पत्थरोंको देखकर हनूमान्‌जी बोले ।

ये मज्जन्ति निमज्जयन्ति च परांस्ते प्रस्तरा दुस्तरे वार्धौ वीर तरन्ति वानरभटान्सन्तारयन्तेऽपि च ।
नैते प्लवगुणा न वारिधिगुणा नो वानराणां गुणाः श्रीमद्दाशरथेः प्रतापमहिमारम्भः समुज्जृम्भते १९॥

हे वीर ! जो स्वयं डूबजाते हैं, तथा औरोंको भी नीचे बिठाते हैं वे ही पत्थर इस कठिनतासे तरने योग्य सागरमें तररहे हैं और वानरयोधाओंकोभी तार रहे हैं सो यह न पत्थरोंकी शक्ति न समुद्रकाही गुण है और न यह कुछ इन वानरोंकी महिमा किन्तु यह एक श्रीराममहाराजकी महिमाकाही प्रारम्भ शोभा रहा है ॥ १९ ॥

कपेश्च सेनाप्लवगैः पुरोगैः पाथोमयं भूवलयं व्यलोकि।
तत्पृष्ठगैः पङ्कमयं तदान्यैरासीदिहाम्भोनिधिरित्यवादि।

इति श्रीहनुमन्नाटके सेतुबन्धनं नाम सप्तमोऽङ्कः ॥ ७ ॥

वानरोंकी सेनाके आगे चलनेवाले वीरोंने तो भूमण्डलको जलमय देखा उनके पीछे चलनेवालोंने कीचडकी समान देखा और उनकेभी पीछे चलनेवालोंने तो यह अनुमान किया कि यहां पहिले कभी समुद्र था। अर्थात् वानरोंके चलनेसे इतनी धूल उड़कर समुद्रमें गिरी कि पीछे २ जानेवालोंको कीचड दीखी, और फिर अधिक धूलिके गिरनेसे ढकगया इस कारण उनके पीछे चलनेवालोंने जनसमुदाय ही देखा इसी कारण यहां कभी समुद्र था, ऐसा अनुमान किया ॥ २० ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके भाषाटीकायां सेतुबन्धनं नाम
सप्तमोऽङ्कः समाप्तः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽङ्कः।

रामःसुवेलाद्रितटेऽवतीर्णःसमुद्रमुल्लङ्घ्यविकीर्णसैन्यः
कृपामुपेत्यारिकुलस्य दूतं सुरेन्द्रनप्तारमथादिदेश ॥१॥

समुद्रके पार हो सुवेल पर्वतके किनारेपर उतरकर श्रीरामचन्द्रजीने चारों ओर लम्बी चौडी बडीभारी सेनाका पडाव डालदिया और फिर राक्षसोंके ऊपर कृपा करके इन्द्रके पोते अङ्गदको दूत बनाकर आज्ञा दी ॥ १ ॥

रामः–भो महावीर अङ्गद !

अज्ञानादथवाधिपत्यरभसादस्मत्परोक्षे हृता
सीतेयं परिमुच्यतामिति वचो गत्वा दशास्यं वद।
नो चेल्लक्ष्मणमुक्तमार्गणगणच्छेदोच्छलच्छोणित-
च्छत्रच्छन्नदिगन्तमन्तकपुरं पुत्रैर्वृतो यास्यसि ॥२॥

रामचन्द्रजी-हे महावीर अङ्गद !

तुम जाकर रावणसे यह वचन कहो कि अनजानसे वा राज्यके मदसे हमारे पीछे हरीहुई इस जानकीको छोडदे नहीं तो लक्ष्मणके छोडे बाणोंके समूहोंके प्रहारोंसे छलकते खूनसे युक्त तेरे कण्ठोंसे दिशाओंको छाताहुआ अर्थात् तेरे रुधिरमें लथडे हुए दशों शीश चारों ओर लुडकते फिरेंगे और तू पुत्रोंके साथ यमलोकको जायगा ॥ २ ॥

अङ्गदः-

यथाज्ञापयति देवः ।

अङ्गद-जो आज्ञा महाराजकी ।

स्वगतम्-

हन्तुर्हन्तास्मि नो चेत्पितुरपि परमोत्पन्नसम्पूर्णकार्यं
स्याद्वैयुद्धेवधिष्याम्यखिलकपिभटैरुत्कटो हन्तुमेकः ।
ज्ञात्वा संत्यज्य वैरंगगनमिति समुत्पत्यलंकोद्भटस्य
प्रौढः पट्टाधिरूढःसुरपतिसुतजस्तन्महोत्पातकेतुः॥३॥

(मनही मनमें) यदि इस समय मैं अपने पिताके वैरको स्मरण करके रामचन्द्रको मारडालूं तो बडाही अकाज होगा और यदि पिताके नाशक रामचन्द्रका हन्ता नहीं होऊँ तो यह उपस्थित पिताका कार्य पूरा हो जायगा क्योंकि यह रावणको मारेंगे ही तो इनका भी कार्य हो जायगा और पिता वालिका भी कार्य हो जायगा क्योंकि रावण दोनोंका शत्रु है, पीछे इनके मारनेसे समस्त कार्य्योंकी सिद्धि होगी और इन सब वानरोंके साथ रामका वध करनेको तो मैं अकेला ही बहुत हूं । ऐसा विचार द्वेषको त्याग अङ्गद झट आकाशमेंको छलांग मार बडे अहंकारसे रावणका अनिष्ट करनेको धूमकेतु तारेकी समान रावणके स्थानके बाहरी सिंहासनपर जाकर बैठ गये ॥ ३ ॥

ततः प्रविशत्यञ्जलिबद्धः प्रहस्तः ।
देव रामस्य दूतः शाखामृगो द्वारे ॥

तदनन्तर हाथ जोडे हुए प्रहस्तने कहा कि–देव ! रामका दूत वानर द्वार पर है ।

रावणः–प्रवेशय ।

रावण–आने दो ।

ततः प्रविशति प्रहस्तेन सहाङ्गदः ।
आकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा।

तदनन्तर प्रहस्तके साथ अङ्गदजी आते हैं, और आकाशकी ओर टकटकी बाँध कर–

रे राक्षसाः कथयत क्व स रावणाख्यो
रत्नं रवीन्दुकुलयोरपहृत्य नष्टः ।
त्रैलोक्यदीपनकरत्रिशिखाकराले
यो रामनामदहने भविता पतङ्गः ॥ ४ ॥

अरे राक्षसो ! बताओ, वह रावण नामवाला कहाँ है, जो सूर्यकुल और चन्द्रकुलकी रत्नरूप सीताको चुराकर भाग आया था और जो तीनों लोकोंको प्रलय करनेवाले रुद्र भगवान्के त्रिशूलकी समान भयंकर रामनामरूप अग्निमें पतङ्गकी समान भस्मीभूत होनेवाला है ॥ ४ ॥

रावणः साभ्यसूयम्–

सोऽपि त्वं कमिहावगच्छसि पुरा योऽदाहि लाङ्गूलतो
बद्धो मत्तनयेन हन्त स कथं मिथ्यावदन्नः पुरः ।
किं लंकापुरदीपनं तव सुतस्तेनाहतोऽक्षो युधी-
त्युक्तः कोपभयत्रपाभरवशस्तूष्णीमभूद्रावणः ॥ ५ ॥

रावण क्रोधसे-

पहले जिस वानरकी पूँछ जलाडाली थी और जिसको मेरे पुत्र मेघनादने ब्रह्मफाँससे बाँध लिया था क्या तू ही वह है? क्या तू यहाँ किसीको पहिचानता नहीं? अङ्गदने कहा अजी! वह तो हनूमान् था और खेदकी बात है कि वह हमसे झूंठ क्यों बोला कि, मैंने लंका फूंकदी और रावणके पुत्रको मार डाला। क्या उसीने तेरी लङ्काको जला दिया था? और लडाईमें अक्षकुमारको मार डाला था? ऐसा कहनेपर अङ्गदके ऊपर परम क्रुद्ध हनूमान्से भयभीत और इस बातको लोगोंके सुननेसे लाजके वशमें हुआ रावण मौन हो गया ॥ ५ ॥

रावणः-

कस्त्वं वानर रामराजभवने लेख्यार्थसंवाहको
यातः कुत्र पुरा गतः स हनुमान्निर्दग्धलंकापुरः ।

अरे वानर तू कौन है? क्या तू रामके राजमहलमें चिट्ठी भेजने आदिका काम करता है जो पहिले भी आया था और जिसने लंकापुरीको भी जलाया था वह हनूमान् कहां गया? ॥

अङ्गदः साधिक्षेपम्-

बद्धो राक्षससूनुनेति कपिभिः संताडितस्तर्जितः
सव्रीडार्तिपराभवो वनमृगः कुत्रेति न ज्ञायते ॥ ६ ॥

अङ्गद-(आक्षेपके साथ) राक्षसके पुत्र मेघनादने बाँध लिया था, यह सुनकर वानरोंने उसको खूब मारा और धिक्कारा तब वह लज्जा, दुःख और अपमानको पाकर न जाने कहां चला गया यह कुछ मालूम ही नहीं ॥ ६ ॥

यो युष्माकमदीदहत्पुरमिदं योऽदीदलत्काननं
योऽक्षं वीरममीमरद्विरिदरीर्योऽबीभरद्राक्षसैः ।

सोऽस्माकं कटके कदाचिदपि नो वीरेषु संभाव्यते
दूतत्वेन इतस्ततः प्रतिदिनं संप्रेष्यते सांप्रतम्॥७॥

जिसने तुम्हारी इस नगरीको भस्म किया था, जिसने तुम्हारे बगीचेको उखाडडाला था जिसने वीर अक्षको मारा था, और जिसने पर्वतोंकी गुफाओंको राक्षसोंके मृत शरीरोंसे भरदिया था, वह वानर तो हमारी सेनामें कभी वीरोंकी गिनतीमें मानाही नहीं जाता, आजकल केवल दूत बनाकर इधर उधर भेज दिया जाता है ॥ ७ ॥

अपि च–

यो लङ्कां समदीदहत्तव सुतं रक्षांसि चापीपिषद्यः कौशल्यमवीवदज्जनकजामब्धिं तथातीतरत्।
यश्चाराममभूमुटत्स हनुमानस्मत्प्रवीरोद्यमे
दूराक्रामणदौत्य एव न पुनर्योद्धुं समादिश्यते ॥८॥

औरभी सुन–जिसने लंकाको जलाया था, जिसने तेरे बेटे अक्ष तथा अन्य राक्षसोंकाभी चूरा २ कर दिया था, जिसने कोसलेशको जानकीकी कुशल सुनाई थी, जो समुद्रकोभी लाँघकर चलागया था और जिसने तुम्हारे बागको तोड मरोड डाला था, वह वीर हनूमान् इस समय हमारे श्रेष्ठ वीरोंका जमाव होनेपर युद्ध करनेको नहीं भेजा जाता है, किन्तु दूर देशको भेजनेमें और दूतका काम करनेमेंही भेजा जाताहै अर्थात् जो हनूमान् तेरा ऐसा अपमान करगया वह तो हमारे यहांके वीरोंमें कुछ है ही नहीं ॥ ८ ॥

रावणः सावज्ञम्–

रामः स्त्रीविरहेण हारितवपुस्तच्चिन्तया लक्ष्मणः
सुग्रीवोऽङ्गदशल्यभेदकतया निर्मूलकूलद्रुमः।
गण्यःकस्यविभीषणःसचरिपोः कारुण्य दैन्यातिथिर्लंकातङ्ककविटंकपावकपटुर्वध्यो ममैकः कपिः॥९॥

(रावण तिरस्कारके साथ) रामचन्द्र तो अपनी स्त्रीके वियोगसेही शरीरको हार बैठाहै, लक्ष्मण उस अपने भाईकी चिन्तासेही दुर्बल होरहा है, सुग्रीव और अङ्गद परस्पर भेदकी शंकासे नदीके किनोरेके जडरहित वृक्षकी समान आसन्नमरण हैं और विभीषणको तो गिनताही कौन है? क्योंकि वह तो वैरीकी दया और दीनताकाही भिखारी है, अर्थात् इतनोंमें मुझसे युद्ध करनेकी कोईभी शक्ति नहीं रखता एक लंकानिवासी राक्षसोंको भयकी अग्नि देनेमें चतुर उस हनूमान्नामक वानरकाही मुझको वध करनाहै ॥ ९ ॥

कस्त्वं वन्यपतेः सुतो वनपतिः कः सार्थिकस्त्वेकदा
यातः सप्तसमुद्रलंघनविधावेकाह्निको वेद्मि तम् ।
अस्ति स्वस्तिसमन्वितोरघुवरेरुष्टेऽत्र कः स्वस्तिमान्
को भूयादनरण्यकस्य मरणातीतोचिताम्बुप्रदः १०

रावण–तू कौन है? अङ्गद–वालिका पुत्र! रावण–कौनसा वाली? अङ्गद–जो एक समय समुद्रको एकही दिनमें लाँघगया था। रावण–उसको मैं जानता हूँ, वह कुशलसे तो है? अंगद–राजा अनरण्यकी मृत्युके अनन्तर जो तेरे रुधिररूप जलके दाता हैं, उन श्रीरामजीके रुष्ट होजानेपर कौन कुशलसे रहसकता है? अर्थात् कोई नहीं रह सकता॥ १०॥

रामः किं कुरुते प्रतीपविजयं कोऽसौ प्रतीपो जितो
वाली सोऽपि च कोनवेत्तिकिममुंको वेत्ति शाखामृगम् ।
आस्तेऽत्रापि तवास्ति विस्मृतिरहो मोहो महानीदृशः
पर्यंके निजबालकेलिकृतये बद्धोऽसि येनोपरि ॥११॥

रावण–राम क्या करता है? अङ्गद शत्रुओंको जीतते हैं, रावण–वह कौनसा शत्रु है जिसको जीता? अङ्गद–वाली। रावण–वह वाली कौन है? अंगद–क्या तू उसको नहीं जानता? रावण–अरे वानरको कौन जानता है, अङ्गद–ओ हो तू यह भी भूल गया कि

बाली कौन है ? ऐसा अनजान बनताहै कि,जिस वालीने तुझको मेरे खेलनेके लिये पालनेके ऊपर बांध दिया था उसकोभी भूलगया॥११

अङ्गदः-

आदौ वानरशावकः समतरद्दुर्लंघ्यमम्भोनिधिं
दुर्भेद्यान्प्रविवेश दैत्यनिवहान्तत्संपेष्य लंकापुरीम् ।
क्षिप्त्वा तद्वनरक्षिणो जनकजां दत्त्वा तु मुक्त्वा वनं
हत्वाक्षं प्रददन्पुरीं च स गतो रामःकथं वर्ण्यते १२॥

अङ्गद-पहिले तो वानरका बच्चाही बडी कठिनतासे तरनेयोग्य समुद्रको लांघगया, अजेय राक्षसोंके समूहोंको चूरा २ करके लंकामें घुसआया, तेरे बगीचेके रखवालोंको मार जानकीजीको मुद्रिका दे, बनके फलोंको खा, और अक्षकुमारका प्राणले, लंकापुरीको जलाताहुआ लौटगया । तब फिर रामचन्द्रजीका तो मैं वर्णनही क्या करूं ॥ १२ ॥

रावणः समाक्षिपति-

भग्नं भस्ममुमापतेरजगवं वाली क्षतः सूक्ष्मत-
स्तालाः सप्त हता हताश्च जलधिर्बद्धश्च बद्धश्च सः ।
आः किं तेन सशैलसागरधराधारोरगेन्द्राङ्कदं
साद्रिं रुद्रमुदस्यतोनिजभुजाञ्जानात्यसौरावणः १३

(रावण आक्षेप करता है) रामने तो घुनकर खाकहुआ शिवका धनुष तोडा और वालीको संकेतसे मारा, टूटेहुए सात ताडके वृक्षोंको नष्ट किया और सागरको बाँधा । आः यह तो उन्होंने कुछ भी नहीं किया, पहाड और समुद्रोंके साथ पृथ्वीको धारण करनेवाले शेषनागरूप बाजूबन्दवाले शिवको कैलासके सहित उठानेवाली अपनी भुजाओंका यह रावणही जानता है ॥ १३ ॥

अङ्गदः साटोपं स्वामिभक्तिमभिनीय-

कृत्वा कक्षागतं त्वां कपिकुलतिलको वालिनामा बली-

यान् भ्रान्तः सप्ताब्धितीरे क्षणमिव चरितंस्नानसन्ध्या-
र्चनं च । बाणेनैकेन येनाहत इति पतितो वानरव्रीडयैव
त्यक्त्वा सोऽपि प्रगर्वं द्युमणिसुतपुरं मुञ्च लंकेश गर्वम्

(अङ्गद क्रोधसे स्वामीकी भक्तिका परिचय देते हुए) तुझको अपनी कांखमें दबोचकर जो सातों समुद्रोंके तटोंपर घूमता फिरा और क्षणमात्रमेंही जिसने सन्ध्यावन्दनादि कृत्य कर लिये हैं ऐसा वह वानरोंमें बली वालीभी जिन रामके एकही बाणसे ताडितहो वानरोंकी लज्जासेही गिरता हुआ, अभिमानको त्याग यमराजके लोकको पधारगया इस कारण हे लंकेश ! तू भी गर्वको त्याग दे ॥ १४ ॥

यत्संदेशहरेण मारुतसुतेनातारि वारां निधिः
क्षिप्रं गोष्पदवन्निजालयमिव प्रावेशि लङ्कापुरी ।
सीतादर्शि समभ्यभाषि च वनं चाभञ्जि रक्षःपतेः
सैन्यं भूयैवधि व्यदाहि च पुरी रामः कथं वक्ष्यते॥१५॥

जिसके दूत हनूमान्ने गौके खुरके चिह्नकी समान बडी शीघ्रतासे समुद्रको लॉघलिया और लंकापुरीमें अपने गृहकी तुल्य प्रवेश किया, जानकीको देख उनसे वार्त्ता की, वाटिकाका सत्यानाश किया, राक्षसराज रावणकी बहुतसी सेनाको नष्ट किया तथा लंकाको जलाकर भस्म कर दिया तौ फिर रामचन्द्रजीका तौ कहनाही क्या है ॥ १५ ॥

रावणः सक्रोधम्-

कुतो हन्तारण्ये कनकमृगमात्रं तृणचरं
कुतो वृक्षाद्वृक्षप्लवननिपुणो वालिनिहतः ।
कुतो वह्निज्वालाजटिलशरसन्धानसुदृढस्त्वहं
युद्धोद्योगी गगनमधितिष्ठेन्द्रविजयी ॥ १६ ॥

(रावण क्रोधसे)

घासका खानेवाला सोनेका एक हिरन वनमें मारा तो क्या हुआ ? तथा एक पेडपरसे दूसरे पेडपर कूद फांद करनेमें चतुर वानर वालीका वध किया तो क्या ? अग्निकी शिखाकी समान जटा-वाले बाण चलानेमें निपुण राम भी क्या है ? इन्द्रविजयी युद्धका उत्साही मैं तो आकाशमें बैठा हूं अर्थात् देवताओंको भी मैंने जीत लिया है ॥ १६ ॥

अंगदः समदम्-

संधौ वा विग्रहे वापि मयि दूते दशानन ।
अक्षतो वा क्षतो वापि क्षितिपीठे लुठिष्यसि ॥१७॥

(अङ्गद-अहंकारसे)

रे दशानन ! मेरे रामचन्द्रजीका दूत बनकर आनेका यह परिणाम होगा कि यदि मेल करेगा तब तो विना घावकेही तुझको रामचन्द्रजीके सामने जाकर भूमिपर लोटना होगा और यदि युद्ध करेगा तो घायल होकर भूमिमें लोटेगा ॥ १७ ॥

अवेहि मां रावण रामदूतं बाणा यदीयाः खरदूषणैणम् ।
भुक्त्वा तृषार्ता इव शोणिताम्भः पास्यन्ति ते कण्ठघटैः सरन्ध्रैः ॥ १८ ॥

रे रावण ! तू मुझको उन रामचन्द्रजीका दूत समझ जिनके बाण खरदूषणरूप मृगको भक्षण करके प्यासे हो रहे हैं सो अब तेरे कण्ठ-रूप घडोंके छेदोंमेंसे निकले हुए रुधिररूप जलको पीवेंगे ॥ १८ ॥

रावणः-वानराधम ! कटुप्रलापिन् !! पश्य-

मृत्युः पादान्तभृत्यस्तपति दिनकरो मन्दमन्दं ममाग्रे
ऽप्यष्टौ ते लोकपाला मम भयचकिताः पादरेणुं ववन्दुः।
दृष्ट्वा तं चन्द्रहासं स्रवति सुरवधूपन्नगीनां च गर्भो
निर्लज्जौ तापसौ तौ कथमिह भवतो वानरान्मेलयित्वा॥

रावण-रे वानरोंमें नीच ! कटुभाषी ! देख, पैर दाबनेवाला मेरा सेवक तो मृत्यु है, सूर्य मेरे यहां आकर तपनेकी अँगीठीका काम देता है, आठों लोकपाल भयसे बबडाकर मेरे चरणोंकी धूलिको प्रणाम करते हैं, मेरी चन्द्रहास तलवारको देखकर देवताओंकी स्त्री और नागोंकी पत्नियोंके गर्भ गिरजाते हैं, तो फिर निर्लज्ज वह दोनों तपस्वी वानरोंको मेरे सामने भेजकर सीताको कैसे पासकते हैं ? ॥ १९ ॥

अंगदः-

तत्क्षणाविष्कृतक्रोधः कम्पमानः पाणितलेन भूतलं ताडयित्वा दोःस्तम्भास्फालकेलिं नाटयति ।

अङ्गद-उसी समय क्रोधको प्रगट कर काँपते हुए अपनी हथेलीसे पृथ्वीपर थपकी दे, दोनों भुजदण्डोंको ठोकते हैं-

रे रे राक्षसवंशघात समरे नाराचचक्राहतं
रामोत्तुङ्गपतङ्गचापयुगले तेजोभिराडम्बरे ।
मन्ये शैर्षमिदं त्वदीयमखिलं भूमण्डले पातितं
गृध्रैरालुठितं शिवाकवलितं काकैः क्षतं यास्यति२०

रे राक्षसकुलके घातक ! प्रतीत होता है कि श्रीरामचन्द्रजीके परमोत्तम धनुषबाणके तेजसे परिपूर्ण युद्धका आरम्भ होनेपर बाणोंसे कटेहुए तेरे समस्त मस्तक पृथ्वीपर गिराये हुए लुडकेंगे, जिनको कि लेकर गीध आकाशको उडेंगे, गीदडियें कुतरेंगी तथा कौवे नोचेंगे ॥ २० ॥

रावणः सप्रपञ्चम्-

रे रे शाखामृग ! त्वामहं धर्मशीलतया कटुप्रलापिनमपि न हन्मि ।

(रावण तिरस्कारसे) रे वानर ! मैं धर्मशील होनेके कारण कडुवे वाक्य बोलते हुए भी तुझको नहीं मारता हूँ ॥

उक्तं च–यथोक्तवादी दूतः स्यान्न स वध्यो महीभुजा ।
क्रूरस्तदीयकोपेन क्वचिद्वैरूप्यमर्हति ॥ २१ ॥

कहा भी है कि–दूत सत्य बोलनेवाला होता है इस कारण राजाको योग्य है कि, दूतका वध न करै यदि दूत क्रूर हो और उसके ऊपर क्रोध आजाय तो किसी अङ्गमें कुरूप करदेवे, अर्थात् नाक कान आदि काटकर छोडदेवे ॥ २१ ॥

अङ्गदः सवैदग्ध्यम् ।

परदारापहरणे न श्रुता या दशानन ।
दृष्टा दूतपरित्राणे साधोस्ते धर्मशीलता ॥ २२ ॥

(अङ्गद चतुराईसे) हे दशमुख ! जो तुम्हारी धर्मपरायणता परस्त्रीहरण करनेमें नहीं सुनी थी, वह धर्मपरायणता दूतकी रक्षा करनेमें देखी गयी ॥ २२ ॥

रावणः सगर्वम्–

इन्द्रं माल्यकरं सहस्रकिरणं द्वारि प्रतीहारकं
चन्द्रं छत्रधरं समीरवरुणौ संमार्जयन्तौ गृहान् ।
पाचक्ये परिनिष्ठितं हुतवहं किं मद्गृहे नेक्षसे
रक्षोभक्ष्यमनुष्यमात्रवपुषं तं राघवं स्तौषि किम् २३

(रावण मदसे)

अरे ! क्या तू नहीं देखता है कि–इन्द्र मेरा माला बनानेवाला माली है सूर्य मेरे द्वार पर ड्योढीवान् है, चन्द्रमा छत्र धारण करता है, वायु और वरुण मेरे महलोंमें झाडना बुहारना और छिडकाव करते हैं और भोजन बनानेके कामपर अग्नि है, इतनेपर भी दैत्योंके भक्षण करने योग्य केवल मनुष्यशरीरवाले उस रामकी बडाई तू कैसे करता है ॥ २३ ॥

अंगदो विहस्य–

रे रे रावण हीन दीन कुमते रामोऽपि किं मानुषः

किं गङ्गापि नदी गजः सुरगजोऽप्युच्चैःश्रवाः किं हयः।
किं रम्भाप्यबला कृतं किमु युगं कामोऽपि धन्वी नु किं
त्रैलोक्यप्रकटप्रतापविभवः किं रे हनूमान्कपिः ॥२४॥

अंगद हँसकर-

अरे हीन ! दीन ! विपरीत बुद्धिवाले ! रावण ! क्या रामचन्द्रजीकी मनुष्योंमें गिनती है ? क्या गंगा भी नदी है ? क्या ऐरावत भी हाथी है ? क्या उच्चैःश्रवा कोई सामान्य घोडा है ? क्या रम्भा अप्सराभी साधारण अबला है ? सत्ययुगभी क्या साधारण युग है ? क्या कामदेवभी सामान्य धनुषधारी है ? और त्रिलोकीमें प्रसिद्ध प्रतापी तथा ऐश्वर्यवाला हनूमान् क्या साधारण ही वानर है? अर्थात् इनको साधारणही मत समझ ॥ २४ ॥

रावणः सरोषम्-

कस्त्वं कस्यासि पुत्रः क्व पुनरिह गतः किंनु कृत्यं च
कस्माद्विस्पष्टं विष्टपानां विजयिनमपिमां मन्यसे त्वं तृ-
णाय। हंहोपौलस्त्यपुत्रस्तवबलमथनस्यांगदोऽहंसुवेला-
त्संप्राप्तो रामदूतो विसृज जडमते जानकीं वा शिरो वा॥

(रावण क्रोधमें भरकर) अरे ! तू कौन है ? तू किसका पुत्र है ? जो पहिले वहां लंकामें आया था वह कहां है ? यहाँ क्या काम है ? देवताओंको भी जीतनेवाले मुझको तू जिसके बल पर तिनुकेके समान मानता है ? अंगद-अरे ! मैं जानता हूँ तू पुलस्त्यके वंशका है,मैं तेरे बलको मथनेवाले वालिका बेटा अङ्गद सुवेल पर्वतसे रामका दूत बनकर आया हूँ, अरे मूढमते ! अब तू या तो जानकीको छोड नहीं तो अपने मस्तकोंको दे अर्थात् मारा जायगा ॥ २५ ॥

रावणः-

धिग्धिगङ्गद मानेन येन ते निहतः पिता।
निर्माना वीरवृत्तिस्ते तस्य दूतत्वमागतः ॥ २६ ॥

रावण–अरे अङ्गद ! बार २ तुझको धिक्कार है अरे ! जिसने तेरे पिताको अहंकारमें होकर मारा तू उसीका दूत बनकर आया है यह तेरा वीरताका वर्त्ताव सन्मानके योग्य नहीं है ॥ २६ ॥

अङ्गदः–

युक्तं कृतं तु रामेण येन मे निहतः पिता ।
त्रैलोक्ये शास्तिकृत्याय वर्तते स दुरात्मनाम्॥२७॥

अङ्गदः–रामचन्द्रजीने जो मेरे पिताका वध किया सो ठीकही किया क्योंकि तीनों लोकोंमें दुष्टात्माओंका दण्ड देनेके कार्यके निमित्तही उन्होंने इस अवतारको धारण किया है ॥ २७ ॥

किं कार्यं वद राघवस्य न च किं बद्धः किमम्भोनिधिः
क्रीडार्थं कपिपोतकैरतरलं जानात्यसौ मां नहि ।
लङ्कानाकनिकायवैरिवसतिं किं वेत्ति वेत्त्येव हुं
को लंकाधिपतिर्विभीषण इति प्रख्यातकीर्तिर्भुवि॥२८॥

रावण–अच्छा तू दूत बनकर आयाहै तो बता रामचन्द्रका क्या काम है! अङ्गद–कुछभी नहीं,रावण–तौ फिर समुद्रपर सेतु क्यों बाँधा है?अङ्गद–वानरोंके बच्चोंने खेलके लिये! रावण–रणमें स्थिर रहनेवाले मुझको क्या वह राम नहीं जानता ? और क्या मुझ देवताओंके वैरीके रहनेकी यह लंकापुरी है इस बातको वह जानताहै ? अङ्गद–हाँ जानते हैं । रावण–क्या तुझको यह नहीं मालूम है कि लंकाका राजा कौन है ? अङ्गद–अरे समस्त भूमण्डलपर जिसका यश फैल रहाहै, वह विभीषण नामवालाही लंकाका राजा है ॥ २८ ॥

रावणः–

बद्धः सेतुर्यदि जलनिधौ वानरैस्तावता किं
नो वल्मीकाः क्षितिधरनिभाः किं क्रियन्ते पिपीलैः।
दग्धा लंका यदपि कपिना स प्रभावः किलाग्नेः
शौर्याश्चर्यं निजभुजजये किं कृतं रामनाम्ना ॥२९॥

रावण-यदि वानरोंने समुद्रमें पुल बाँधही लिया तो उससे क्या ?! क्या छोटी २ चीटियें पहाडोंकी समान बमई नहीं बनालेती हैं ? और जो बन्दरने लंकाको जलाया था वह तो अग्निका प्रभाव था उस रामनामकने अपनी भुजाओंकी जीतमें कौनसा वीरताका आश्चर्य किया है ? ॥ २९ ॥

अंगदः-

रामो नाम स एव येन भगिनीनासावसापंकिलः
खड्गस्ते खरदूषणत्रिशिरसां धौतः शिरः शोणितैः ।
तद्वालान्तिनितान्तबद्धवपुषः संमूर्च्छितस्य ध्रुवं
घ्राणं दर्पमिव स्वसुर्विलुठितं रामः कथं विस्मृतः३०

अङ्गद-अरे!राम वहीहै कि,जिन्होंने तेरी बहिनकी नाककी चर्बीकी गीचसे सने अपने अङ्गको खर दूषण और त्रिशिराके शिरके रुधिरसे धोयाथा और जिन रामचन्द्रने तेरे मूर्तिमान् घमण्डकी समान उनकी ी सीताके समीप खूब डटकर खडी होनेवाली तेरी बहिनकी नाक ाटडालीथी, जिसको सुनतेही तुमको निःसन्देह मूर्च्छा आगई होगी, रे ! उन रामको तू कैसे भूलगया ? ॥ ३० ॥

रावणः-

परिमितमहिमानं क्षुद्रमेनं समुद्रं
क्षितिधरघटनाभिः कोयमुत्तीर्य गर्वः ।
अकलितमहिमानः सन्ति दुष्प्रापपारा
दशवदनभुजास्ते विंशतिः सिन्धुनाथाः ॥३१॥

रावण-जिसका थोडासा प्रभाव है ऐसे इस छोटेसे सागरको पर्वतोंकी शिलाओंका पुल बनाकर उतरे, इतनेपर यह क्या घमण्ड ? रे ! अभी तो जिनका पार नहीं मिलसकता ऐसे अतर्कित प्रभाववाले समुद्रके रक्षक दशाननके बीस भुजदण्ड विद्यमान हैं ॥ ३१ ॥

रे रे रावण रावणाः कति बहूनेतान्वयं शुश्रुम
प्रागेकं किल कार्त्तवीर्यनृपतेर्दोर्दण्डपिण्डीकृतम्।
एकं नर्तनदापितान्नकबलं दैत्येन्द्रदासीगणैरन्यं
वक्तुमपि त्रपामह इति त्वं तेषुकोऽन्योऽथवा॥३२

अङ्गद–अरे हे रावण ! न जाने रावण कितने हैं, इन बहुतसे रावणोंको तो हमने सुना है कहते हैं कि, पहिले एक तो सहस्रबाहुकी भुजाओंसे बांधागया था ! एकको राजाबलिकी दासियोंने नाचनेपर रोटीके ग्रास दिये थे और एक तीसरेका वर्णन करते हमको लज्जा आती है, (अर्थात् उसको मेरे पिताने कांखमें दबा रक्खा था और मेरी क्रीडाके निमित्त खाटसे बांधदिया था, तथा मैंने उसको लातोंसे कूटा था । उसका नाम लेते इस कारण लज्जा आती है कि अपने पिताकी बडाई करना अनुचित है,) सो बता तू इनमेंसेही कोई है या इनसे भिन्न कोई और ही रावण है ? ॥३२॥

रावणः–

भ्राता मे कुम्भकर्णः सकलरिपुकुलव्रातसंहारमूर्तिः
पुत्रो मे मेघनादः प्रहसितवदनो येन बद्धः सुरेन्द्रः।
खड्गो मे चन्द्रहासो रणमुखचपलो राक्षसा मे सहायाः
सोऽहं वै देवशत्रुस्त्रिभुवनविजयी रावणो नामराजा३३

रावण–अरे ! सुन समस्त वैरियोंके समूहोंके निमित्त प्रलयरूप मूर्तिवाला कुम्भकर्ण तो मेरा भ्राता है, जिसने इन्द्रको बांधलिया था वह सदा प्रसन्नमुख रहनेवाला मेघनाद मेरा पुत्र है, संग्राममें फुर्ती दिखानेवाली चन्द्रहासनामक मेरी तलवार है और राक्षस मेरी सहायता करनेवाले हैं, वही मैं निःसन्देह देवताओंका शत्रु और तीनों लोकोंकी विजय करनेवाला रावणनामक राजा हूँ ॥३३॥

प्रहस्तः सरोषम्–

स्यातां नाम कपीन्द्रहैहयपती तस्यावगाढान्तरस्थे

मानौ दशकन्धरस्य महती स्कन्धप्रतिष्ठा पुनः ।
सद्यःपाटितकण्टकीकसकणाकीर्णायदंसस्थलीं स्वेने
भाजिनपल्लवेन झटिति प्रास्फोटयद्भूर्जटिः ॥ ३४ ॥

(प्रहस्त क्रोधके साथ)

जिनके शरीरमें बडा भारी बल था ऐसे वाली और सहस्रबाहु भले ही कभी हुए होंगे परन्तु आजकाल तो रावणके स्कन्धोंकी ही बडी भारी प्रतिष्ठा है । जब कि रावणने क्षणभरमें ही शिवजीके निमित्त अपने शिर काटे थे उस समय उसकी हड्डियोंके कणोंसे व्याप्त हुए रावणके कन्धोंको शिवजी महाराजने अपने आपही गजचर्मके हाथ पैरोंसे झाडा पोंछा था ॥ ३४ ॥

रावणः-

सर्वैर्यस्य समं समेत्य कठिनां वक्षस्थलीं संयुगे
निर्भग्नं मुखमेव दन्तमुसलैरैरावतस्योन्नतैः ।
हेलोत्क्षिप्तमहीध्रकम्पजनितत्रासांगनालिंगनप्राप्ता-
नन्दहरप्रसादमुदितश्चिन्त्यः स मेऽन्यो रिपुः॥३५॥

रावण-जिस समय संग्राममें ऐरावत हस्तीके मूसलकी समान सकल दांत एक साथ मेरे कठोर वक्षःस्थल (छाती) में आकर लगे तौ उनकी आगेकी नोंकें टूटगईं और मुझको कुछ भी कष्ट न हुआ और जिस समय मैंने खेलमें ही कैलास पर्वतको उठाया था उस समय पर्वतके हिलनेसे भयभीत होकर पार्वती शिवजीको चिपटगई तब उनके आलिंगनसे आनन्द पाकर श्रीमहादेवजी बडे ही प्रसन्न हुए । इस दशामें राम तो मेरे सामने है ही क्या वस्तु ? कोई और प्रबल शत्रु हो तो बताओ कि, जिस पर मैं विचार करूं ॥ ३५ ॥

अंगदः-

रे रे रावण शंभुशैलमथनप्रख्यातवीर्य्यः कथं

रामं योद्धुमिहेच्छसीदमखिलं चेत्तन्न युक्तं तथा।
रामस्तिष्ठतु लक्ष्मणेन धनुषा रेखा कृता लंघिता
तच्चारेण च लंघितो जलनिधिर्दग्धा हतोक्षः पुरी॥३६॥

अगंद—अरे रे रावण ! महादेवजीके कैलासको उठानेसे यशवाले दशकण्ठ तू इस समय रामचन्द्रजीसे संग्राम करनेकी इच्छा रखता है, तेरा यह सब विचार ठीक नहीं है; राम तो अलग रहैं श्रीलक्ष्मणजीने धनुषसे रेखा करदी थी, क्या तू उसको लांघसका था ? और देख उनके दूतनेही समुद्रको उलंघन कर अक्षको मारा तथा लंकापुरीको जला भस्म करदिया ॥ ३६ ॥

रावणः—

यन्मां त्वं वदसि प्रचूर्णितबलान्हेमाक्षदैत्येश्वरा-
ञ्छेषस्याप्यथवा हिरण्यकशिपोर्भस्माङ्गदस्याङ्गद ।
अन्येषाममरद्विषां बलकथा मद्बाहुसारादलं
रामश्चेद्रिपुहा प्रियापहरणे संधिंविधत्ते कथम्॥३७॥

रावण—हे अंगद ! मुझको जो नष्टप्रताप बताता है, तो हिरण्याक्ष अथवा और बचे हुए हिरण्यकशिपु भस्मांगद दैत्य तथा अन्य भी देवताओंके शत्रुराक्षसोंके बलकी कहानीको मेरी भुजाओंके बलसे ही पूर्ण समझ अर्थात्—उन सबका बल मेरी भुजाओंके पराक्रमसे थोडा है और यदि रामचन्द्र शत्रुका वध करसकता है तो जानकीके हरेजानेपर सन्धि क्यों करता है ? ॥ ३७ ॥

अङ्गदः—

शिरोभिर्मा देवीः शिव इव न ते दास्यति पुनः
प्रबन्धं पश्याब्धेः सरस इव कैलाससुभट ।
हितं तु ब्रूमस्त्वां मम जनकदोर्दण्डविजय-
स्फुरत्कीर्तिस्तम्भस्त्यज कमलबन्धोःकुलवधूम्३८

अंगद-हे कैलासके उठानेमें शूर! तू अपने मस्तकोंसे क्रीडा मत कर रामचंद्रजी शिवजीकी समान तेरे शिरोंको लौटाकर नहीं देंगे क्योंकि-सरोवरकी समान समुद्रके सेतुबन्धनकोही देखले! हे रावण! तू मेरे पिताके भुजदण्डोंके विजयका चलता फिरता कीर्तिस्तम्भ है, क्योंकि जहां जहां तू जाता है तहां तहां ही "इसको वालीने बाँधा था" ऐसी मेरे पिताकी कीर्ति होती है, अतः जबतक तू जीता रहैगा, मेरे पिताका यश रहैगा, इस कारण मैं तुझसे हितकी बात कहता हूँ कि सूर्य्यवंशकी कुलवधू जानकीको छोडदे ॥ ३८ ॥

रावणः-

कस्त्वं वालितनूद्भवो रघुपतेर्दूतः स वालीति कः
को वा वानर राघवः समुचिता ते वालिनो विस्मृतिः ।
त्वां बद्ध्वा चतुरम्बुराशिषु परिभ्राम्यन्मुहूर्तेन यः
सन्ध्यामर्चयतिस्म निस्त्रप कथं तातस्त्वया विस्मृतः३९

रावण-तू कौन है? अंगद वालीका पूत और रामचन्द्रजीका दूत। रावण-रे बन्दर! वह वाली कौन है? और राम कौन है? अंगद-तेरा वालीको भूलजाना ठीक ही है! अरे! जिसने तुझको बाँधकर मुहूर्त्तभरमें चारों समुद्रोंपर घुमाकर संध्यासमयका पूजन किया था। रे निर्लज्ज! उस मेरे पिताको तू कैसे भूलगया? ॥३९॥

त्वद्दोर्दण्डप्रचण्डप्रतिहननविधिप्रौढबाह्वोःसहस्र-
च्छेदक्रीडाप्रवीणस्थिरपरशुमहागर्वनिर्वापकस्य ।
दूतोहं राघवस्य त्वदपघनघृणावासवालाग्रलोम्नः
पुत्रः सुत्रामसूनोःप्लवगबलपतेर्नामतश्चांगदोऽहम्४०

अरे! तेरे प्रचण्ड भुजदण्डोंके बलके हरनेके काममें अहंकार रखनेवाले सहस्रबाहुअर्जुनकी सहस्रों भुजाओंके काटनेकी क्रीडामें प्रवीण परमधीर परशुरामजीके बडे भारी घमण्डको ठंढा

करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीका तो मैं दूत हूँ और शरीर पर दया आनेके कारण अपनी पूँछके बालोंके अग्रभागको तेरा विश्रामस्थान बनानेवाले अर्थात् तुझको बगलमें दबाकर जहां तहां घूमते हुए जब लौटकर आये तो तुझको अचेतन देख जिसने अपनी पूँछके अग्रभाग पर बैठाकर सचेत किया था उस वानर सेनापति इन्द्रकुमार वालिका मैं पुत्र हूँ ॥ ४० ॥

रावणः—

यद्भग्नाः किल बालतालतरवो रामेण सार्द्रत्वच-
श्छिन्नं यच्च पुरातनं शिवधनुस्तद्वीर्य्यमुद्दिश्यते ।
नासीदेतदनागतं श्रुतिपथं स्वर्लोकधूमध्वजः
पौलस्त्यः करकन्दुकीकृतहरक्रीडाचलोरावणः॥४१

रावण—अरे ! रामने जो गीली छालवाले छोटे २ ताडके वृक्ष वेध दिये और जो पुराना शिवजीका धनुष तोडा था, क्या उसी वीरताको कहता है ? अरे यह तो कुछ भी नहीं है क्या यह बात कभी कानोंमें नहीं पहुँची कि स्वर्गवासी देवताओंके लिये अग्निरूप पुलस्त्यके वंशधर रावणने महादेवके विहार करनेके कैलासपर्वतको अपने हाथोंसे क्रीडाकी गेंदकी समान उठालिया ॥ ४१ ॥

शूराः श्रोत्रपथेषु नः कति कति प्राज्ञैः पदं चक्रिरे
तेषामेव विलंघ्य साम्यसरणिं जागर्ति लंकाभटः।
यद्दोर्मण्डलगाढपीडनवशान्निस्पन्दरक्तच्छटाः
शंकामंकुरयन्ति शंकरगिरेरद्यापि धातुद्रवाः ॥४२॥

हमारे कानोंमें कितनेही शूरतासे पूजित वीरोंने स्थान किया है अर्थात् हमने बहुतसे वीरोंके नाम सुने हैं परन्तु वह लंकाका शूर उनकी समान श्रेणीको लाँघकर जागरहा है,जिसके कि भुजदण्डोंके समूहसे परम पीडा पानेके कारण निकले हुए रुधिरकी समान प्रतीत होनेवाले कैलास पर्वतके धातुओंके बहते हुए प्रवाह अभीतक

इस शंकाको उत्पन्न करते हैं कि यह कहींसे रुधिरकी धारें चली आरही हैं ॥ ४२ ॥

स्वेषूत्कृत्य हुतेषु मूर्धसु जवादग्नेः स्फुटित्वा बहि-
र्व्याकीर्णेष्वलिकेषु दैवलिखितं दृष्ट्वापि रामार्पणम्।
चित्तेनास्खलितेन यस्तदधिकं ब्रह्माणमप्रीणय-
त्तस्मै कः प्रथमाय मानिषु महावीराय वैरायते४३॥

केशोंसे शोभित अपने शिरोंको बडे वेगके साथ काटकर हवन करनेके अनन्तर अग्निमेंसे फूटकर बाहर फैलने पर सकल शिरोंमें दैवके लिखे रामार्पण अर्थात् रामसे काल होगा ऐसा लिखाहुआ देखकर भी जिसने मनको सावधान करके शिवजीको पूर्वसे भी अधिक सन्तुष्ट किया उस मानियोंमें मुख्य मुझ महावीर रावणसे कौन वैरकर सकता है ? ॥ ४३ ॥

वीरोसौ किमु वर्ण्यते दशमुखश्छिन्नैः शिरोभिः स्वयं
यः पूजार्थसमुत्सुको घटयितुं देवस्य खड्गाङ्गिनः ।
सूत्रार्थी हरकण्ठसूत्रभुजगव्याकर्षणायोद्यतः
साटोपं प्रमथैःकृतंभ्रुकुटिभिःस्थित्वान्तरेवारितः४४

नरकपालमालाधारी शिवकी अपने आप काटे हुए अपने शिरोंसे पूजा करनेको उत्कण्ठित हुआ जो दशानन अपने मस्तकोंको काटलेने पर उनको पिरोनेके निमित्त सूत्रकी आवश्यकता मान महादेवजीके कण्ठमें सूतकी समान लिपटेहुए सर्पके खींचनेको उद्यत होनेलगा, उस समय हँसते नाचते और भृकुटि मटकाते हुए शिवगणोंने मध्यमें खडे होकर हटादिया ऐसे वीर रावणका क्या किसीसे वर्णन होसकता है ? ॥ ४४ ॥

(अत्रान्तरे प्रविश्य) प्रतीहारः-

ब्रह्मन्नध्ययनस्य नैष समयस्तूष्णीं बहिः स्थीयतां
स्वल्पं जल्प बृहस्पते जडमते नैषा सभा वज्रिणः ।

स्तोत्रं संहर नारद स्तुतिकथालापैरलं तुम्बुरो
सीतारङ्गकभङ्गभग्नहृदयः स्वस्थो न लंकेश्वरः॥४५॥

(इसी मध्यमें द्वारपाल भीतर जाकर) अरे ! ब्रह्मा ! यह वेद पढनेका समय नहीं है मौन होकर बाहर बैठो ! रे मूढमते बृहस्पते ! यह इन्द्रकी सभा नहीं है, थोडा बोलो । अरे नारद ! स्तोत्रोंको धर दो । अरे तुम्बुरु ! कथाकी बातोंकी आवश्यकता नहींहै क्योंकि सीताके मस्तक परकी सिन्दूरकी रेखारूप भालेसे बिंधा है हृदय जिसका ऐसा लंकेश इस समय खिन्न है ॥ ४५ ॥

अंगदः-(क्रोधं नाटयति) ✓

स्फूर्जद्दिव्यास्त्रबाहुव्यतिकरविगलत्कंधरैस्तैः शिरोभि-
र्देवो रामः करिष्यत्युचितबलिमयं भूतसंघातशास्ता ।
हन्यात्किं नांगदस्त्वामतिपरुषरुषा तातकक्षावशिष्टः
प्रोद्धृत्योद्धृत्यपादप्रहतबहुशिरःकन्दुकैः क्रीडितोऽस्मि॥

अंगद (क्रोध करतेहुए) रे रावण ! अतिक्रोधके कारण क्या अंगद तुझको अभी नहीं मारडालता ? अवश्य ही तुझको समाप्त करदेता, परन्तु तीन कारणोंसे मैं तुझको क्षमा कररहा हूँ एक तो यह कि मेरे पिताकी बगलसे तू बचा है अर्थात् मेरे पिताकी दया करके छोडेहुए तुझको मैं मारडालूँ यह उचित नहीं है. दूसरी मैंने भी ऊपर नीचेको उछलकर बालकपनमें चरणोंसे ताडना कियेहुए तेरे शिररूपी गेंदोंसे क्रीडा की है सो जिसको चरणोंसे ठुकराया है उसको क्या मारना ? तथा अपने खिलौनेको तोडनेसे जगत्में अपकीर्ति होगी इस कारण मैं तुझको नहीं मारता हूं यदि कोई कहै कि स्वामीसे द्वेष करनेवालेको तो अवश्य ही मारडालना चाहिये तो तीसरा कारण यह है कि सकल प्राणियोंको शिक्षा देनेका जिनका स्वभाव है ऐसे देव रामचन्द्रजी जिसमें दमकते हुए दिव्य अस्त्र हैं ऐसे अपने भुजदण्डके कोपसे जिनकी

कन्धरा कटगई हैं, ऐसे तेरे शिरोंसे दिक्पालोंके निमित्त उचित बलिदान करेंगे ॥ ४६ ॥

अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तरः ।
तिमिङ्गिलगिलोऽप्यस्ति तद्गिलोप्यस्ति राघवः ४७

चार सौ कोस लम्बा एक तिमि नामक मच्छ है और उसको भी निगलनेवाला एक तिमिंगिल मत्स्य है श्रीरामचन्द्रजी तौ उसके भी कालरूप हैं ॥ ४७ ॥

मूर्ध्नामुद्धृत्य कृत्ता विरलगलगलद्रक्तसंभूतधारा-
धौतेशांघ्रिप्रसादोपनतजयजगज्जातमिथ्यामहिम्नाम् ।
कैलासोल्लासनेच्छाव्यतिकरपिशुनोत्सर्पिदर्पोद्धराणां
दोष्णां चैषामिदं ते फलमिह नगरीरक्षणेयत्प्रयासः४८॥

शिरोंको उखाडनेपर कटे और परस्पर मिलेहुए गलोंसे गिरी हुई बहुतसी रुधिरकी धाराओंसे धोयेहुए शिवजीके चरणकी कृपासे मिली हुई जयसे जगतमें मिथ्याही जिनकी महिमा होगई है ऐसे शिरोंका यह कटना ही फल है और कैलासको उखाडनेकी कामनाके घमंडको जतानेवाले तथा चारों ओरको फैलानेवाले अभिमानसे प्रचण्ड इन तेरी बीस भुजाओंका भी यह बोझा उठाना ही फल है, इन मस्तकों और भुजाओंसे लंकाकी रक्षा करनेमें परिश्रममात्र है और कुछ फल नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥

सीतां मुंच भजस्व रामचरणं राज्यं चिराद्भुज्यतां
देवाः सन्तु हविर्भुजः परिभवं मा यातु लंकापुरी ।
नोचेद्वानरवाहिनीपतिमहाचञ्चच्चपेटोत्तरै-
स्तत्तन्मुष्टिभिरंगसंगरगतस्तत्तत्फलं लप्स्यसे॥४९॥

इस कारण रे रावण ! श्रीजानकीजीको छोडदे, रामके चरणोंकी शरण ले और चिरकालतक राज्यको भोग, देवता यज्ञमें हविका

भक्षण करनेवाले हों तथा इस तुम्हारी लंका नगरीका तिरस्कार भी न हो नहीं तो हनुमान् आदि वानरसेनापतियोंके महा चपेटोंके ऊपर ऊपर उछलते हुए उन मुक्कोंसे घोर संग्राम भूमिमें पहुँचा हुआ तू आजतक की हुई सकल अनीतियोंका फल पाजायगा ॥ ४९ ॥

दृष्टः किं रघुनन्दनो नहि पुरा किं च त्वया न श्रुतो-
ऽरण्ये किंन विलम्बितोसि न पुनर्मार्गे स्थितोसिक्षणम्।
तल्लंकेश्वर मुंच मानमखिलं श्रुत्वा वधं वालिनः
सीतामर्पय रक्ष राक्षसकुलं दासत्वमङ्गीकुरु ॥ ५० ॥

क्या तूने पहिले कभी रामचन्द्रजीको देखा नहीं है ? और क्या सुना भी नहीं है ? वनमें तूने कुछ देर विलम्ब क्यों नहीं किया और मार्गमें कहीं तू क्षणभर भी क्यों नहीं ठहरा ? इस कारण हे लंकेश ! तू वालीके वधको सुनकर अपने सब अहंकारको छोड दे, जानकी रामचन्द्रजीको अर्पण कर राक्षसकुलको बचा और रामचन्द्रजीके दासभावको स्वीकार कर ॥ ५० ॥

(क्षेपकः) रावणः-

मरुत्वद्दम्भोलिक्षणघटितघोरश्वयथुना
निसर्गोदग्रेण प्रसभमुरसा पीतगगनः ।
श्रियं देवद्रीचीं निजभुजवनोद्दामकरिणी-
मयं कुर्वन्वीरः स्मरसि कथमासीदशमुखः॥५१

(रावण)–हे अंगद ! जिस समय देवताओंसे पूजित लक्ष्मीको बलात्कारसे अपने भुजारूपी वनमें मत्त हथिनीकी तुल्य करता हुआ अर्थात–जैसे हथिनी किसी वनमें घुसती है तैसे लक्ष्मी मेरी भुजाओंमें प्रविष्ट हुई और स्वभावसे ही बडे हृदय करके आकाशको पीता हुआ मैं चला, उस समय इन्द्रने जो मेरे वज्र मारा तो उससे मेरे वक्षःस्थलमें एक सूजनमात्र हो गई और ऐसा मैं महापराक्रमी रावण कैसा था, यह तुझको स्मरण है ? ॥ ५१ ॥

आस्कन्धादपि कण्ठकाण्डविपिने द्राक् चन्द्रहासा-
सिना छेत्तुं प्रक्रमिते मयैव झटिति त्रुट्यच्छिरःसन्ततौ।
अस्मेरं गलिताश्रुगद्गदवचो भग्नभ्रुवा यद्यभूद्भक्ते-
ष्वेवमपि स्वयं स भगवाँस्तन्मे प्रमाणं शिवः॥ ५२॥

शीघ्रही चन्द्रहासनामक तलवार करके कन्धोंपर्यन्त कण्ठरूप वृक्षों-के मुंडोंके वनको काटनेके निमित्त मेरे स्वयं ही प्रस्तुत होनेपर यदि वह झट कटते हुए शिरोंकी पंक्तिमें मेरा कोई भी मुख हँसी रहित हुवा हो या आँसू गिरे हों, या गद्गद् वाणी या टेढी भौं हुई हो तो इसमें स्वयं वह भगवान् शिव ही मेरे साक्षी हैं। अर्थात्-मैं ऐसा शूर हूँ कि शिवजीको शिर काटकर चढानेपर मेरे किसी भी मुखमेंसे आँसू नहीं निकला॥ ५२॥

येऽहंपूर्विकया प्रहारमभजन्मां छिन्धि मां छिन्धि मां
छिन्धीत्युक्तिपराः पुरारिपुरतो लङ्कापतेर्मौलयः।
ते भूमौ पतिताः पुनर्नवभवानालोक्य मूर्ध्नोऽपरा-
न्याचिष्यन्तइमेहिनोवयमितिप्रीत्याट्टहासं व्यधुः॥५३

पहिले मुझे काटो, मुझे काटो इस प्रकार अहंपूर्विकासे कटनेको उद्यत हुए मेरे शिर त्रिपुरासुरके नाशकर्ता श्रीमहादेवजीके सामने पृथ्वीमें गिरे और फिर नूतन निकलते हुए मस्तकोंको देखकर ये ही वर माँगेंगे हमें इच्छा नहीं ऐसा विचारकर प्रेमसे अट्टहास करने लगे अर्थात्-मैं ऐसा साहसी हूँ॥ ५३॥

मूले पंच ततश्चतुष्टयमिति स्रक्सन्निवेशैः शिरः-
पुष्पैरन्यतमावलोकनमितैरुच्छोणितैरञ्चति।
हस्तस्पर्शवशेन मूर्ध्नि दशमं मूर्धानमालोकय-
ञ्छम्भोरद्भुतसाहसैकरसिकः कैर्न स्तुतो रावणः५४

पांच मूलमें और फिर चार इस प्रकार मालामें स्थित उछलते हुए और शिरोंको देखनेके निमित्त नम्रीभूत शिरोरूप पुष्पोंसे पूजन करनेके समय माथेमें हाथका स्पर्श होनेपर दशवें माथेको देखता हुआ, साहसका एकमात्र रसिक रावण किससे स्तुति नहीं किया गया अर्थात् सबहीने मेरी स्तुति की है ॥ ५४ ॥

लंकेन्द्रः समधीरवीरपदवीरम्यो न गम्यो गिरां
तस्मिञ्जुह्वति चन्द्रहासशकलान्मौलीन्पुरारेःपुरः ।
भीत्या मन्दशिखोदयोऽपि दहनस्तैरेव तत्र क्षणं
प्राणाद्यैश्च दिदृक्षया तनुतनुश्वासानिलैर्दीपितः॥५५

साधारण धीरोंमें वीरोंकी पदवीकी इच्छावाला यह रावण वाणियोंका गम्य नहीं है अर्थात् वाणीमात्रसे कोई रावणका पार नहीं पासकता, महादेवके सन्मुख चन्द्रहास खड्गसे कटे उस रावणके मस्तकोंको देखकर हवन करते समय भयके मारे अग्निकी लपट मन्दी पडगई फिर देखनेकी अभिलाषा करनेवाले प्राणादिकों करके वहां क्षणमात्रको धीरे २ श्वासकी पवनोंसे वह अग्नि प्रदीप्त किया गया ॥ ५५ ॥

अंगदः- (सावज्ञम्)

आस्तां मस्तकहोमविक्रमकथा पौलस्त्य विस्तारिणी
देहं किं न निपातयन्ति दहने वैधव्यभीताः स्त्रियः ।
कैलासोद्धरणेन भारवहनप्रौढिस्त्वयाविष्कृता तूर्णं
वर्णय किं च किंचिदपरं यत्पौरुषस्यास्पदम् ॥ ५६ ॥

(अंगद तिरस्कारके साथ)-रे रावण ! तेरे शिरोंके हवनके विस्तारवाली कहानी रही, क्या रँडापेके दुःखसे डरी हुई स्त्रियें अपने शरीरोंको अग्निमें भस्म नहीं करदेती हैं ? कैलासको उखाडनेसे तूने भारको उठानेकी प्रौढता प्रगटकी,अच्छा अब और भी जो कुछ तेरे पराक्रमकी कथा हो उसको भी तू शीघ्रही कहडाल ॥५६॥

दोर्दण्डाहितपौत्रभिक्षुरभवद्यस्मिन्पुलस्त्यो मुनि-
स्तद्बाहोर्वनमच्छिनत्परशुना यो राजबीजान्तकः ।
शौर्यं शौर्यरसाम्बुधेर्भृगुपतेर्ग्रासोऽपि नासीज्जलं
तत्तेजो वडवानलस्य किमसौ लंकापतिः पल्वलम् ५७

अपने पोतेके भुजदण्डोंको बन्धनसे छुडानेके लिये पुलस्त्य मुनि जिसके भिखारी हुए थे उस सहस्रबाहु अर्जुनकी भुजाओंके बलको राजाओंके जडका नाश करनेवाले परशुरामजीने फरसेसे काटडाला, ऐसे वीररसके समुद्र परशुरामजीका शूरतारूप जल, बडवानलकी तुल्य रामचन्द्रके तेजका एक ग्रासभी नहीं होसका फिर यह छोटेसे सरोवरकी समान तू तो वस्तुही क्या है ? ॥ ५७ ॥

रे रे राक्षसराज मुंच सहसा देवीमिमां मैथिलीं
मिथ्या किं निजपौरुषस्य घटनाप्रागल्भ्यमारभ्यते ।
एनां पश्यसि किं न किन्नरगणैरुद्गीतदोर्विक्रमां
सेनां वानरभर्तुरुद्भटभुजस्तम्भाढ्यभीमां पुरः॥५८॥

अरे हे राक्षसराज ! इस मिथिलेशकुमारी जानकी देवीको तू शीघ्र छोडदे वृथाही तू अपने पुरुषार्थकी बडाई क्यों गारहा है ? जिनकी भुजाओंके पराक्रमके गीत बनाकर किन्नर गाया करते हैं ऐसे वानरराज सुग्रीवके योधा वानरोंकी भुजाओंके मुख्यस्तम्भोंसे भयानक इन वानरोंकी सेनाको तू अपने सम्मुख क्या नहीं देख रहा है ? ॥ ५८ ॥

इति लंकाभटमुत्कटवाक्यैरधिक्षिप्य लंका-
मातंकयन्नंगदो निष्क्रान्तः ।

इति श्रीहनुमन्नाटकेऽङ्गदाधिक्षेपणं नामाष्टमोऽङ्कः ॥ ८ ॥

इस प्रकार लंकाके शूर वीर (रावण) को भयानक वचनोंसे ललकार कर लंका नगरीको भय देते हुये अंगद चले गये ॥

इति हनुमन्नाटके भाषाटीकायामङ्गदाधिक्षेपणं नामाष्टमोङ्कः समाप्तः ८

अथ नवमोऽङ्कः ।

अथ निजप्रतापप्रचण्डसमरोत्साहपरिपूर्णस्य लंकापतेः—

श्रुत्वा दाशरथिः सुवेलकटके साटोपमर्धं धनु-
ष्टंकारैःपरिपूरयन्तिककुभःप्रोच्छन्ति कौक्षेपकान् ।
अभ्यस्यन्ति तथैव चित्रफलकैर्लंकापतेस्तत्पुन-
र्वैदेहीकुचपत्रवल्लिरचनावैदग्ध्यमर्धं कराः ॥ १ ॥

इसके अनन्तर अपने प्रतापकी प्रचण्डतासे बढे हुए संग्रामके उत्साहसे परिपूर्ण लंकाधिपति रावणकी आधी अर्थात् दशभुजाएं रामचन्द्रको सुवेल पर्वतके ऊपर सेनाके पडावके साथ स्थितहुए सुनकर धनुषकी टंकारोंसे दिशाओंको व्याप्त करती हैं और शेष रहीं दश भुजा उसी प्रकार चित्र बनानेके फलकोंके द्वारा जानकीजीके कुच पत्रोंपर वेलोंकी रचनाका अभ्यास करती हैं ॥ १ ॥

ततो निजराजमन्दिरशिखरस्थमञ्चमारुह्य रावणः ।

फिर रावण अपने राजमहलके शिखरपर बिछेहुए सिंहासनके ऊपर चढकर—

लंकायां कृतवानयं हि विकृतिं दग्धाग्रपुच्छः पुरा
कोप्येष प्रतिभाति वालिसदृशो नूनं तदीयः सुतः ।
श्यामः कामसमाकृतिः शरधनुर्धारी स सीताप्रियः
प्रत्येकं रिपुमीक्षताति निगदन्मंचस्थितो रावणः॥२॥

पूँछका अग्रभाग जलनेपर इसनेही पहिले लंकामें आग लगादी थी, यह कोई वानर बालीकी समान शोभा पारहा है । ओहो ! मैंने जानलिया यह निःसन्देह वालीका बेटाही है और वह धनुष बाण धारण किये कामदेवकी समान आकारवाला श्यामशरीर सीताका प्यारा है, इस प्रकार प्रत्येक शत्रुके विषयमें रावण कहता हुआ सिंहासनपर बैठाही देखनेलगा ॥ २ ॥

तत्र मन्दोदरी-

दृष्ट्वा राघवमेव राक्षसवनस्वच्छन्ददावानलं
जानक्यां निजवल्लभस्य परमं प्रेमाणमालोक्य च ।
कांक्षन्ती मुहुरात्मपक्षविजयं भंगं च मुग्धा मुहु-
र्धावन्ती मुहुरन्तरालपतिता मन्दोदरी सुन्दरी॥३॥

उस समय मन्दोदरी--राक्षसरूप वनके निमित्त स्वच्छन्द अग्निकी तुल्य भगवान् रामचन्द्रको देखकर और जानकीमें अपने पतिके परमप्रेमकोभी देखकर वारंवार अपनेही पक्षके विजयकी इच्छा करती हुई अनजान मन्दोदरी आनन्दमें भरकर कभी घरमें और कभी रावणके समीप दौडकर जाती हुई बीचमेंही गिरगई ॥ ३ ॥

वन्दारुवृन्दारकवृन्दवन्दिमन्दारमालामकरन्दबिन्दून् ।
न्दोदरीयं चरणारविन्दरेणूत्करान्कर्करतामनैषीत्॥४॥

इस मन्दोदरीने प्रणाम करनेवाले देवगणोंकी रोकीहुई स्त्रियोंके गलोंकी कल्पवृक्षके फूलोंकी मालाओंके परागके कण जिनमें लगे हैं ऐसे अपने चरणकमलोंके रेणुओंके कणोंको किरकिरा करदिया ॥ ४ ॥

मन्दोदरीअञ्जलिंबद्धारावणंवैरिविद्रावणंविज्ञापयति-देव

हाथ जोडकर शत्रुओंका नाश करनेवाले रावणसे मन्दोदरी प्रार्थना करती है--कि हे नाथ ।

त्वं बाहूद्धतचन्द्रशेखरगिरिर्भ्राता जगद्रक्षकः
पुत्रः शक्रजयीत्यवेत्य रणधीर्नूनं बली वालिजित् ।
तद्राजन्नबला बलादपहृता देयास्य सा जानकी
लंकायां रहसीत्युवाच वचनं मन्दोदरी मन्दिरे॥५॥

मन्दोदरी लंकाके एकान्त स्थानमें रावणसे यह वाक्य कहने लगी कि--महाराज ! यह ठीक है कि तुम बाहुओंसे चन्द्रभाल

महादेवके कैलासपर्वतको उठानेवाले हो, तुम्हारा भाई कुम्भकर्ण जगत्को भक्षण करनेवाला है और आपका पुत्र मेघनादभी इन्द्र विजयी है तथापि जीतनेवाला रामभी संग्राममें बडा धैर्यधारी है हे नाथ ! आपको ऐसा जानकर वह बलात्कारसे हरण करके लाईहुई अबला जानकी इनको देदेना उचित है ॥ ५ ॥

रावणः—(निजभुजाडम्बरं नाटयति)

किं ते भीरु भिया निशाचरपतेर्नासौ रिपुर्मे महान्
यस्याग्रे समरोद्यतस्य न सुरास्तिष्ठन्ति शक्रादयः ।
मद्दोर्दण्डकमंडलोद्धृतधनुः क्षिप्ताः क्षणान्मार्गणाः
प्राणानस्य तपस्विनः सति रणे नेष्यंति पश्याधुना६॥

(रावण अपनी भुजाओंके बलका बखान करता है) अरी डरपोक ! तेरे डरसे क्या है ? समर करनेको उद्यत हुए जिसके सामने इन्द्रादिक देवता खडे नहीं रहते हैं, ऐसे मुझ राक्षसराज रावणका कोई यह बडाभारी शत्रु नहीं है तू अभी देखना, संग्राम होनेपर मेरे भुजदण्डोंके समूह करके चढाये हुए धनुषसे छूटनेवाले बाण एक क्षणमेंही इस तपस्वी रामके प्राणोंको लेलेंगे ॥

दूसरा अर्थ—इसमें रावणका छिपा हुआ यह अभिप्राय है कि—हे डरपोक ! मेरे भयसे क्या है क्योंकि- जिनके समरमें उद्यत होनेपर इन्द्रादिक देवताभी स्थित नहीं होते हैं, ऐसे यह पुरुष मेरे बडे भारी वैरी हैं तू देखना रणके होनेपर इन तपस्वियोंके बाहुदण्डोंके समूह करके चढाये धनुषसे छूटे बाण क्षणमात्रें मेरे प्राणोंको हरलेंगे ॥६॥

मन्दोदरी—(सभयं रावणोदितपद्यार्थमपश्यन्ती भाविना द्वितीयं पद्यार्थमवगम्य) अहो प्राणनाथ ! लंकेश्वर! किमिति स्वकपोलकल्पितैरमंगलालापैरात्मनो वधं मन्यसे ? शान्तं पापं प्रतिहतममंगलमिति वैचित्र्यमुत्पाद्य ॥

मन्दोदरी भयभीत होकर रावणके कहे श्लोकके अर्थको न देखती हुई भावीके कारण रावणके नाशरूप श्लोकके दूसरेही अर्थको समझकर कहने लगी कि-अहो प्राणनाथ ! लंकेश्वर ! क्यों अपने आपही इस प्रकार अमंगल वाक्योंसे अपना नाश मानरहे हो पाप शान्तिको प्राप्त हो, विघ्नकी गति रुकै. ऐसी विचित्रताको उत्पन्न करके ॥

एकः सुग्रीवभृत्यः कपिरखिलवनं पत्तनं चापि दग्ध्वा
यातस्तूष्णीं तदानीं दशमुख भवतः किं कृतं वीरवर्गैः॥
प्राप्तोऽसौ पत्तनान्तं सकलकपिबलैर्वार्धिमुल्लंघ्य योद्धुं
त्वं सीतां मुंचमुंचेत्यनिशमकथयत्प्रेयसीरावणस्य७॥

एक सुग्रीवका सेवक वानरही समस्त वाटिकाको उजाड और नगरको जलाकर चुपचाप लौटगया, उस समय हे दशानन ! आपके वीर गणोंने क्या किया ? और अब तो समस्त वानरोंकी सेनाको लेकर यह राम सागरके पार होकर तुमसे युद्ध करनेके निमित्त नगरके समीपमेंही आगया इस कारण तुम सीताको छोडदो, छोडदो, इस प्रकार रावणकी प्यारी मन्दोदरीने बार २ कहा ॥ ७ ॥

(मन्दोदरीकथनेन किंचित्सभयो रावणः)

शुकं च सारणं वीरं दूतं प्रस्थाप्य रावणः ।
रामदेवस्य शिबिरं मंत्रं चक्रेऽथ मंत्रिभिः ॥ ८ ॥

मन्दोदरीके कहनेसे कुछ भयभीत हुआ रावण शुक और सारण नामक दो वीरोंको दूत बनाकर रामचन्द्रजीके लश्करमें भेज मंत्रियोंके साथ सम्मति करने लगा ॥ ८ ॥

तत्र विरूपाक्षनामा मन्त्री-(सार्धम्)

देव त्वां प्रति संप्रति प्रतिभटप्रोल्लासनं नो मुदे
देवायं प्रतिपद्यते हितमिदं यस्माद्वयं मंत्रिणः ।
सीतारक्षणदक्षलक्ष्मणधनुर्लेखापि नोल्लंघिता
हेलोल्लंघितवारिधिःकपिकुलैःसार्धंसरामोमहान्९॥

उस समय विरूपाक्षनामक मन्त्री हितके साथ कहने लगा कि- हे देव ! इस समय शत्रुपक्षको अपने साथ लडाईके निमित्त उकसाना आपको आनन्ददायक नहीं होगा । हमलोग आपके मन्त्री हैं, इस कारण हितकोही कहते हैं ! क्योंकि-जब सीताजीकी रक्षा करनेमें चतुर लक्ष्मणजीके धनुषकी रेखाभी आपसे नहीं लाँघी गई तौ फिर वानरोंके झुंडोंके साथ बातकी बातमेंही समुद्रको उल्लंघन करनेवाले वह रामचन्द्रजी तौ बहुतही बडे हैं ॥ ९ ॥

यावदाशरथेर्न पश्यसि मुखं यावन्न पाथोनिधिं
बद्धं यावदिमां न पावकवशां लंकां निरस्तालकाम् ।
यावन्नैव निजानुजं सुचरितं यातं कुलाङ्गारतां
तावद्रावण लोकपाल तरसा सीतां प्रयच्छानघाम् ॥ १०

हे रावण! प्रथम तौ जबतक यह लंका भस्म होकर राक्षसियोंसे रहित नहीं हुई थी तबतक ही तुमको सीता लौटा देनी थी, इसके अनन्तर भी समुद्रका पुल बँधनेसे पहिलेही लौटा देनी थी, यह भी नहीं हो सका तो अब जबतक तुम दशरथनन्दन रामचन्द्रजीका मुख नहीं देखते हो और जबतक तुम्हारा भाई विभीषण कुलकी कलंकताको नहीं लेता है हे लोकपाल ! तबतक इस पापरहित जानकीको आप शीघ्र ही लौटा दीजिये ॥ १० ॥

रावणः-(साश्चर्यम्)

एते ते मम बाहवः सुरपतेर्दोर्दण्डकण्डूहराः
सोहं सर्वजगत्पराभवकरो लंकेश्वरो रावणः ।
सेतुं बद्धमिमं शृणोमि कपिभिःपश्यामि लंकां वृतां
जीवद्भिर्नहि दृश्यते किमथवा किं वा न वा श्रूयते ११

(रावण आश्चर्यमें होकर) यह मेरी भुजाएं इन्द्रके भुजदण्डोंकी खुजलीको मिटानेवाली हैं ऐसा समस्त जगत्का तिरस्कार करनेवाला लंकाका स्वामी मैं रावण बन्दरों करके समुद्रके पुलको बांधा हुआ

सुनूँ और इस लंकाको घेरी हुई देखूँ-यह जीतेजी तो देखा या सुना नहीं जायगा अर्थात् मेरे जीते हुए बानर लंकाको घेर नहीं सक्ते॥११॥

विरूपाक्षः-राजन्विषादं मागाः पश्य-

आज्ञा शक्रशिरोमणिप्रणयिनी[1] शस्त्रग्रहाणामपि
भक्तिर्भूतपतौ पिनाकिनि पदं लंकेति दिव्या पुरी।
संभूतिर्द्रुहिणान्वये[2] च तदहो नेदृग्वरोल्लभ्यते
स्याच्चैवेष न रावणः क्वनु पुनस्त्वेकत्र[3] सर्वे गुणाः १२

(विरूपाक्ष कहने लगा कि हे राजन्! खिन्न न हूजिये) आपकी आज्ञाको शस्त्रधारी इन्द्रादिक भी अपने शिरपर मणिकी समान आदरके साथ धारण करते हैं, पिनाकपाणि श्रीभूतनाथ शिवके चरणोंमें आपकी भक्ति है, लंकासी दिव्य नगरी रहनेका स्थान, ब्रह्मवंशसे आपकी उत्पत्ति है, ओहो! ऐसे वरदान भी कोई नहीं पा सकता और यदि किसीमें यह सकल गुण हो भी जायं तो वह रावण नहीं होगा सार यह है कि-यह सब गुण आपके अतिरिक्त और किसीमें नहीं होंगे॥ १२॥

रावणः (धैर्यमवलम्ब्य)

मतिर्विपश्चितां मन्त्री रतिर्मन्त्री विलासिनाम्।
पराक्रमैकसाराणां मानिनां त्वसिवल्लरी॥ १३॥

(रावण धीरज धरकर) विद्वानोंका मंत्री बुद्धि होती है, कामियोंका मंत्री रति होती है और केवल पराक्रमका ही भरोसा रखनेवाले मानी मनुष्योंकी तो तलवाररूप लताही मंत्री है॥ १३॥

अथ महोदरो नाम मंत्री-

राजन्मुखसुखा वाचो मधुराः कस्य न प्रियाः।
तव क्षोदक्षमाः किन्तु नैता व्यसनसंगमे॥ १४॥

---

१ आज्ञा शक्रशिखामणिप्रणयिनी शास्त्राणि चक्षुर्नवं। २ उत्पत्तिर्द्रुहिणान्वये च तदहो नेदृग्वरो लभ्यते। ३ सर्वत्र सर्वेगुणाः इति च पाठान्तरम्।

(इसके उपरान्त महोदर नामक मंत्रीने कहा कि-) हे राजन्! प्रारम्भमें ही अथवा मुखसे कहने मात्रमें सुख देनेवाली मीठी बातें किसको प्यारी नहीं लगतीं? अर्थात् मीठे वाक्य सबको ही अच्छे मालूम होते हैं परन्तु दुःख आनेपर यह बातें आपके दुःखको दूर नहीं कर सकेंगी ॥ १४ ॥

प्रिया वा मधुरा वाक् च हर्म्येष्वेव विराजते।
श्रीरक्षणे प्रमाणं तु वाचः सुनयकर्कशाः ॥ १५ ॥

प्यारी और मीठी बात महलोंमें ही विराजती है और लक्ष्मीकी रक्षा करनेमें तो सुन्दर नीति संयुक्त कठोर वाणीही काम देती है॥१५॥

विभवे भोजने दाने तिष्ठन्ति प्रियवादिनः।
विपत्तौ चागतेऽन्यत्र दृश्यन्ते खलु साधवः ॥१६॥

प्यारी बातें बनानेवाले केवल ऐश्वर्य, भोजन और दानके समयही समीप रहते हैं, और आपत्ति आनेपर तो वह प्रियवक्ता अन्यत्र चले-जाते हैं और साधुही समीप दीखते हैं ॥ १६ ॥

अग्रे प्रस्तुतनाशानां मूकता परमो गुणः।
तथापि प्रभुभक्तानां मौखर्यादिदमुच्यते ॥ १७ ॥

जिनका विनाशकाल सामनेही प्रस्तुत है उनके विषयमें चुप रहनाही परम गुण है तथापि हम प्रभुभक्त हैं, इस कारण धृष्ट होकर यह कहतेहैं कि ॥ १७ ॥

यैरेव स्तुतिभिः स्वामी प्राप्यते व्यसनाटवीम्।
पश्चान्मूकत्वमापन्नैरुद्धर्तुं शक्यते कथम् ॥ १८ ॥

जो मिथ्या प्रशंसा करनेवाले मंत्री स्वामीको दुःखोंके वनमें डाल-देतेहैं और पीछेसे मौन हो बैठतेहैं उन मंत्रियोंसे स्वामीका उद्धार कैसे होसकताहै अर्थात् कभी नहीं होसकता ॥ १८ ॥

नद्यश्च खलमैत्री च लक्ष्मीश्च नियतिद्विषाम्।
सुकुमाराश्च वनिता राजन्नस्थिरयौवनाः ॥ १९ ॥

हे राजन् ! नदियें, खोटे पुरुषोंकी मित्रता, लक्ष्मी और शत्रुओंका प्रारब्ध तथा कोमलाङ्गी स्त्रियोंका यौवन सदा स्थिर नहीं रहता है ॥१९॥

दत्तोत्साहैरकार्येऽपि चित्तग्रहणकोविदैः ।
सत्यं विदग्धैर्भुज्यन्ते नृपाः कर्णान्तषट्पदैः॥२०॥

अकार्यमेंभी उत्साह देनेवाले चित्तको हरण करनेमें चतुर कानोंके समीप मुख लगाकर भौरोंकी झंकारकी समान मीठी बातें बनानेवाले चतुर पुरुषों करके राजा लोग भोगेजाते हैं यह सत्य है ॥ २० ॥

पद्मिनी कान्तिमापेदे संकोचं च कुमुद्वती ।
न भवन्ति चिरं प्रायःसम्पदो विपदोऽपि वा ॥२१॥

कमलिनीने कान्ति पाई और कुमुदिनी मुँदगई ऐसेही प्रायः सम्पत्ति था विपत्ति चिरकालपर्यन्त नहीं रहती है ॥ २१ ॥

तथा च-

सुरेज्यादिभिराचार्य्यैर्नीतिशास्त्रं त्रिधा मतम् ।
ऐहिकं चामुष्मिकाख्यमैहिकामुष्मिकं तथा॥२२॥

इसी कारण बृहस्पति आदि आचार्योंने इस लोकमें सुखका देनेवाला और परलोकमें सुखका देनेवाला तथा इस लोक और परलोकमें दोनोंमें सुखका देनेवाला यह तीन प्रकारका नीतिशास्त्र माना है॥२२॥

ऐहिकामुष्मिकं तत्र शास्त्राणामुत्तमोत्तमम् ।
आमुष्मिकं तूत्तमं स्यादैहिकं चाधमाधमम् ॥२३॥

इन तीनोंमेंसे इस लोकमें और परलोकमेंभी सुखका दाता नीतिशास्त्र सब शास्त्रोंमें परमोत्तम है, तथा परलोकमें सुख देनेवाला नीतिशास्त्र भी उत्तम हीहै परन्तु केवल इस लोकमेंही सुखका दाता नीतिशास्त्र नीचसेभी नीच है ॥ २३ ॥

यज्ज्ञानात्स्वामिनं हत्वा भजन्ते मंत्रिणः प्रियम् ।
विषशास्त्रादिभिः शास्त्रं तदैहिकमिति स्मृतम् ॥२४॥

जिसके ज्ञानसे मन्त्रीजन विष और शस्त्रादिकों करके स्वामीको मारकर अपने प्रिय राज्यको भोगते हैं इस लोकमें सुख देनेहारा वह नीतिशास्त्र ऐहिक कहाता है ॥ २४ ॥

तुल्यः सूर्यद्विजवधैराज्ञाभंगो महीभुजाम् ।
यद्वधे यद्वदत्पापं न शेषो वक्तुमर्हति ॥ २५ ॥

राजाओंकी आज्ञाका भंग करना तौ वेदमार्ग और ब्राह्मणोंके वध करनेकी समान है । इसही कारण विष आदिसे राजाओंको मारनेमें जो प्राप होता है उसको सहस्रमुख शेषभी नहीं कहसकते ॥ २५ ॥

अपराधं विना मन्त्री प्रभुणा पीडितोऽपि सन् ।
न वैरूप्यं क्वचिद्याति तदामुष्मिकमुच्यते ॥ २६ ॥

विनाही अपराधके स्वामीसे पीडित हुआ भी जो मंत्री कभी विकार नहीं लाता उसको शिक्षा देनेवाला परलोकमें सुखदायक नीतिशास्त्र आमुष्मिक कहाता है ॥ २६ ॥

राज्यग्रहणशक्तोऽपि मनसापि न चिन्तयेत् ।
सचिवः स्वामिनो नाशमैहिकामुष्मिकं हि तत२७

राज्यको छीनलेनेमें समर्थ भी जो मंत्री मनसे भी स्वामीके नाशका विचार न करै उसको शिक्षा देनेवाला नीतिशास्त्र इसलोकमें और परलोकमें भी सुखदायी ऐहिकामुष्मिक नीतिशास्त्र कहाता है ॥२७॥

शुकश्च सारणो वीरश्चैहिकौ मंत्रिणौ तव ।
वानरीं तनुमास्थाय हतौ तत्र स्थितावपि ॥ २८ ॥

वीर शुक और सारण यह दोनों मन्त्री ऐहिक नीतिके धारण करनेवाले है । क्योंकि—जो वानरोंके शरीरको धरकर गये हुए रामचन्द्रजीकी सेनामें अबतक स्थित हैं ॥ २८ ॥

आवामामुष्मिकौ राजन्विरूपाक्षमहोदरौ ।
मैथिली दीयतां तूर्णं नो चेत् सहचरौ तव ॥ २९॥

हे राजन् ! विरूपाक्ष और महोदर हम दोनों आपको परलोकमें सुख देनेवाले हैं हमारी सम्मति तो यह है कि-आप जानकीको शीघ्र दे दीजिये नहीं तो हम दोनों तो आपके अनुचर हैं ही अर्थात्-कल्याण तो आपका जानकीके देनेमें ही है और यदि आप न भी देंगे तौ भी हम तो आपके अनुचर रहेंगे ही इस विपत्तिमें आपका साथ कदापि नहीं छोडेंगे ॥ २९ ॥

रावणः-

(सभयं सशिरःकम्पं स्वगतं वा स्वगतमेवोच्यते)

नीतिशास्त्रमिदं श्रुत्वा कुम्भकर्णः क्वचिद्बली ।
हन्ति चेन्मामतो युद्धे प्रथमं प्रेष्यतामयम् ॥३०॥

रावण-(डरसे मस्तकोंको हिलाता हुआ मनमेंही विचारने लगा और मनमेंही कहने भी लगा कि) कहीं बलवान् कुम्भकर्ण इस नीतिशास्त्रको सुनकर मुझको ही न मारडाले, इस कारण पहिले उसकोही युद्धमें भेजना चाहिये ॥ ३० ॥

विरूपाक्षमहोदरौ-(प्रभोः शिरःकम्पनादन्तर्गतमभिप्रायमवगम्य)

नीतिशास्त्रविदो धर्मं केवलं नृपतेः पुरः ।
पठन्ति युवराजादिपुरतो न कदाचन ॥ ३१ ॥

(विरूपाक्ष और महोदर रावणके शिरोंके हिलनेसे चित्तका अभिप्राय समझकर कहने लगे कि)नीतिशास्त्रके ज्ञाता मंत्री केवल राजाके ही सामने राजधर्मका वर्णन करते हैं और युवराज आदिके सन्मुख कभी नहीं कहते ॥ ३१ ॥

हा नाथ लंकेश्वर ! किमित्यावयोःश्रद्धाधिकारिणो-
र्वैरूप्यशंकामंकुरयसि तेऽन्येदुरधिकारिणः पापाः ॥

हा नाथ लंकाधिपते ! क्या तुम श्रद्धाके अधिकारी हम दोनोंके विपरीत होनेकी मनमें शंका करते हो ऐसा करनेवाले दुष्ट सेवक और ही पापी होते हैं ॥

उक्तञ्च–

न सर्पस्य मुखे रक्तं न दुष्टस्य कलेबरे ।
न प्रजासु न भूपाले धनं दुरधिकारिणि ॥ ३२ ॥

क्रोधके समय सर्पके मुँहमें रुधिर नहीं होता है और दुष्टके शरीरमें रुधिर नहीं होता है तथा क्रोधी दुष्ट अधिकारी राजाके होनेपर प्रजाओंमें धन नहीं रहता है ॥ ३२ ॥

तेऽप्यधिकारिणः पापा ये द्विषन्ति निजं पतिम् ।
आवां तथाविधौ नैव भवानपि न मूढधीः ॥ ३३ ॥

जो अपने स्वामीसे ही द्वेष करते हैं वह अधिकारी भी पापी होते हैं सो हम दोनों तैसे नहीं हैं तथा आप भी मन्दबुद्धि नहीं हैं जो हमको न जानते हो ॥ ३३ ॥

नियुक्तहस्तार्पितराज्यभारास्तिष्ठन्ति यस्वैरविहारसाराः ।
बिडालवृन्दाहितदुग्धमुद्राः स्वपंतिते मूढधियः क्षितीन्द्राः

जो राजे भृत्योंके हाथमें राज्यका भार सौंपकर स्वच्छन्द विहारकोही अपना कर्त्तव्य मान बैठते हैं वह मन्दबुद्धि मानो बिलावोंके समूहमें दूधका पात्र रखकर सोते हैं अर्थात् जैसे बिडालोंमें दुग्धके पात्रको धरकर सोतेहुए प्राणीका दूध नष्ट होजाता है तैसे ही नियुक्त मनुष्योंके हस्तमें छोडाहुआ राज्य भी नष्ट होजाता है ॥ ३४ ॥

अपि च–

उत्खातान्प्रतिरोपयन्कुसुमितांश्चिन्वँल्लघून्वर्धयन्
क्षुद्रान्कण्टकिनो बहिर्निरसयन्विश्लेषयन्संहतान् ।
अत्युच्चान्नमयन्नतांश्च शनकैरुन्नामयन्भूतले
मालाकार इव प्रयोगचतुरो राजा चिरं नन्दते ३५

(और भी सुनिये) जैसे बाग लगानेसे चतुर माली उखाडेहुए पेडोंको फिरसे प्रस्थापित करता है, फूले हुओंसे फूल इकट्ठे करत

छोटे छोटोंको बढाता है कांटेवालोंको छोटे २ ही बाहर निकाल ता है, मिलेहुओंको पृथक् २ करदेता है और बडे ऊँचोंको ाट छाँटकर नीचा करता है और नीचोंको धीरे २ ऊँचा करता , तो चिरकालतक उस बागका आनन्द भोगता है तिसी प्रकार ाजकार्य करनेमें चतुर राजा, स्थानहीन हुए अधिकारियोंको दूसरे थानपर नियत करता है, पुष्पित हुए अर्थात् धनी हुए पुरुषोंसे र लेताहुआ, छोटोंको उन्नति देता, प्रजाको दुःख देनेवाले क्षुद्र पुरुषोंको अधिकारसे अलग करता, आपसमें मिलेहुए अधिकारियोंको अलग २ करताहुआ तथा अतिऊँचे पदपर पहुँचकर दुष्टता करनेवाले अधिकारियोंको अपने वशीभूत नीचे करताहुआ चिरकाल पर्यन्त भूतलपर राज्यका आनन्द भोगता है ॥ ३५ ॥

ाजन्कार्यवशाद्विरुद्धसंग्रहोपिराज्ञाशुद्धेनाशुद्धसंग्रहः प्रयोजनहीनोऽपि कर्तव्यः । प्रयोजनं जनयति कचित्काले । अत्र भगवान् भवतामिष्टः प्रमाणमेणाङ्कमौलिः ।

हे राजन्! शुद्ध राजाको भी कार्यवश विरुद्ध और प्रयोजनरहित अशुद्ध सेवकका भी संग्रह करना योग्य है क्योंकि-वह भी कभी न कभी प्रयोजन सिद्ध कर ही देता है। इस विषयमें आपके इष्टदेव भगवान् चन्द्रशेखर शिवही साक्षी हैं ॥

जीर्णेप्युत्कटकालकूटकवले प्लुष्टे हठान्मन्मथे
नीते भासुरभालनेत्रतनुतां कल्पान्तदावानलैः ।
यःशक्त्यासमलंकृतोऽपिशशिनं शैलात्मजां स्वर्धुनीं
धत्ते कौतुकराजनीतिनिपुणः पायात्स वः शंकरः३६

बडे पुराने उत्कट हालाहल विषके पीनेपर हठसे कामदेवके भस्म होनेपर और कल्पान्तकी अग्नियोंके द्वारा दमकते माथेमेंके नेत्रकी सूक्ष्मताको प्राप्त होनेपर प्रयोजन न होतेहुए भी अपनी शक्तिसे ही शोभायमान जो चन्द्रमा हिमाचलनंदिनी पार्वती और

गंगाको धारण करतें हैं वह कौतुककी राजनीतिमें कुशल शंकर आपकी रक्षा करें ॥ ३६ ॥

दिग्वासा यदि तत्किमस्य धनुषा शस्त्रं च किं भस्मना
भस्माथास्य किमङ्गना यदिच साकामंपरं द्वेष्टि किम् ।
इत्यन्योऽन्यविरोधिकर्मनिरतं पश्यन्निजं स्वामिनं
भृङ्गी सान्द्रशिरावनद्धसकलं धत्तेऽस्थिशेषं वपुः॥३७॥

यदि इन भगवान् शिवके दिशा ही वस्त्र हैं तो इनको धनुषसे क्या काम है ? यदि शस्त्रही है तो विभूतिसे क्या प्रयोजन है। यदि भस्मही मली तो फिर इनको स्त्रीसे क्या प्रयोजन है ? और जो स्त्री भी है तो फिर यह कामदेवसे इतना भारी वैर क्यों करते हैं ? इस प्रकार एक दूसरेसे परस्पर विरोधका काम करनेमें तत्पर अपने स्वामीको देखताहुआ भृंगी सघन नाडियों करके चारों ओरसे बँधे हैं हाथ पैर आदि अंग जिसके और केवल हड्डियेंही जिसमें शेष रही हैं ऐसे निष्प्रयोजन शरीरको धारण करते हैं ॥ ३७ ॥

ब्राह्मणं मंत्रिणं द्रोणं शुद्धं वीरं भविष्यति ।
गुरुं दुर्योधनस्त्यक्त्वा यथा त्वं मा तथा भव ॥ ३८ ॥

जिस प्रकार ब्राह्मणशरीर, शुद्ध, वीर और मंत्रके देनेवाले अपने गुरु द्रोणाचार्यको छोडकर दुर्योधन होगा, उस प्रकारके आप न हूजिये ॥ ३८ ॥

अत्रान्तरे मन्दोदरी रावणेन सह खेलमाना स्मरस्मेर-
वाणीविलासलीलया अशोकवनिकामागम्य जानकी-
स्थानमाक्रम्योपविश्याह ॥

इसी अवसरमें रावणके साथ खेलती हुई मन्दोदरी कामोद्दीपक मुसकुरानमय बातें और विलासकी लीलाके द्वारा अशोकवाटिकामें आ जानकीके स्थानको घेरकर बैठके बोली कि—

(रावण) इसके अनन्तर उस पापी राक्षसपति रावणने मायाके द्वारा बनायेहुए वैसे ही सुन्दरतासे परिपूर्ण निरन्तर रुधिरकी वर्षा करते हुए प्राणहीन होजानेके कारण मुँदे नेत्रोंवाले रामचंद्र और लक्ष्मणके शिरको सीताके सामने रख दिये ॥ १ ॥

(जानकी)

सबाष्पं, शिरःसरसीरुहद्वयमालोकयति-

अहह जनकपुत्री फुल्लराजीवनेत्री
नयनसलिलधारागर्भनिर्मुक्तहारा ।
रमणमरणभाता मृत्युना किं न नीता
हृदयदहनजालः संदहेद्वा विशालः ॥ २ ॥

(जानकी) नेत्रोंमें आँसू भरकर दोनों कमल समान शिरोंको देखनेलगी—बडे शोककी बात है कि—खिले हुए कमलकी समान आंखोंवाली नेत्रोंके जलकी धाराके भीतर हारको त्यागनेवाली अर्थात् जिसकी आँखोंके आंसू हारकी समान टूटकर गिरने लगे, ऐसी यह जनककुमारी जानकी पतिकी मृत्युसे डरी हुई कहने लगी कि—हे नाथ ! उस रावणरूप कालके द्वारा आपने मुझको अपने समीप क्यों नहीं बुला लिया ? अथवा हृदयमें स्थित आपके वियोगसे उत्पन्नहुई विशाल अग्निकी ज्वाला क्या मुझको भस्म नहीं करैगी ? ॥ २ ॥

(रामशिरःकमलमधिकृत्य)

हा राम हा रमण हा जगदेकवीर तत्किं न स्मरसि ।

(श्रीरामचन्द्रजीके शिरःकमलकी ओरको देखकर)

हा राम ! हा नाथ ! हा संसार भरमें एकमात्र वीर ! क्यों आपको वह स्मरण नहीं रहा ? ॥

अधरमधु मदीयं कामकेलीषु पीत्वा-
ऽमृतमिति यदवादीस्तीरवानीरकुञ्जे ।

किममृतपरिपूर्णं शीर्णमप्यम्बरेऽर्क-
स्तम इव नहि शत्रुं नाथ मथ्नासि घोरम्॥३॥

हे नाथ! जो कि कामक्रीडाओंके समय नदीके तटपर वेतके लतागृहोंमें मेरे अधर रसको पीकर कहते थे, कि—क्या अमृत है इसके सामने तो यह आकाशमेंका अमृत चन्द्रमाभी नीरस प्रतीत होता है वह आज आप जैसे सूर्य अन्धकारका नाश करता है, तैस इस घोर शत्रुको क्यों नहीं मथडालते? ॥ ३ ॥

रावणः—

शिरोविरहशोकमोहरोषप्रेमाकुलामालापैराश्वासयति।

रावण—शिरश्छेदके कारण शोक मोह क्रोध और रामप्रेमसे व्याकुल हुई सीताको बातें बनाकर आश्वासन देता है॥

जानकी—सत्वरंप्राणांस्त्यक्तुमिच्छन्ती भोः प्राणाधिनाथ राम!

सीता—तत्काल प्राणोंके त्यागनेकी इच्छा करती हुई हे प्राणनाथ हे राम—

अहह मधुरवाणी किं न वक्त्रारविन्दे
नयनकमलयोस्ते नो मदङ्गे विलासः।
अमरपुरवधूनां वल्लभोऽद्यापि नूनं
व्रजतु परमहंसो मे त्वदालिङ्गनेन॥ ४॥

बडे कष्टकी बात है कि—तुम्हारे मुखकमलमें मीठी वाणी क्यों नहीं है और आपके नेत्रकमलोंका मेरे शरीरपर विलास भी नहीं है यदि तुम सत्यही इसी समय स्वर्गलोककी रमणियोंके प्यारे हो गये हो तो जाइये परन्तु मेरा भी यह जीवात्मा आपके आलिंगन द्वाराही अर्थात् आपके साथ ही जाय ॥ ४ ॥

इति रामशिरःकमलमालिंगितु-
मिच्छति, आकाशे कोलाहलः—

ऐसा कहकर रामचन्द्रजीके शिरःकमलको आलिङ्गन करनेकी इच्छा करती है। इतनेमें ही आकाशमें कोलाहलका शब्द होता है-

न खलु न खलु सीते रामभूपालमौलिः
समरशिरसि वध्यो न प्रियस्ते कदाचित् ।
स्पृश कथमपि मातर्मा निशाचारिणस्त्वं
हर हर हरभक्तस्यैष मायावतारः ॥ ९ ॥

हे सीते ! यह सर्वथा ठीकही है कि-यह महाराज रामचन्द्रजीका शिर नहीं है निश्चयही तुम्हारे प्यारे राजमुकुटमणि रामचन्द्र युद्धमें कभी भी किसीसे वध्य नहीं है। हे माता ! तुम इस शिरको किसी प्रकार भी स्पर्श न करना। शिव २ यह तो शिवभक्त राक्षस रावणकी मायाका चमत्कार है ॥ ९ ॥

इत्याकाशवाणीश्रवणमात्रेण शिरसी गगनमुत्पत्य निष्क्रान्ते रावणेन सह ॥

इस प्रकार आकाशवाणीको सुनतेही रावणसहित वह दोनों शिर आकाशमें उडकर चलेगये ॥

जानकी-

(सहर्षं सव्रपं च) अयि परमधर्मिणि कृपातरंगिणि सरमे किमित्यद्भुतमिति ।

सीता-(हर्षके साथ लज्जित होकर) अरी परमधार्मिक कृपासागरे सखि सरमे ! यह क्या आश्चर्य है ॥

सरमा राक्षसी-(सदयम्)

जानकि त्वं न जानीषे रावणस्यातिदारुणाम् ।
मायामासाद्य मा भैषी रामः कामं स जीवति॥६॥

सरमा राक्षसी-(दयाभावसे) हे जानकी ! तुम नहीं जानती हो रावणकी परम दुःखदायक मायाको देखकर डरो मत वह रामचन्द्रजी निःसंदेह जिवित हैं ॥ ६ ॥

कोलाहलं काहलमर्दलानां हेषारवं सज्जतुरंगमाणाम् ॥
आकर्णयाकर्णविशालनेत्रे रामागमादार्तनिशाचराणाम् ॥

हे कर्णपर्यन्त विशालनेत्रोंवाली सीते ! रामचन्द्रके आनेसे घबडाये हुए राक्षसोंके काहल नामक रणबाजेके तथा नगाडेके शब्दको तथा सजेहुए घोडोंकी हिनाहिनाहटके शब्दको सुनो ॥ ७ ॥

विरम विरम शोकात्कोपमानोऽथ रामः
सतनयपशुबन्धं रावणं मर्दयित्वा ।
बलभिदुपलनीलः कोमलः कोमलांगि
त्वदधरमधुपानं हूं करिष्यत्यजस्रम् ॥ ८ ॥

अरी ! शोकसे शान्त हो २ क्योंकि, इन्द्रनीलमणिकी समान श्यामशरीर सुकुमार रामचन्द्रजीको अब क्रोध आगया है, इस कारण वह पुत्र आदि कुटुंबियोंसमेत रावणको पशुकी समान बांध और मसलकर हे कोमलाङ्गी ! तुम्हारे अधरोंका पान करेंगे, तुम डरो मत ॥ ८ ॥

जानकी–

कामं जीवति मे नाथ इति सा विरहं जहौ ।
प्राङ्मत्वा सत्यमस्यांतं जीवितास्मीति लज्जिता ९

जानकी–मेरे स्वामी निस्सन्देह जीवित हैं ऐसा विचार कर जानकीने शोकको त्यागदिया, और पहिले उन रामचन्द्रजीके अन्तको सत्य जानकर मैं अभी जीवित हूँ यह सोचकर लज्जाको प्राप्त थी ॥ ९ ॥

रावणः–

ततः पुनरप्यशोकवाटिकां प्रविशति मारनाराच-
भिन्नो रावणः सुरसुन्दरीभिः परिवृतः सीताहृदये
विकारमुत्पादयितुम् ॥ भो जानकि ! पश्य ।

तदनन्तर रावण फिर कामदेवके बाणोंसे बिंधकर वारांगनाओंसे घिरा हुआ अशोकवाटिकामें प्रवेशकरता है और सीताके चित्तमें विकार उत्पन्न करनेको कहता है कि-हे जानकि ! देख ।

अस्मच्चण्डचपेटघातपतितस्वर्दन्तिकुम्भस्थल-
स्थूलोन्मुक्तसरक्तमौक्तिकलतास्तोमार्चितांघ्रिस्तनाः ।
एतास्त्वत्पदपद्मषट्पदवधूप्रायाः पुरन्ध्र्यो ध्रुवं
सीते सम्प्रतिसंगतं तवसतीचारित्र्यवल्लीफलम् ॥ १०॥

हे सीते ! मेरे प्रचण्ड चपेटेकी चोटके लगनेसे गिरते हुए स्वर्गके हाथियोंके गण्डस्थलसे गिरे हुए बहुतसे रक्त सहित मोतियोंकी लडियोंके समूहसे भूषित चरण कमल कुचोंवाली मेरी ये स्त्रियें इस समय जो तुम्हारे चरणकमलोंमें भौंरियोंकी समान सेवा करनेको प्राप्त हुई हैं सो तुमने अपने पातिव्रतरूप लताके विस्तारका फल पा लिया ॥ १० ॥

सीते पश्य शिरांसि यानि शिरसा धत्ते महेशः पुरा
तानि त्वत्पदसंश्रितानि सुभगे कस्मादवज्ञायसे ।
श्रुत्वैवं परदारलम्पटवचः स्मित्वा हतं रावणं
निर्माल्यानिशिरांसितानि तव धिक्सोध्वीवचः पातुवः॥

हे सीते ! देख-जिन शिरोंको मैंने पहिले महादेवके ऊपर चढाया था हे सुभगे ! वही मस्तक तेरे चरणोंके आश्रित हैं, फिर भी तू मेरा अपमान क्यों करती है, इस प्रकार पराई स्त्रीके लम्पट रावणकी बात सुनकर सीताने मुसकुरा कर कहा कि अरे ! यह शिर शंकरपर चढायेहुए निर्माल्य अर्थात् स्पर्श करनेके अयोग्य हैं अरे तुझको धिक्कार है । यह पतिव्रता सीताका वचन तुम्हारी रक्षा करै ॥ ११ ॥

भवित्री रम्भोरु त्रिदशवदनग्लानिरधुना
स ते रामः स्थाता न युधिपुरतो लक्ष्मणसखः।

इयं यास्यत्युच्चैर्विपदमधुना वानरचमू-
र्लंघिष्ठेदं षष्ठाक्षरपरविलोपात्पठ पुनः ॥ १२ ॥

हे रम्भोरु! अभी देवताओंके मुखोंकी मलिनता होनेवालीहै, अर्थात् रामचन्द्रके नष्ट होनेपर देवताओंके मुखभी उतर जांयगे; क्योंकि-जिनके लक्ष्मण भ्राता है वह रामचन्द्रभी युद्धमें मेरे सन्मुख खडे नहीं होसकेंगे यह वानरोंकी सेना अभी बडीभारी आपत्तिमें फँसेगी। यह सुनकर जानकीने कहा कि-हे नीच! इस श्लोकके पहिले तीन चरणोंके छठे अक्षरसे आगे सातवें अक्षर " त्रि " का लोप होनेसे अर्थात् पहिले चरणमेंके सातवें अक्षरका लोप करके फिर पढ " त्रिदशवदनग्लानि " पदके स्थानमें ' दशवदनग्लानि ' ऐसा रहता है जिसका अर्थ हुआ कि-रावणकेही मुख उतर जांयगे, ऐसेही दूसरे चरणमें सातवें अक्षर ' न ' का लोप होनेसे ' स ते रामः स्थाता युधि पुरतः ' का अर्थ होता है कि-युद्धमें रामचन्द्र तेरे सामने खडे होंगे, तथा तीसरे चरणमें सातवें अक्षर ' वि ' का लोप होनेसे 'वानरचमूः उच्चैः पदं यास्यति ' का यह अर्थ होता है कि--वानरोंकी सेना यश स्वरूप उच्चपदको पावेगी ॥ १२ ॥

(सवैदग्ध्यम्)

रे रे लङ्केशलौल्यात्त्रिपुरविजयिनो मा प्रतीषीः प्रसादं
मा मां छित्त्वाल्पबुद्धे न खलु भवसि वै प्राकृतः प्राणरंकः
मारारे मावितारीवरमनलभुवा शापितोसीति यस्य
क्रुद्धं मूर्धानमीशोप्यनुनयति भृशं सोऽयमुच्चैर्दशास्यः॥

रावण-(चतुरतासे) अरे रे लंकापते ! तू त्रिपुरासुर नाशक शिवजीके अनुग्रहकी इच्छा मत कर हे क्षुद्रबुद्धे ! तू हमें काट २ कर कामारि पार्वती पतिके वरोंका भागी नहीं होगा। हे कामनाशक! आप भी इसको वर न दीजिये क्योंकि तुमको अग्निकुमार स्वामि-कार्त्तिकेयने शाप दिया है, हे सीते ! जिसके इस प्रकार क्रोधित हुए मस्तकको शंकर भी समझाते हैं वह मैं दशकंठ रावण हूं ॥ १३ ॥

अर्धं चेतसि जानकी विरमयत्यर्धं च लंकेश्वरः
किं चार्धं विरहानलः कवलयत्यर्धञ्च रोषानलः।
इत्थं दुर्विधवैशसव्यतिकरे दाहे समेप्येतयो-
रेकं वेद्मितुपारदग्धमपरंदग्धंकरीषाग्निना ॥१४॥

और रामचन्द्रजीके मनके आधे भागको तो जानकी घेरे हुए है और आधेको रावणका स्मरण, उसमें जानकीके स्मरणके घेरे हुए अर्ध भागको वियोगकी अग्नि जलाती है और दूसरे आधे भागको क्रोधकी अग्नि जलाती है ऐसी अद्भुत प्रकारकी हिंसाका जिसमें शीत उष्णकी समान व्यवसाय है ऐसे कामदेव और क्रोधकी अग्निके दाह समान होनेपर चित्तके एक आधे भागको भूसीसे जला हुआ और दूसरे आधे भागको उपलोंकी तेज अग्निसे भस्म हुआ जानता हूँ अर्थात् राम तो दग्ध हृदय होगया अब तू मुझको भज ॥ १४ ॥

मुग्धे मैथिलि चन्द्रसुन्दरमुखि प्राणप्रयाणौषधि
प्राणान् रक्ष मृगाक्षि मन्मथनदि प्राणेश्वरि त्राहि माम्।
रामश्चुम्बति ते मुखं च सुमुखेनैकेन चाहं पुन-
श्चुम्बिष्यामि तवाननं बहुविधैर्मुञ्चाग्रहं मानिनि॥१५॥

अरी अजान ! जनकनन्दिनि ! हे सुन्दर चन्द्रानने ! हे निकलते हुए प्राणोंकी औषधिरूप ! तू मेरे प्राणोंकी रक्षा कर, हे मृगनयनि ! हे मदनकी नादि ! हे जीवितेश्वरि ! तू मेरी रक्षा कर, हे मानिनि ! रामचन्द्र तो तेरे मुखको अपने एकही मुखसे चूमते हैं और मैं तेरे मुखको अपने बहुतसे मुखोंसे चुम्बन करूंगा, इस कारण तू अपने हठको त्याग दे ॥ १५ ॥

जानकी-

विरम विरम रक्षः किं वृथा जल्पितेन
स्पृशति नहि मदीयं कण्ठसीमानमन्यः।

रघुपतिभुजदण्डादुत्पलश्यामकान्ते-
र्दशमुख भवदीयो निष्कृपो वा कृपाणः॥ १६

जानकी—रे राक्षस ! थम, थम, वृथा बकवादसे क्या लाभ है ? अरे ! मेरे कण्ठकी सीमाको नीलकमलकी समान कान्तिवाले रामचन्द्रजीके भुजदण्ड और तेरी कठोर तलवारके सिवाय और दूसरा कोई छू भी नहीं सकता ॥ १६ ॥

पश्य—

मद्ध्यानेनाभवद्रामः सीता रक्षस्तु तस्य वै ।
पश्य त्वत्कुलनाशाय मया रामेण भूयते ॥ १७॥

देख—अरे राक्षस ! रामचन्द्रजी तो मेरी चिन्तासे सीता (दुर्बल) ही होगये और यह निश्चय समझ कि—उनके ध्यानसे मैं तेरे कुलका नाश करनेके अर्थ रामचन्द्र होगई हूँ ॥ १७ ॥

इति रावणो निष्क्रान्तः ।

निजमन्दिरे कियन्तंसमयंनीत्वा(स्वगतं)महान्तं प्रपंच-
मुत्पाद्य नूनं जानकीमनुभविष्यामीत्यवधार्य—

यह सुनकर रावण चलागया, और अपने मन्दिरमें कुछ थोडेसे समयको बिताकर मनमेंही विचारने लगा कि—इस समय एक बडे भारी प्रपंचकी रचना करके मैं निस्सन्देह जानकीको भोगूंगा ऐसा विचार करके—

भेरीनिःसाणशंखध्वनिगणतुरगस्यन्दनस्फीतनादैः
सानन्दं राक्षसेन्द्रः कटकभटभुजास्फालकोलाहलेन ।
लंकामापूर्य रामः स्वयमभवदथो मायया रावणस्य
च्छिन्नान्मूर्ध्नोदधानः शिरसिरुहभरेष्वेकतःपञ्चपञ्च १८

इसके उपरान्त भेरी, निसाण, और शंखोंकी ध्वनि तथा घोडे रथोंके गंभीर शब्दों करके और सेनाकरके योधाओंकी भुजाके ताडनके शब्दसे लंकाको परिपूर्ण करके आनन्दके साथ वह राक्षसराज

अथ निजकेलिमन्दिरस्थो रावणः-(स्वगतम्)

कृतकृत्येपि रामत्वे वर्तमाने मयि स्थिते ।
निरुध्यन्त्येव ताः सर्वाः पापमूलाः प्रवृत्तयः२३

तत्पश्चात् अपने क्रीडा स्थानमें बैठा हुआ रावण आपही आप कर्त्तव्य कार्यको सम्पादन करनेवाले रामवेषमें मेरे स्थित होनेपर भी न जाने पहिले किस पापके कारणसे यह नपुंसक होना आदि प्रवृत्तियें मुझे मनोरथ पूरा करनेसे रोके देती हैं ॥ २३ ॥

जनस्थाने भ्रान्तं विषयमृगतृष्णाहतधिया
वचो वैदेहीति प्रतिपदमुदश्रु प्रलपितम् ।
कृता लंकाभर्तुर्वदनपरिपाटीषु घटना
मयातं रामत्वं कुशलवसुता न त्वधिगता॥२४॥

इति श्रीहनुमन्नाटके रावणप्रपञ्चो नाम दशमोऽङ्कः ॥ १० ॥

सीताकी अभिलाषारूप मृगतृष्णासे हतबुद्धि हुआ मैं दण्डकारण्यमें घूमा आंसुओंके साथ रुदन करते हुए हा जानकि ! यह वचन कहते पद २ पर विलाप किया जिस समय मायासे मैंने रामका रूप धारा उस समय अपने शिरभी काटे इस प्रकार तो मैंने रामपना पालिया परन्तु सीरध्वजकुमारी जानकी तबभी न मिली ॥ २४ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके भाषाटीकायां रावणप्रपंचो नाम दशमोऽङ्कः॥१०॥

एकादशोऽङ्कः ।

अथ तत्र सुवेलाद्रिकटके लंकापतेः सकाशादधिगतं दूतमङ्गदं जानकीवल्लभः पप्रच्छ । अये दूताङ्गद लंकेश्वरे सन्धिर्न जनिता प्रीतिकारिणी स्यादनुपकारिणी वा ॥

---

१ न्यितधिया इति पाठान्तरम् ।

इसके उपरान्त उधर सुवेलाचल पर्वतके ऊपर सेनाके पडावमें रावणके पाससे आये हुए अङ्गद नामक दूतसे सीतापति रामचन्द्रजीने पूँछा कि, हे अङ्गद ! रावणसे सन्धि कीजाय तो अच्छा होगा या बुरा यह तुमने नहीं कहा.

अंगदः-

राजन् सर्वथेयमनुपकारिणी पुलस्त्यापत्ये प्रीतिरिति भगवानिहोदाहरणंहरिणाङ्कशेखरस्तद्गुरुत्वात् ॥

अङ्गद-हे राजन्-पुलस्त्यके वंशमें उत्पन्न हुए रावणसे सन्धि करना सर्वथा अनुपकारीही होगा क्योंकि-इस विषयमें चन्द्रमौलि भगवान् शिवही साक्षी हैं कारण कि उसके वह गुरु हैं ॥

उक्षा रथो भूषणमस्थिमालाभस्माङ्गरागोगजचर्म वासः।
एकालयस्थेऽपिधनाधिनाथेसख्यौदशेयं त्रिपुरान्तकस्य

त्रिपुरासुरनाशक शिवकी, कुबेरके समान मित्रके एकही स्थान कैलासमें स्थित होनेपर भी यह विपरीत दशा है कि-सवारी बैल है, हड्डियोंकी मालाका गहना है भस्मका अङ्गराग है और हाथीके चमडका वस्त्र है, तो उनके शिष्य रावणकी गति विपरीत होनेमें क्या सन्देह है ? ॥ १ ॥

रामः-(विहस्य)

भो महावीराङ्गद युवराजवानरभटान्ब्रूहि। भो भोः सुग्रीवसैनिकाः रात्रौ सावधानतया स्थातव्यं श्वः सूर्योदये रामस्य समरोत्सवो भविष्यति ॥

(रामचन्द्रजी हँसकर हे युवराज महाबली अङ्गद ! तुम वानरभटोंसे कहदो कि-भो भो ! सुग्रीवकी सेनाके वानरो ! आज रातमें बहुतही सावधान रहना, कल प्रातःकाल ही रामचन्द्रके संग्रामका उत्सव होगा ॥

अङ्गदस्तथैव करोति। कटके शयानौ रामलक्ष्मणौ निहन्तुं रावणेन प्रहिता प्रभञ्जनी नाम राक्षसी ॥

अङ्गद वैसाही करते हैं अर्थात् वीरवानरोंको सावधान करते हैं। सेनाके पडावमें सोतेहुए राम लक्ष्मणको मारनेके निमित्त रावणकी भेजीहुई प्रभंजनी नाम राक्षसी ॥

उत्खातदारुणसुतीक्ष्णकृपाणिकासौ
वीराटवीषु निशि निर्भरतः शयानम् ।
दृष्ट्वा सुदर्शनगुरुभ्रमणेन गुप्तं
रामं निहन्मि कथमद्य वरं वराकी ॥ २ ॥

रात्रिके समय उठायेहुए बडे दारुण और तेज खड्गको धारण करनेवाली यह पुंश्चली वीरोंकी पंक्तियोंके मध्यमें गहरी नींदमें सोते और सुदर्शन चक्रसे रक्षित रामचन्द्रजीको देखकर आज इनको मैं किस प्रकारसे वध करूँ? यह सोचने लगी ॥ २ ॥

तत्रावसरे प्रबुद्धमंगदं वीरमवगम्याधीरं पुनर्गन्तुमुद्यता प्रभञ्जनी ॥

उसी अवसरमें वीर अङ्गदको जागाहुआ जानकर प्रभंजनी अधीर होकर जानेको उद्यत हुई ॥

अङ्गदः-(साटोपम्)

मागास्तिष्ठ निशाचरि क्षणमपि स्थित्वा पुनर्गम्यतां
यत्रास्ते भुजविक्रमाखिलजगद्विद्रावणो रावणः ।
अद्याप्यङ्गदबाहुपाशपतिता मूढे किमाक्रन्दसे सिंह-
स्यान्तिकमागतेव हरिणी कस्त्वां परित्रायते ॥ ३ ॥

(अङ्गद ललकार)-अरी राक्षसी ! खडी रह ! भाग मत ! थोडी देर तक ठहरकर तहाँ जाना कि-जहाँ निजभुजदण्डोंके पराक्रमसे समस्त संसारको रुलानेवाला रावण है। री मूर्ख ! तू अंगदके बाहुरूप पाशोंमें पडी हुई रोती क्यों है ? सिंहके पास पहुँची हुई हिरनीकी समान तू मेरे समीप आगई है, देखूँ अब कौन तेरी रक्षा करसक्ता है ? ॥ ३ ॥

कटके वानरभटास्तद्घोरचीत्कारमाकर्ण्य भैरवरवै-
र्दोस्तम्भास्फालकेलिमभिनीय साटोपमुत्पाटितमू-
लोग्रशैलधारिणः प्रचण्डकोलाहलेन लङ्कामाकुल-
यन्तोऽकूपारस्येव यामिन्याः पारं गताः ॥

लश्करमें वीर वानर उसकी घोर चिल्लाहटको सुनकर डरावने शब्दोंसे और भुजदण्डोंपर थाप देनेका खेलसा करके वेगके साथ जडसहित उखाडेहुए बडे २ पहाडोंको धारण किये प्रचण्ड कोलाहलसे लंकाको व्याकुल करतेहुए समुद्रकी समान रात्रिके पारको प्राप्तहुए ॥

लंकायां रावणः सूर्योदयमासाद्य वानरवाहिनीको-
लाहलामर्षमूर्च्छितः समरभूमौ कटकमुत्कटं प्रस्था-
प्य लंकाबलशिखरपर्य्यंकमारुह्य पुरःस्थितेन महो-
दरेण मंत्रिणा सह रामवाहिनीमहिमानं पश्यति स्म।

लंकामें सूर्योदयके समय रावण वानरोंकी सेनाके कोलाहलको सुननेपर क्रोधसे विचेतन हुआ समरभूमिमें अनेकों वीरोंकी उत्कट सेनाको भेजकर स्वयं त्रिकूटाचल पर्वतके शिखररूप शय्यापर चढकर समीप बैठेहुए महोदर नामक मन्त्रीके साथ रामचन्द्रजीकी सेनाके प्रभावको देखनेलगा ॥

तत्र रामकटके वानराः-

खेलन्तोखिलवानरा जलनिधौ दृष्ट्वा रणे राक्षसा-
नुत्पाट्याशु विमानमेव जगृहुः पृथ्वीं समां चक्रिरे ।
दृष्ट्वा तं च विभीषणं रघुपते त्राहीति वाक्यं तदा
श्रुत्वासौ हनुमानुपेत्य तरसा प्रीत्या ददर्श स्वयम्॥४॥

उस समय रामचन्द्रकी सेनामें समुद्रके तटपर खेलतेहुए सब वानरोंने संग्रामभूमिमें राक्षसोंको देखकर और शीघ्रतासे वृक्षोंको उखाडकर पृथ्वीको मैदान करडाला परन्तु बली विभीषणको

देखकर कहनेलगे कि—हे राम ! रक्षा करो ! तब उनके इस वाक्यको सुनकर हनुमान्‌जी तत्काल आये और बडे प्रेमके साथ महावीर हनुमान् स्वयं विभीषणके समीप गये ॥ ४ ॥

लङ्कायां रावणः महोदरं पृच्छति । भो महोदर ! कदागतो रामोऽस्माभिर्न विदितं रामागमनदिनम्॥

लंकामें महोदरसे रावण पूंछने लगा कि—हे महोदर ! राम यहां कब आगये ? इनके आनेके दिनका समाचार हमको मालूम ही नहीं हुआ ॥

महोदरः--(सीतां प्रयच्छतु रामायेति बुद्ध्या साहसमवलम्ब्य)

महोदर—(रामचन्द्रको जानकी देदो ऐसी बुद्धिसे साहसका आश्रय करके)

राजँल्लंकेश्वर—

न्यञ्चद्भूवलयं चलत्क्षितिधरं क्षुभ्यत्समस्तार्णवं त्रस्यद्वैरिवधूविलोचनजलप्रारब्धवर्षोद्गमम् ।
प्रोद्यंचत्कपिवाहिनीपदभरव्याधूतधूलीपटच्छन्नादित्यपथंकथंन विदितं तज्जैत्रयात्रादिनम्॥५॥

हे राजन् ! लंकेश्वर ! भूमण्डलको झुकाता पहाडोंको हिलाता सब समुद्रोंको क्षोभित करता शत्रुओंकी व्याकुलहुई स्त्रियोंके नेत्रोंके जलसे वर्षाके आवागमनका आरम्भ करता और अत्यन्त उछलते हुए वानरोंकी सेनाओंके चरणोंके बोझसे उडीहुई धूलिके समूह करके सूर्यके मार्गका रोकनेवाला श्रीरामचन्द्रजीकी विजययात्राका दिन तुमने कैसे नहीं जाना ? ॥ ५ ॥

जयप्रयाणे रघुनन्दनस्य धूलीकदम्बास्तमिते दिनेशे ।
शशिप्रभं छत्रमुदीक्ष्य बाला सूर्योदयं रोदितिचक्रवाकी

रामचन्द्रजीकी विजययात्राके समय धूलिके पटलसे सूर्यके छुप-जाने पर चन्द्रमाकी सदृश कान्तिवाले छत्रको देखकर सूर्यका उदय होनेपर भी कोई युवती चकवी रोनेलगी ॥ ६ ॥

सहायार्थमिन्द्रप्रदत्तछत्रगजतुरंगावलीसंभवोरामदेवस्य।

रामचन्द्रजीकी सहायताके अर्थ इन्द्रने छत्र हाथी और अनेकों घोडे भेजे।

रावणः--महोदर ! रामः कुत्रास्ते।

रावण–महोदर ! रामचन्द्र कहां है ?।

महोदरः--देव ! पश्य--

महोदर–हे स्वामिन् ! देखो।

अङ्के कृत्वोत्तमांगं प्लवगबलपतेः पादमक्षस्य हन्तु-र्भूमौविस्तारितायांत्वचिकनकमृगस्याङ्गशेषंनिधाय।
बाणं रक्षःकुलघ्नंप्रगुणितमनुजेनार्पितंतीक्ष्णमक्ष्णोः
कोणेनोद्वीक्षमाणस्त्वदनुजवचने दत्तकर्णोऽयमास्ते

वानरराज सुग्रीवकी गोदमें शिर और अक्षकुमारके मारनेवाले हनूमान्‌की गोदमें चरणको रखकर तथा भूमिमें बिछाईहुई सोनेके मृगकी मृगचर्म पर शेष शरीरको स्थापित करके छोटे भाई लक्ष्मणकी दी हुई प्रत्यंचा पर चढे राक्षसकुलनाशक,तीक्ष्ण बाणको नेत्रोंके कोणसे देखतेहुए श्रीरामचन्द्रजी देखो यह आपके भाई विभीषणकी बातोंपर कान लगायेहुए हैं ॥ ७ ॥

अपिच-भ्रूभङ्गाद्धिसिंधूरघुपतिरवताद्वन्दिनावेदितोसौ
विष्टस्ते मातुलस्य त्वचि पुनरनुजं मंत्रिणो दत्तकर्णाः।
बाणे दत्तार्धदृष्टिस्तव जयपिशुने लक्ष्मणे सस्मितो यः
सुग्रीवग्रीवबाहुः कृतचरणभरः सोऽङ्गदे रावणोऽयम् ८

और भी-हे रावण ! जिन्होंने अपनी भ्रकुटीके चलाने मात्रसे ही समुद्रको बांधा बन्दीजन जिनसे निवेदन कर रहा है कि-महाराज ! रक्षा करो ! तथा तुम्हारे मामा मारीचके चर्मपर बैठे हुए तुम्हारे छोटे भाई विभीषणके मन्त्रको कान लगाये सुन रहे हैं जिनकी दृष्टि आधी बाणपर है और जो तुम्हारी जयके विनाशी लक्ष्मणकी ओरको मुसकुराते हुए सुग्रीवके गलेमें गलबैयां डाले अङ्गदकी गोदीमें चरणका भार डाले हुए हैं यही शत्रुके रुलानेवाले रामचन्द्र हैं ॥ ८ ॥

गगनं गिलितं भूमिर्गिलिता गिलिता दिशः ।
सरितः प्लवगैः पीताः सीतापतिपदानुगैः ॥ ९ ॥

हे दशमुख ! सीतापति रामचन्द्रजीके सेवक वानरोंने आकाश व्याप्त कर दिया पृथ्वीको अदृश्य कर दिया समस्त दिशाओंको छाकर प्रकाशरहित कर दिया और नदियोंको तो वे मानो पीगये ॥ ९ ॥

देव महोत्पातं पश्य मध्यन्दिनेऽपि ।
क्वचिन्मीनः क्वचिन्मेषः क्वचिल्लम्बितकृत्तिका ।
क्वचिन्मृगशिरः सार्द्रं नभो व्याधगृहायते ॥ १० ॥

हे स्वामिन् ! देखो तो सही मध्याह्न समयमें भी यह महा उत्पात होते हैं। मीनरूप कहीं पूर्वा उत्तरा तथा रेवती नक्षत्र दृष्टिगोचर हो रहे हैं, कहीं मेषरूप अश्विनी भरणी दीख रहे हैं कहीं कृत्तिका लम्बायमान है और कहीं आर्द्रा सहित मृगशिर है इस प्रकार इस समय समस्त आकाश व्याधके घरकी तुल्य प्रतीत हो रहा है ॥ क्योंकि-व्याधके घर भी मीन, मेष, लटकती हुई कृत्तिका कहिये छुरी और रुधिरसे आर्द्र (गीला) मृगका शिर होता है ॥ १० ॥

रावणः-(साभ्यसूयम्)

अहो महोदरामात्य किमर्थं वल्गसे-पश्य-
प्रतापं संसोढुं रविरपि दशास्यस्य न विभु-
र्निमज्जत्युन्मज्जत्यपरजलधौ पूर्वजलधौ ।

हरिः शेते वार्धौ निवसति हिमाद्रौ पुरहरो
विरिञ्चिः किञ्चापि स्वनिजकमलं मुञ्चति न वा ॥

रावण–(डाहके साथ) हे महोदर मन्त्री ! क्यों बड २ करता है, देख रावणका प्रताप सहनेको सूर्य भी समर्थ नहीं है, इसही कारण वह पश्चिमके समुद्रमें डूबता है और पूर्वके समुद्रमें उदित होता है सो मानो पूर्व समुद्रमें उछलता है, मेरे डरसे विष्णु समुद्रमें सोते हैं, त्रिपुरारी महादेवजी कैलासपर रहते हैं और ब्रह्मा भी नहीं मालूम कि, अपने उत्पत्ति स्थान कमलको छोडता है या नहीं ? अर्थात् उस बूढेकी तो मैं खबरही नहीं रखता ॥ ११ ॥

अत्रान्तरे यथा रावणो न वेत्ति तथाशोकवनिकास्थितविमाने जानकीमारोप्य रामं दर्शयति स्म सरमा ॥

इस अवसरमें जिस प्रकार रावण न जानसकै ऐसी युक्तिसे अशोकवाटिकामें रक्खे हुए विमानमें जानकीको बैठालकर सरमा राक्षसीने रामचन्द्रजीको दिखाये ॥

विदेहदुहितुर्दृष्टिर्दशग्रीवारिपौ बभौ ।
सुनीलेव मनोरम्ये तमाले मधुपाङ्गना ॥ १२ ॥

जनकनन्दिनी जानकीकी दृष्टि दशवदननिधनकारी रामचन्द्रजीमें ऐसी शोभाको प्राप्त हुई जैसे कि–मनोहर नीले तमालके वृक्षपर भौंरी शोभा देती है ॥ १२ ॥

तत्र रामकटके वानराणाम्–

हेमप्राकारजघनां रत्नद्युतिदुकूलिनीम् ।
लंकामेके त्रिकूटस्य ददृशुर्वनितामिव ॥ १३ ॥

उधर रामचन्द्रजीके दलमें वानरोंमेंसे किन्हीने सोनेके परकोटेरूप जंघावाली तथा रत्नोंकी कान्तिरूप साडीवाली लंकापुरीको त्रिकूटाचलकी स्त्रीकी सदृश देखा ॥ १३ ॥

लंकायां रावणः । भो महोदर ! सर्वैर्मन्त्रिभिः
प्रबोध्यतामयं वीरः कुम्भकर्णः ॥

लंकामें रावण बोला कि-हे महोदर ! सब मन्त्री मिलकर इस बीर कुम्भकर्णको जगावें ॥

महोदरः--यदाज्ञापयति देव इतिनिष्क्रम्य कुम्भकर्णनिद्रालयं जगाम ।

महोदर-जो आज्ञा महाराजकी, यह कहकर तहाँसे उठकर कुम्भकर्णके शयन करनेके महलमें गया ॥

तत्र कुम्भकर्णप्रिया-

विरम विरम तूर्णं कुम्भकर्णस्य कर्णा-
न्न खलु तव निनादैरेष निद्रां जहाति ।
इति कथयति काचित्प्रेयसी प्रेक्ष्यमाणा
मशकगलकरन्ध्रे हस्तियूथं प्रविष्टम् ॥ १४ ॥

वहां कुम्भकर्णकी स्त्री कहनेलगी कि-हे महोदर ! तू कुम्भकर्णके कानोंके समीपसे शीघ्रही हटजा हटजा, हटजा, यह तेरे शब्दोंसे निद्राको नहीं त्यागेंगे इस प्रकार कुम्भकर्णकी कोई स्त्री कह रही थी कि-इतनेमेंही इसके गलेके छेदमेंसे हाथियोंका झुंड मच्छरोंकी समान घुसगया-परन्तु इसकी नींद तो भी नहीं छूटी ॥ १४ ॥

निद्रां तथापि न जहौ यदि कुम्भकर्णः
श्रीकण्ठलब्धवरकिन्नरकामिनीनाम् ।
गन्धर्वयक्षसुरसिद्धवराङ्गनाना-
माकर्ण्य गीतममृतं परमं विनिद्रः ॥ १५ ॥

जब इतनेपर भी कुम्भकर्णने नींदको नहीं छोडा तब शिवजीके वरदानके प्रभावसे पाईहुई किन्नरोंकी स्त्रियोंके और गन्धर्व यक्ष देवता

सिद्धादिकोंकी रमणियोंके अमृतसमान गानको खूब सुनकर निद्रासे जागा ॥ १५ ॥

स्वकटके मारुतिः-

जृम्भासंभारभीमभ्रुकुटितटनटत्कुम्भकर्णाट्टहास-
व्यासव्याकोशवक्त्रव्यतिकरचकितप्राणिपुण्यप्ररोहः।
लीलालोलन्मृणालीमृदुमिथिलसुतासङ्गभूपालहंसः
पायात्सिन्दूरपूर्वाचलशिखरशिरःशेखरो रामचन्द्रः

अपने सेनादलमें हनुमान्‌जी कहनेलगे कि--जँभाईके लेनेसे अत्यन्त भयानक भ्रुकुटियोंके समीप प्रगट होतेहुए कुम्भकर्णके अट्टहासके विस्तारसे युक्त मध्यभागवाले मुखको देखकर " यह क्या है " इस प्रकार चकित होतेहुए प्राणियोंको पुण्यांकुर अर्थात् अभय देनेवाले तथा लीलासे चंचल कामलिनीकी समान कोमल जनकसुताके संगमें राजहंस वा सिंदूरकी समान लालवर्ण उदयाचल पर्वतके शिखरमें स्थित सूर्यकी तुल्य सूर्यकुलकेतु श्रीरामचन्द्रजी सबकी रक्षा करैं ॥ १६ ॥

लंकायां कुम्भकर्णः-

सुप्तोत्थितः कवलयन् पलशैलजालं
तीव्रासवं परिपिबन्नपि कुम्भकर्णः ।
तृप्तिं जगाम न तथेत्यवदत् सुराया
गंगां पिबामि यमुनां सह सागरेण ॥ १७ ॥

लंकामें कुम्भकर्ण-शयनसे उठने पर मांसके पर्वतोंके समूहोंको निगलता हुआ और तीव्र मद्यको पीताहुआ जब तृप्त न हुआ तब यह बोला कि-यदि मद्यके समुद्र सहित गंगा और यमुना हो तो उसको भी पीजाऊंगा ॥ १७ ॥

स्वकटके रामः-

उपस्थितं वीक्ष्य तमाह रामोलंकाशिरोनिर्मितजानुदघ्नम्
भो मारुते यन्त्रमुदस्तमेतत्किन्नेत्यवादीत्स च कुम्भकर्णः

अपने सेनादलमें रामचन्द्रजी इस प्रकार कहनेलगे कि-हे पवन-कुमार ! लंकाके शिखरोंतक बनीहुई जाँघोंवाली यह क्या कोई कल है ? यह सुनकर हनुमान्जीने कहा कि-नहीं महाराज ! यह तो कुम्भकर्ण है ॥ १८ ॥

कुम्भकर्णः-(रावणसमीपभागमागम्य) भो राजन् !

यद्यपि क्षितिपालानामाज्ञा सर्वत्रगा स्वयम् ।
तथापि शास्त्रदीपेन संचलन्त्यवनीश्वराः ॥ १९ ॥

(रामाय जानकी दीयतामित्यभिप्रायः)

कुम्भकर्ण-(रावणके पास आकर) हे राजन् ! यद्यपि भूपालोंकी आज्ञा स्वयंही सर्वत्र मानीजाती है तथापि राजाओंको उचित है कि-शास्त्र रूपी दीपकके सहारेसे चलै अर्थात् ऐसा कहनेमें कुम्भकर्णका यह अभिप्राय है कि-रामचन्द्रको जानकी देदेनी चाहिये ॥ १९ ॥

रावणः-

इदं भ्रातृवचः श्रुत्वा तथेत्याह दशाननः ।
शास्त्रनिःसंशया वाचः सतां कस्य न वल्लभाः २०

(रावण) भाई कुम्भकर्णके इस वचनको सुनकर दशग्रीव रावण बोला कि-हां हां ऐसाही है । सज्जनोंकी शास्त्रसे निश्चय कीहुई वाणियें किसको प्यारी नहीं लगतीं ? अर्थात् जो तुम्हारी आज्ञा है कि-जानकीको देदो सो तो मुझसे सभी कोई कहते हैं ॥ २० ॥

जानकीं न समर्पयामीत्यभिप्रायाद्रावणः-(सावज्ञम्)

(जानकीको नहीं दूँगा इस आशयसे रावण-अनादरके साथ)

उत्क्षिप्तस्फटिकाचलेन्द्रशिखरश्रेणीनिघृष्टाङ्गदै-
रेभिः पीनतरैःसुरासुरभयप्राप्तप्रतिष्ठैर्भुजैः ।

संग्रामे मम कुम्भकर्ण विजयः किं त्वद्भुजाडम्बरः
प्रत्याशाशिथिलोस्म्यहंव्रज पुनःस्वापायनिद्रालयम्

उठाये हुए कैलास पर्वतके शिखरोंकी पंक्तियोंसे घिसगये हैं बाजूबन्द जिनके तथा देवता और राक्षसोंको भय देनेसे प्रतिष्ठा पानेवाली इन मेरी पुष्ट भुजाओंसे ही संग्राममें विजय होसकता है हे कुम्भकर्ण ! इनके समान तुम्हारी भुजाओंकी शक्तिही क्या है ? अब तुमसे मेरी सब आशायें ढीली पडगईं तुम अपने शयनागारमें जाकर फिर सुखसे सोरहो ॥ २१ ॥

कुम्भकर्णो भीममालम्ब्य—

राजन्मागा विषादं परिहर बलवद्विद्विषः शोकशल्यं
कल्याणान्याश्रयन्तामहमहमिकया नोभवन्तं जहामि।
कःकालःको विधाताकिमरिकुलभयंकोयमःकेचयाम्याः
को रामःके कपीन्द्राश्चलतिमयि रणेरोषिते कुम्भकर्णे ॥

कुम्भकर्ण-(भयानक आकृति बनाकर) हे राजन् ! तुम विषाद न मानो बली शत्रुके शोकशूलको त्याग दो और आनन्दोंमें मग्न रहो पहिले मैं अकेलाही रणभूमिमें जाऊँगा, तुमसे अलग नहीं होऊँगा। जिस समय मैं कुम्भकर्ण क्रोध करके संग्राममें गया उस समय मेरे सामने काल भी क्या है ? और शत्रुसमूहका तो भयही क्या करना। यमभी क्या वस्तु है ? यमके दूत तो है ही क्या ? फिर रामचन्द्र और वानरसेनापतियोंसे तो डरनाही क्या ? ॥ २२ ॥

रावणः (सानन्दं) महाबलपराक्रमै राक्षसभटैः
परिवृतो रणप्राङ्गणेऽवतरतु वत्सः।

रावण (आनन्दित होकर) हे भाई ! अतिबलवान् और पराक्रमी शूर वीर राक्षसोंको साथ लेकर समरभूमिमें जाओ ॥

कुम्भकर्णः। (साक्षेपं) तथा कृत्वा—

अयि कपिकुलमल्लाः किं मुधा यात भीता

नहि जगति भवद्धिर्युद्ध्यते कुम्भकर्णः ।
अपि जलधरपोतो लेढि किं स्वल्पकुल्यामपि
मशककुटुम्बं केसरी किं पिनष्टि ॥ २३ ॥

कुम्भकर्ण-(आक्षेपके साथ) रावणके कहनेके अनुसार राक्षस-वीरोंके साथ संग्राममें प्रवेश करके कहनेलगा कि-वानरकुलोंके वीरो ! तुम वृथाही डरकर क्यों भागते हो संग्राम भूमिमें कुम्भकर्ण तुमसे युद्ध नहीं करैगा क्या कहीं छोटेसे छोटा भी मच्छ छोटीसी नदीको चाहता है ? कदापि नहीं और कहीं शेर भी मच्छरके झुण्डोंको मसलता है ? कभी नहीं ॥ २३ ॥

अपिच-नाहं वालीसुबाहुर्नखरत्रिशिरसौ दूषणस्ताटकाहं
नाहं सेतुः समुद्र न च धनुरपि यत्र्यम्बकस्य त्वयात्तम् ।
रे रे राम प्रतापानलकवलमहाकालमूर्तिः किलाहं
वीराणांमौलिशल्यःसमरभुवि चरःसंस्थितःकुम्भकर्णः॥

और भी-अरे ओ राम ! मैं वाली नहीं हूँ, न मैं सुबाहु हूँ तथा खर त्रिशिराभी मैं नहीं हूँ, दूषण और ताडकाभी मैं नहीं हूँ, सागर-का पुल भी नहीं हूँ जिसको तुमने तोड डाला है वह शिवका धनुष भी मैं नहीं हूँ । किन्तु तेरी प्रतापरूपी अग्निके भक्षण करनेको महा-कालरूप मूर्तिवाला वीरपुरुषोंके माथेको काटनेके निमित्त त्रिशूलरूप कुम्भकर्ण समरभूमिमें आकर उपस्थित हुआ हूँ ॥ २४ ॥

(ततो गगनमुत्पत्य)

सुग्रीवं बाहुमूले प्लवगबलपतिं कण्ठदेशे भुजेन
क्षिप्त्वा निष्पीड्य गाढं रजनिचरपुरीं संदधानो जगाम ।
सानन्दं कुम्भकर्णस्तदनु कपिभटस्तस्य तूर्णं सकर्णं
घ्राणंजग्ध्वा जगामस्वशिबिरमुदरं कूर्परेणाभिहत्य॥२५

१ मभ्नैर्याणां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा सा प्रसिद्धा, इति लक्षणानु-रोधेन खरत्रिशिरसेति पदे छन्दोभंगः, कस्य प्रमादेन निपतित इति न ज्ञायते ।

(इसके अनन्तर आकाशको उछलकर) वानरपति सुग्रीवको बगलमें पचिकर और फिर मूर्च्छित समझ भुजासे कण्ठमें डालकर कुम्भकर्ण सीधे बांधे हुए आनन्दके साथ राक्षसपुरी लंकाको चल दिया तदनन्तर वानरवीर सुग्रीव उसके कान और नाकको काटकर तथा उसके पेटपर कोनीसे प्रहार करके तत्काल अपनी सेनाके लश्करमें चला गया ॥ २५ ॥

निःश्वस्योत्सृज्यबाष्पंनयनकमलयोश्चात्मनोवारि दत्त्वा
कृत्वा लंकोपगूढं सकरुणमपुनर्भावि नीत्वा त्रिशूलम् ।
क्रोधान्धः कालमूर्तिःप्रलयहुतवहाङ्गारनेत्रो विकर्ण-
श्छिन्नघ्राणोऽवतीर्णःपुनरपि समरप्राङ्गणे कुम्भकर्णः२६

कुम्भकर्ण श्वास लेकर और अपने नेत्रकमलोंसे आसुओंका वर्षाकर मानो आपही अपना जलदान करके तथा करुणाके साथ फिर दूसरीवार न होनेवाले लंकाके अलिङ्गनको करके त्रिशूल ले क्रोधसे अन्धाहुआ कालकीसी मूर्ति धारे प्रलयकी अग्निके अंगारोंकी समान लाल २ नेत्रोंवाला नाककटा और कानोंसे बूचा कुम्भकर्ण फिर भी समरभूमिमें आपहुँचा ॥ २६ ॥

तं दृष्ट्वा जीविताशं गिरिवरकुहरं त्रस्तचित्ताः कपीन्द्राः
केचित्पादान्तवातप्रचलितपवनान्दोलिताः खे चरन्ति ।
केचिद्दोर्दण्डचण्डभ्रमणंनिपतिताः शोणितान्युद्विरन्ति
प्राणान् केचित् प्रवीराः कथमपि दधति स्फीतफूत्कारभिन्नाः ॥ २७ ॥

जीवित प्राणियोंका भक्षण करनेवाले, विकटरूप उस कुम्भकर्णको देखकर चित्तमें डरे हुए वानर पहाडोंकी गुफाओंमें घुसगये कितनेही उसके चरणोंकी अंगुलियोंसे चले हुए वेगवान् वायुसे उडकर आकाशमें चले गये और कितनेही वानर प्रचण्ड भुजदण्डोंको घुमानेसे पृथ्वीमें गिरकर मुखसे लोहू उगलनेलगे तथा कितनेही वानर

लम्बी २ फुंकारोंसे विदीर्ण होकर बडी कठिनाईसे प्राण धारण करनेको समर्थ हुए ॥ २७ ॥

उत्क्षिप्य शूलमजयं त्रिपुरान्तकस्य
संहारकेतुमिव कोटितडित्प्रभाभिः ।
घोरं ज्वलन्तमुरसि क्षिपति स्म रक्ष-
स्तारापतेस्तदिषुणा रघुणा निरस्तम् ॥ २८ ॥

राक्षस कुम्भकर्णने अजेय और करोडों बिजलियोंकी प्रभाओंसे बडे देदीप्यमान और शिवजीके प्रलयके त्रिशूलकी समान एक त्रिशूल उठाकर सुग्रीवके वक्षःस्थलपर छोडा उसी समय रामचन्द्रजीने उस त्रिशूलको अपने बाणसे काटडाला ॥ २८ ॥

क्रोधाग्नेर्जाठराग्नेः कपिशिबिरगतो मुद्गरं व्याददानो
वक्त्रे निक्षिप्य कोटिं कवलयति भटानुत्कटान्कुंभकर्णः ।
कांश्चित्पद्भ्यां पिनष्टि श्वसनसहचरा वानराः कर्णरंध्रा-
न्निर्गच्छन्त्येक एतान्पुनरपि दशनैश्चर्वितानत्ति घोरम् ॥

क्रोधाग्निके कारण भूंखकी ज्वाला प्रबल होनेपर वह कुम्भकर्ण मुद्गरको ताने हुए वानरोंके कटकमें गया और करोडों उत्कट योद्धाओंको मुखमें डालकर चबाने लगा और किन्हीं वानरोंको पैरोंसे कुचलनेलगा उस समय कितनेही वानर सांसके साथ कानोंके छिद्रोंसे होकर बाहरको निकलनेलगे, तब इन निकलते हुओंको फिरभी पकड २ कर बडी भयानकताके साथ दांतोंसे चाब चाबकर खानेलगा ॥ २९ ॥

सव्येन सान्द्रशिबिरं स्वकरेण धुन्वन्
व्यात्ताननस्य कटकं तत उत्तरेण ।
सुग्रीवमेव कपिवीरवरेषु सत्सु
जग्राह कोपकलितो युधि कुम्भकर्णः ॥ ३० ॥

तदनन्तर उस कुम्भकर्णने अपने बायें हाथसे सघन सेनाको तितर वितर करतेहुए दायें हाथसे क्रोधमें भरकर रणभूमिमें बड़े २ वीर वानरोंके विद्यमान होते हुए भी सुग्रीवकोही पकडा क्योंकि सुग्रीवने नाक कान काटे थे ॥ ३० ॥

तातं विलोक्य विषमस्थमथांगदस्तं
गारुत्मतेन भुवि पातयति स्म शत्रुम् ।
मुक्तोऽपि निःश्वसति यावदसौ कपीन्द्र-
स्तावद्बबन्ध नरसिंहपदाङ्कदं सः ॥ ३१ ॥

अङ्गदने अपने चाचा सुग्रीवको बडे संकटमें पडा हुआ देखकर गरुड पाश चलाया जिससे कि, शत्रु कुम्भकर्णको पृथ्वीपर गिरादिया, उस समय ज्योंहीं छूटे हुए सुग्रीवको जरा चेतना हुई इतनेमेंही वह कुम्भकर्ण फिर बैठगया और उसने नृसिंहपाशसे अङ्गदकोभी बांधलिया ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वा नीलस्तदुभयमपि ग्रस्तमाक्रम्य रक्ष-
स्कंधे मौलौ श्रवणकुहरे घ्राणवक्त्रोदरेषु ।
तीव्रज्वालो दहति कुपितः स्वेन रूपेण वीरः
क्रव्यादोऽभूत्तदनु विकलःप्रोत्थितौ वानरेन्द्रौ ३२

उन सुग्रीव और अङ्गद दोनोंको बँधाहुआ देखकर नीलको क्रोध आगया उसने कुम्भकर्णके ऊपर आक्रमण किया और वह अपने अग्निरूपकी तीखी लपटोंसे राक्षस कुम्भकर्णके कन्धे शिर कानोंके छिद्र, और नासिकाके छिद्र मुख तथा पेटको भस्म करनेलगा, तब राक्षस कुम्भकर्ण बडा व्याकुल हुआ और वानरराज सुग्रीव तथा अंगद उठकर खडेहोगये ॥ ३२ ॥

लंकाशिरःस्थो रावणः—

लंकेश्वरस्तमवलोक्य रणे ज्वलन्तं
कादम्बिनीसहचरामृतवारिधाराम् ।

तूर्णं मुमोच तदुपर्युपलब्धसंज्ञो
भोक्तुं कृतान्त इव नीलनलौ स दध्यौ ॥ ३३ ॥

रावण-(लंकाके शिरपर बैठाहुआ) रणभूमिमें उस कुम्भकर्णको जलते हुए देखकर लंकेश्वरने तत्काल मेघमालाओं सहित अमृतरूपी जलकी धाराओंको उसके ऊपर छोडा तब तो चेतनताको प्राप्त हुआ वह कुंभकर्ण साक्षात् कालकी समान नील और नलको खानेके लिये विचार करनेलगा ॥ ३३ ॥

जाम्बवान्-

दम्भोलिं कुम्भकर्णं गिरिमिव तरसा पातयञ्जानुबन्धं
कण्ठं गाढं विरच्य स्वभुजगुरुमदं जाम्बवानुग्रवेषः ।
निर्मुक्तौ तावभूतामभवदथ मरुत्पुष्पवृष्टिस्तदंगे
गुल्फाघातेन रोषाद्व्रजनिचरवरस्तन्निरस्योपतस्थौ ३४॥

जाम्बवान्-(अति कोपके कारण उग्रवेषधारी जाम्बवान्) ने बडी शीघ्रताके साथ अपनी जंघाओंके प्रहारसे उस पर्वत और वज्र-समान कुम्भकर्णको गिरा दिया तथा जिसको अपनी भुजाओंका बडाभारी मद है ऐसे उस जाम्बवान्ने जोरसे गरदन पकडली, वह नील और नल दोनों छूटगये जाम्बवान्के ऊपर उस समय देवता-ओंने पुष्प वर्षाये इतनेमें ही कुंभकर्णने क्रोधमें भरकर एक लात मार कर जाम्बवान्को ढकेल दिया और उठकर खडा होगया ॥ ३४ ॥

आलक्षितो रघुवरेण सलक्ष्मणेन
कालान्तकादिव रिपोः परिशङ्कितेन ।
स्थानं जगाम हनुमान्समरेऽवतीर्य
माहेश उग्रनरसिंह इवारुणाक्षः ॥ ३५ ॥

प्रलयकर्त्ता यमराजकी समान वानर सेनाको उजाडते हुए शत्रुसे शंकितसे हुए लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजीने रुद्रावतार हनुमान्-

जीकी ओरको देखा वह महावीर उसी समय उग्र नृसिंहकी समान लाल २ नेत्र किये रणभूमिमें आये ॥ ३५ ॥

मैनाको मेरुशृङ्गस्थित इव हनुमत्पाणिपद्मे नगेन्द्रः
कल्पान्ते मन्दराग्रेऽजन इव समरे मुद्गरः कुम्भकर्णे ।
अद्रिं क्रव्यादवीरः प्रहितमनिलजेनाच्छिनन्मुद्गरेण
लांगूलेनाञ्जनेयोद्धुतजनितरुषा मुद्गरंद्राक् चकर्ष।३६।

उस समय हनुमान्‌जीके कर कमलमें स्थित पर्वत मेरु पर्वतपर स्थित मैनाककी समान शोभाको प्राप्त हुआ और बडे २ समर्थ वीरोंकी समाप्ति जिसमें हो ऐसे तिस समरमें कुम्भकर्णके हाथमेंका मुद्गर मंदराचलपर भगवान्‌की मूर्तिकी समान शोभाको प्राप्त हुआ, उस समय अंजनीकुमारके फेंके हुए पर्वतको राक्षसवीर कुम्भकर्णने अपने मुद्गरसे टुकडे २ कर डाला, तब तो हनुमान्‌जीने बडे क्रोधमें भर उसी समय अपनी पूँछसे मुद्गरको खींच लिया ॥ ३६ ॥

रामः ।

अत्रान्तरे रघुपतिः शरयुग्ममैन्द्रं
द्राक्कुम्भकर्णनिधनाय रणे मुमोच ।
भित्त्वा बिभेद हृदयं धरणीमथैको
मूर्धानमुद्धतमखण्डयदस्य चान्यः ॥ ३७ ॥

इतनेमें ही रघुनाथजीने शीघ्रतासे इन्द्रके दिये हुए दो बाण रणमें कुम्भकर्णके मारनेके लिये छोडे उनमेंसे एक बाण कुम्भकर्णके मारनेके लिये छोड उनमेंसे एक बाण कुम्भकर्णके हृदयको फोडकर भूमिमें घुसगया और दूसरे बाणने इस कुम्भकर्णके उद्धत मूर्धाको फोड कर खोपडीके टुकडे २ कर दिये ॥ ३७ ॥

हनुमान् ।

उद्यन्मरुत्तनयचण्डचपेटघाता-
न्मूर्धा पपात तुहिने रजनीचरस्य ।

भग्नो भविष्यति यदम्भसि भीमसेनो
बभ्राम पुच्छनिकृतो गगने कबन्धः ॥ ३८ ॥

उद्यतहुए पवनकुमारके प्रचण्ड चपेटेकी चोटसे कुम्भकर्णका शिर हिमालयमें जाकर पडा, जिसके जलमें भीमसेन गोता खायगा और पूँछसे कटा हुवा धड आकाशमें जाकर घूमने लगा ॥ ३८ ॥

लक्ष्मणः-

देवाः सर्वे विमानान्यपनयत रवेः स्यन्दनो यातु दूरं
रे रे शाखामृगेन्द्राः परिहरत रणप्राङ्गणं राक्षसाश्च ।
वज्रत्रस्ताञ्जनाद्रिप्रतिनिधिरवधिः सर्वविस्मापकानां
लंकातङ्कैकहेतुर्निपततिनभसःकौम्भकर्णःकबन्धः॥३९

लक्ष्मण-अरे सकल देवताओ! विमानोंको हटाओ.सूर्यका रथ दूर हटजाय, अरे अरे वानरो ! और राक्षसो ! रणभूमिको छोडकर हटजाओ, वज्रसे घबडाये हुए अंजनाद्रिकी समान सकल आश्चर्योंकी सीमा, लंकाके अशकुनका अद्वितीय कारण कुंभकर्णका धड आकाशसे गिरता है ॥ ३९ ॥

(मृतः कुम्भकर्णः)

उत्क्रान्तोऽपि स्वदेहात्प्रवरसुरवधूदोर्भिराकृष्यमाणः
प्राणत्राणाय भर्तुः पुनरपि समरापेक्षया नारुरोह ।
सगीतैर्नारदाद्यैर्मृदुमुरजरवैः स्तूयमानो विमानं
वीरः संग्रामधीरः शिवशिव स कथंवर्ण्यते कुम्भकर्णः४०

अपने शरीरसे प्राणोंके अलग होनेपर जब कुंभकर्णको विमान-पर बैठालनेके लिये सुन्दर देवांगना अपने भुजाओंसे खीचने लगीं सुन्दर गान करनेवाले नारदादि कोमल मुरज आदि बाजोंसे स्तुति करने लगे, तब भी अपने स्वामी रावणके प्राणोंकी रक्षाके लिये

विमानपर चढनेकी इच्छा न की, हे शिव ! हे शिव ! ऐसे संग्राम-धीरवीर कुंभर्णका वर्णन कौन कर सकता है ? ॥ ४० ॥

लङ्काशिखरस्थो रावणः—(सविस्मयम्)

मरुच्चन्द्रादित्याः शतमखमुखास्ते क्रतुभुजः
पुरद्वारे यस्याः सभयमुपसर्पन्त्यनुदिनम् ।
प्रकोपव्याकम्पाधरतटपुटैर्वानरभटैः
समाक्रान्ता सेयं शिव शिव दशग्रीवनगरी ॥ ४१ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके कुम्भकर्णवधो नामैकादशोऽङ्कः ॥११॥

लंकाके शिखर पर बैठाहुवा रावण—(विस्मयके साथ)

पवन, चन्द्रमा, आदित्य, और इन्द्र आदि देवता जिस नगरीके द्वारपर प्रतिदिन भयभीत हुए टहला करते हैं हे शिव ! हे शिव ! वही मुझ दशग्रीवकी यह लंका नगरी क्रोधसे कंपायमान ओठ और नथौडवाले वानर वीरोंने घेरली ॥ ४१ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटकेभाषाटीकायां कुंभकर्णवधो नामैकादशोऽङ्कः॥११॥

द्वादशोऽङ्कः ।

रावणः सक्रोधं—तूर्णं पूर्णकटकं पुत्रमिन्द्रजितं दुष्कर-समरयज्ञे अध्वर्युं वृणोति स्म इन्द्रजित्सत्वरं कुम्भक-र्णवधामर्षमूर्च्छितः सीतापतिवधे बद्धलक्ष्यः समरच-त्वरेऽवतीर्णः। इतो लक्ष्मणो धनुर्गुणटणत्कारैर्धरणिग-गनान्तरमापूरयन्कोपानलज्वालावलीभिः सलङ्काधि-पां लङ्कां कवलयन्घोरसमरनासीरेऽवतरति स्म ।

(रावणने क्रोधमें भरकर) उसी समय बडी भारी फौजके साथ पुत्र मेघनादको घोर संग्रामरूपी यज्ञमें यज्ञकर्त्ता बनाकर भेजा, मेघनाद शीघ्र कुम्भकर्णके वधके कारण क्रोध करके आपेसे बाहर हुआ

सीतापति रामका बध करनेके लिये निशाना ताकता हुआ रणभूमिमें आया-इधर लक्ष्मणजी धनुषके रोदेकी टंकारोंसे पृथ्वी और आकाशके मध्यभागको भरतेहुए और क्रोधाग्निकी अनेको लपटों करके रावणसहित लंकाको निगलते हुएसे सेनाके आगे आये ॥

रावणिः-(लक्ष्मणमवलोक्य)

नाहं सौमित्रिकोपस्य जानेऽल्पमपि कारणम् ।
नूनं चंचलबुद्धीनां स्नेहकोपावकारणौ ॥ १ ॥

मेघनाद-(लक्ष्मणका देखकर) मुझे जो लक्ष्मणके ऊपर क्रोध आरहा है, उसका मुझे कोई जरासा भी कारण नहीं मालूम कि-मैं किस कारणसे इसका बध करूँ और यह जो लक्ष्मण मेरे ऊपर कुपित होरहा है सो निःसंदेह ऐसे चंचलबुद्धिवालोंके विना ही कारण स्नेह और कोप होजाते हैं ॥ १ ॥

अपि च-

क्षुद्राः संत्रासमेते विजहत हरयो भिन्नशक्रेभकुम्भा
युष्मद्देहेषु लज्जां दधति परममी सायका निष्पतन्तः।
सौमित्रे तिष्ठ पात्रं त्वमसि नहि रुषां नन्वहं मेघनादः
किंचिद्भ्रूभंगलीलानियमितजलधिं राममन्वेषयामि ॥२

(और भी) यह छोटे २ वानर भयको छोडदें, क्योंकि-इन्द्रके ऐरावत हाथीके गण्डस्थलोंसे फोडनेवाले मेरे बाण तुम्हारे शरीरोंपर गिरते परम लज्जितसे होते हैं, हे लक्ष्मण ! तुम भी आराम करो, क्यों कि तुम मेरे क्रोधके पात्र नहीं हो मैं मेघनाद हूँ और कुछेक भौं चलानेकी लीलासे ही समुद्रका पुल बाँधनेवाले रामको ही खोजता हूं ॥२॥

सुग्रीवमारुतिनलांगदनीलमुख्या
बाष्पान्धकारजलदान्तरितं प्रचण्डम् ।
तं रावणिं जलदमण्डलमास्थितं नो
पश्यन्ति तान्प्रहरति स्म स घोरबाणैः ॥ ३ ॥

सुग्रीव, पवनकुमार, नल, अङ्गद और नील आदि वानरोंने कुहर और अन्धकारयुक्त मेघमण्डलसे छिपेहुए उस प्रचण्ड रावणकुमार मेघनादको नहीं देखपाया, और यह मेघमण्डलकी ओटमें स्थित हुआ घोर बाणोंसे इन सबके ऊपर प्रहार करनेलगा ॥ ३ ॥

मायारथं समधिरुह्य नभःस्थलस्थो
गम्भीरकालजलदध्वनिरुज्जगर्ज ।
बाणैरपातयदहो फणिपाशबद्धै-
स्तौ मेरुमन्दरगिरी पविनेव शक्रः ॥ ४ ॥

आकाशमें स्थित वह मेघनाद मायाके रचे हुए रथ पर चढकर प्रलयकालके मेघकी गर्जनाकी समान बडी गम्भीरताके साथ गर्जा और आश्चर्यकी बात है कि जैसे इन्द्रने अपने वज्रसे मेरु और मन्दराचलको गिरादिया था तैसे ही मेघनादने नागपाशरूप बाणोंसे उन राम और लक्ष्मण दोनोंको बांधदिया ॥ ४ ॥

अत्रान्तरे पूर्ववैरमनुस्मरन्ती चक्रवाकी सरोवरस्था-
शशाप यो मे दयितं स रामः
सलक्ष्मणो रावणिबाणजालैः ।
रणे हतोऽयं मदमुद्वहन्ती
चन्द्रोदये नृत्यति चक्रवाकी ॥ ५ ॥

इसी अवसरमें सरोवरमें स्थित चकवी पहिले वैरको स्मरण करती हुई कहने लगी—जिसने मेरे पतिको शाप दिया था वह राम लक्ष्मण सहित मेघनादके बाणोंके समूहों करके रणमें मारागया ऐसा कहके आनन्दित होकर चकवी चन्द्रोदयमें नृत्य करती है ॥ ५ ॥

सरमा—

श्रुत्वा हतिं दशरथात्मजयोर्विमान-

---

१ यह मूलका श्लोक नहीं है समस्यापूर्ति है ।

मारुह्य पुष्पकमवाप्य दशाननस्य ।
आज्ञां निनाय सरमा जनकस्य पुत्रीं
सीताविदीर्णहृदयासि दिवं गतासि ॥ ६ ॥

दशरथकुमारोंके बन्धनको सुनकर और दशाननकी आज्ञा पाकर सीताके कारण जिसका हृदय विदीर्ण होरहा है ऐसी सरमा जनककुमारीको पुष्पकविमानमें बैठाकर संग्रामभूमिमें लेगई ॥ ६ ॥

जानकी-

किं भार्गवच्यवनगौतमकाश्यपानां
वाणी वसिष्ठमुनिलोमशकौशिकानाम् ।
जाताऽनृताप्यहह आलपिता त्वया मे
स्यान्मग्नचूचुककुचा सधवेति राम ॥ ७ ॥

जानकी-क्या भार्गव, च्यवन, गौतम, काश्यप, वशिष्ठ, मुनि लोमश, और विश्वामित्रजीकी कही वह वाणी झूँठी होगई हा ! हा ! राम उन्होंने मुझसे कहा था कि-हे जानकी ! तेरा कुचाग्रभाग मग्न होरहा है, इस कारण तू सौभाग्यवती होगी, और रामचन्द्रसे तेरा कभी वियोग नहीं होगा ॥ ७ ॥

हा राघव प्रियतम स्फुरतीह वामो
बाहुस्तथा नयनमप्यनृतं किमेतत् ।
नाद्यापि यन्मधुरनिर्मलदृष्टिपातैः
संभावयस्यपि विलासगिरा भुजाभ्याम् ॥ ८ ॥

हा राघव ! हा परम प्रिय ! मेरी बांई भुजा और नेत्र फडकते हैं, क्या यह सब झूँठाही है, जो कि तुम अभीतक मुझको मधुर निर्मल दृष्टिपात विलासकी वाणी और भुजाओंसे सुख नहीं देते हो ॥ ८ ॥

उक्तं च यतः-

संमानितापि न तथा मुदमभ्युपैति

मात्रानुजेन जनकेन तथाग्रजेन ।
आश्वासितापि रमणी रमणेन तूर्णं
प्रेम्णा यथा मधुरनिर्मलदृष्टिपातैः ॥ ९ ॥

(कहाभी है कि–) स्त्री अपनी माता, छोटे भाई, पिता और बडे भाई करके खूब आदर की हुई भी तैसा आनन्द नहीं पाती कि– जैसा पतिके द्वारा प्रेमपूर्वक समझाईहुई और मधुर निर्मल दृष्टिपातोंसे प्रसन्न कीहुई आनन्द पाती है ॥ ९ ॥

प्राणेश्वरः प्रतिगिरं न ददाति रामो
हा वत्स लक्ष्मण ममापनयेन रुष्टः ।
मद्वत्सलस्त्वमपि नोत्तरमाददासि
भ्रान्त्वा भुवं मम कृतेऽथ दिवं गतौ वा ॥ १० ॥

हे प्राणेश्वर ! राम ! उत्तर नहीं देते, हा ! वत्स लक्ष्मण ? क्या तुम मेरे अलग होनेसे रुष्ट होगये ? तुम तो मुझसे बडा प्रेम करते थे, तुम भी मुझे उत्तर क्यों नहीं देते, क्या इस सकल भूमण्डलमें घूरकर अब मेरे ही लिये स्वर्गमें ढूँढने लगे हो ? ॥ १० ॥

स्वर्गादिमौ झटिति माऽनवलोकयन्तौ
न ब्रह्मलोकमधिगच्छत एव तावत् ।
प्राणा दिवं व्रजत साधुगिरा मुमोच
श्वासानिलं जनकजा सह सङ्गरेण ॥ ११ ॥

रे प्राणो ! यह दोनों मुझे न पाकर तत्काल स्वर्गसे ब्रह्मलोकको न पहुँचजाय, इतनेमेंही तुम भी स्वर्गमें पहुँच जाओ, इस प्रकार जानकीने प्यारी वाणी कहकर समरभूमिके साथ अपनी श्वास-वायुको छोडा ॥ ११ ॥

समरादपहृतं विमानं सरमया रावणभयादित्यभिप्रायः।

अर्थात् सरमाने रावणके भयसे समरभूमिमेंसे विमानको हटालिया ॥

अत्र वैकुण्ठाद्गरुडः-

हाहाकारं निशम्य त्रिभुवनविदितं रावणेः कर्म घोरं
क्रोधाग्नेर्धूमघाटीदलितरिपुकुलं त्रासयन्राक्षसेन्द्रम् ।
पक्षाघातप्रचण्डप्रचलितपवनध्वस्तशैलेन्द्रपातैः
संप्राप्तो वैनतेयः स्रवदमृतरसो जीवयामास रामम् १२

इसी अवसरमें वैकुण्ठसे गरुडजी-त्रिलोकीमें प्रसिद्ध मेघनादके घोर कर्म और हाहाकारका सुनकर क्रोधाग्निके परम धुएँसे नष्ट हुआ है शत्रुकुल जिनका ऐसे, तथा राक्षसराज रावणको भयभीत करतेहुए एवं परोंके चलानेसे चलतेहुए प्रचण्डपवनसे पर्वतोंको तोडते और गिरातेहुए गरुडजी आय पहुँचे और अमृतरस चुआकर श्रीरामचन्द्रजीको सचेत करदिया ॥ १२ ॥

रावणिः-

(सभयं रणसंकटमुपलभ्य सप्रपञ्चम्-)
पापो विरच्य समरे जनकस्य पुत्रीं
हा राम राम रमणेति गिरं गिरन्तीम् ।
खड्गेन पश्यत वदन्निति रे प्रवीरा
मायामयीं शिवशिवेन्द्रजिदाजघान ॥ १३ ॥

मेघनाद-(भयभीत हुआ) संग्रामके संकटको प्राप्त होकर (माया फैलाता हुआ) हा ! राम ! हा रमण ! ऐसी वाणीको उच्चारण करती हुई जानकीको रणभूमिमें मायासे रचकर अरे वीरो ! देखो इस प्रकार कहते हुए उस पापी मेघनादने शिव ! शिव ! तलवारसे उस मायाकी रची हुई सीताका वध किया ॥ १३ ॥

द्विधाकृतां तां पुनरादधानोमायारथस्थोऽम्बरवर्त्मना च।
ब्रह्मोपदेशात्स निकुम्भिलाद्रेर्न्यग्रोधमूलावटमाजगाम॥

फिर दो टुकडे की हुई उस मायाकी रची सीताको लेकर मायाके रथमें बैठा हुआ ब्रह्माके कहनेसे आकाशमार्गके द्वारा निकुम्भिल पर्वतके ऊपर बडके वृक्षकी जडमें बनेहुए कुण्डमें अनुष्ठान करनेको गया ॥ १४ ॥

(समरचत्वरे) रामः-

दृष्ट्वा मायाजनकतनयाखण्डनं रामचन्द्रो
गुर्वीमुर्वीतलमुपगतो दीर्घमासाद्य मूर्च्छाम् ।
तत्पादाग्रे पुनरनुजनिश्चेतनां प्राप्य रामं
कृत्वोत्संगे स्मरसि न गिरं व्याहरन्नित्यरोदीत् ॥ १५

(समर भूमिमें रामचन्द्र) मायासे रची हुई जानकीके टुकडे २ देखकर रामचन्द्रजी बडी भारी मूर्च्छनाको पाकर पृथ्वीमें गिर पडे, तब उनके चरणोंके समीप लक्ष्मणजी धीरता और चेतनाको धारे हुए रामचन्द्रको गोदीमें बैठाकर क्या आप "अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः" इस वेद वाणीको स्मरण नहीं करते हैं ? ऐसा कहते हुए रोने लगे ॥ १५ ॥

लक्ष्मणः-

सिंचत्येनं विकचनलिनीगर्भनिर्मुक्तवारां
धारासारैर्मलयजरसै रामधर्मोऽप्रमाणम् ।
यस्मादेतां त्वमपि पदवीमास्थितो ब्रह्मशापा-
दित्यालापैर्विलपति दृशा लक्ष्मणश्चक्रवाक्याः १६

(लक्ष्मण)-हे भगवन् ! यह मूर्च्छा धर्ममें बाधक नहीं है, आपसे धार्मिककोभी जो ऐसी मूर्च्छा हुई इसका कारण परशुरामजीका शाप है इस प्रकार खिली हुई कमलिनीके बीचसे निकले हुए जलकी समान और मलयाचलके चन्दनके जलकी सदृश शीतल सम्भाषणोंसे रामचन्द्रको सींचकर शीतल करते हुए लक्ष्मणजी चक्रवीकी दृष्टिकी समान विलाप भी करने लगे ॥ १६ ॥

सा यथा-

एकेनाक्ष्णा प्रविततरुषा वीक्षते व्योमसंस्थं
भानोर्बिम्बं सजलगलितेनापरेणात्मकान्तम् ।
अह्नच्छेदे दयितविरहाशंकिनी चक्रवाकी
द्वौ संकीर्णौ विसृजति रसौ रौद्रकारुण्यसंज्ञौ॥१७॥

जिस प्रकारसे चक्रवाकी क्रोधसे परिपूर्ण एक नेत्रसे आकाश-मण्डलमें स्थित सूर्यके मण्डलको देखती है और आँसुओंसे परिपूर्ण दूसरे नेत्रसे अपने पतिको देखती है इस प्रकार सायंकालके समय अपने पतिके वियोगकी शंका करनेवाली चकवी रौद्र और करुणा इन दोनों मिले हुए रसोंको प्रकाशित करती है ॥ १७ ॥

तत्र निकुम्भिलाद्रौ न्यग्रोधमूलेऽवटे रावणिः-(सत्वरम्)

कुण्डे विभीतकसमिद्भिरथार्धचन्द्रे
शक्रेभकुम्भदलनः पलमाजुहाव ।

हनूमान्-

शत्रुंजये रथवरेऽर्धसमुद्गतेऽग्नेः
र्यज्ञं बभञ्ज तरसा हनुमानुपेत्य ॥ १८ ॥

इधर निकुम्भिल पर्वतपर बडके वृक्षकी जडमें कुण्डके समीप मेघनाद(शीघ्रतासे) इसको अनन्तर इन्द्रके हाथीके गण्डस्थलको विदीर्ण करनेवाला मेघनाद अर्धचन्द्राकार कुण्डमें बहेडेकी लकडियोंके साथ अपने शरीरके माँसको हवन करनेलगा, (हनूमान्) इतनेमें ही हनूमान्जीने आकार उस शत्रुजीत रथियोंमें श्रेष्ठ मेघनादके अग्निमें आधाही यज्ञ करनेपर बलात्कारसे यज्ञको विध्वंस करडाला ॥ १८ ॥

लक्ष्मणः-

रणप्राङ्गणे शनैश्चरादाप्यदशरथेनार्पितंसंहारास्त्रमनुस्मृत्यसानन्दंशोकमपहाय रेरे मायारथारूढप्रौढबाहुशालिन्मेघनादमायांविभिद्य त्वां यमलोकं प्रस्थापयामि पश्य ।

(समरभूमिमें लक्ष्मणजी) शनैश्चरसे पाकर दशरथके दिये हुए संहारास्त्रको स्मरण करके आनन्दित हो शोकको त्यागकर कहनेलगे कि—अरे रे नीच ! मायासे रचित रथमें स्थित होकर भुजाओंका घमण्ड दिखानेवाले मेघनाद ! अभी मैं तेरी मायाको काटकर तुझे यमलोकको भेजता हूँ देख ॥

दोःस्तंभास्फालकेलिस्फुटविकटरवध्वस्तघोरान्धकारः
संहारास्त्रं नियोज्य स्वधनुषि धरणीं पाणिनाहत्य वीरः।
क्रोधान्धो रावणस्य ज्वलदनलशिखामुद्विरन्पाणियुग्मे
स्थित्वा चिक्षेपसौमित्रिरथदृढशिरोमेघनादस्य सार्द्रि॥

इति श्रीहनुमन्नाटके मेघनादवधो नाम
द्वादशोऽङ्कः समाप्तः ॥ १२ ॥

भुजदण्डोंके ताडनकी क्रीडासे प्रकट विकट शब्दसे जिन्होंने बडा अन्धकार नष्ट किया है, अतुलबली, क्रोधसे उन्मत्त, लक्ष्मणजीने संहारकारक अस्त्रको अपने धनुषपर चढाकर और भूमिको हाथसे ताडन करके जलतेहुए अग्निकी लपटोंको फैलातेहुए मेघनादके दृढ और मुकुटसहित मस्तकको काटकर रावणके हाथोंमें फेंकदिया॥१९॥

इति श्रीहनुमन्नाटके भाषाटीकायां मेघनादवधो नाम
द्वादशोऽङ्कः समाप्तः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽङ्कः ।

(सक्रोधम्)

लङ्केश्वरः सुतवधारुणवक्त्रचक्र-
स्तत्रैकवीरनिधनां क्षिपति स्म शक्तिम् ।
सौमित्रिवक्षसि रुचार्धपथे ज्वलन्ती
क्षिप्ताम्बुधौ हनुमता तरसा गृहित्वा ॥ १ ॥

(क्रोधके साथ) मेघनादके मरनेसे लाल २ नेत्र और मुखमण्डल-वाले लंकाधिपति रावणने उस समय एक वीरनाशिनी शक्तिको फेंका वह शक्ति निजकान्तिसे लक्ष्मणजीके वक्षःस्थलके वेधनेको चली तब हनुमान्‌जीने बीचेमेंसेही उस प्रज्वलित शक्तिको ग्रहण करके समुद्रमें डालदिया ॥ १ ॥

(रावणः शक्तिग्रहणमवलोक्य सक्रोधं ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतः ब्रह्मा सभयं नारदं सस्मार)

रावण शक्तिको पकडीजातीहुई देखकर क्रोधसे ब्रह्माके मारनेको उद्यत हुआ तब ब्रह्माजीने भयभीत होकर नारदजीको स्मरण किया।

नारदः (प्रविश्य) तात किमिति स्मृतोऽहम्॥

नारदजी (प्रवेशकरके) पिताजी ! कहिये आपने मुझे क्यों याद किया।

ब्रह्मा—वत्स ! यावन्मारुतिः समरभूमौ तावदेकवीरघातिनीशक्तिर्लक्ष्मणं न भिनत्ति । तस्मिन्पुनरभिन्ने लंकेश्वरो मां नितरां हनिष्यतीति मत्वा समरतः पवनपुत्रः स्थानान्तरं नेयः ॥

ब्रह्माजी—हे पुत्र ! जबतक ये हनुमान्‌जी रणभूमिमें हैं तबतक वह एकवीरघातिनी शक्ति लक्ष्मणको भेदन नहीं करसकती और लक्ष्मणपर प्रहार न होनेसे रावण मुझे अवश्यही परम दुःख देगा इस कारण महावीरजीको रणभूमिसे अलग दूसरे स्थानमें लेजाना चाहिये ॥

नारदः—यदाज्ञापयति तात इति (निष्क्रम्य)

नारदजी—हे पिताजी जो आपकी आज्ञा, ऐसा कहकर (निकलकर)

द्राङ् नारदोऽथ पितृभङ्गभयादनैषीत्
स्थानान्तरं समरतः पवनस्य सूनुम् ।
लंकापतेर्दृढचपेटभवत्प्रहारा-
ज्जग्राह रामरिपुरत्र विधेस्तु शक्तिम् ॥ २ ॥

इसके अनन्तर लंकापति रावणके कठोर चपेटकी चोटसे कष्ट होगा इस भयसे नारद शीघ्रही पवनतनय हनुमान्‌जीको दूसरे स्थानपर लेगए और इधर रावणने ब्रह्माकी शक्ति उठाई ॥ २ ॥

रावणः-

दृष्ट्वा शक्तिग्रहणमधिकं राक्षसेन्द्रः कृतान्त-
क्रोधाध्मातो ज्वलितहृदयाग्निस्फुलिङ्गोग्रवेषः ।
तामेव स्म क्षिपति निधने लक्ष्मणस्योग्रमन्त्रै-
र्भित्वा वक्षःस्थलमपिगताभूतलं कूर्मराजम् ॥३॥

अपनी छोडीहुई शक्तिको हनुमान्‌जी करके पकडीहुई देखकर यमराजकी समान अत्यन्त क्रोधसे भुनेहुए और प्रदीप्त हृदयाग्निकी चिनगारियोंसे भयानक वेषवाले निशाचरपति उस रावणने लक्ष्मणजी-को मारनेके लिये तीव्र मन्त्रोंके द्वारा उसी शक्तिको फेंका वह शक्ति लक्ष्मणजीके हृदयको और पृथिवीकोभी भेदकर कच्छपराजके पास जापहुँची ॥ ३ ॥

शक्तिः प्रौढोग्रतेजःप्रलयसमुदिताद्रावणात्कोपमाना-
द्गर्जन्ती दीपयन्ती ज्वलितदशदिशोलक्ष्मणं वेधयन्ती ।
हाहाकारप्रलापं सकलजनभवं देवदैत्येन्द्रकम्पं
ब्रह्माद्यैःस्तूयमाना भुजगपतिपुरंकारयन्ती जगाम ॥४॥

प्रौढ और उग्र तेजवाले वीरोंके नाशके निमित्त प्रकटहुई, गर्जना करती हुई और प्रकाशमान तथा दशों दिशाओंको जलाती हुई लक्ष्मणजीको छेदन कर और समस्त प्राणियोंमें फैलतेहुए हाहाकार-को उत्पन्न कर एवं देवता तथा राक्षसोंको कम्पायमान करतीहुई तथा ब्रह्मादिकोंसे स्तुति कीहुई वह शक्ति क्रोधमें हुए रावणके पाससे छूटकर नागलोकको चलीगई ॥ ४ ॥

(अत्रान्तरे स्थानान्तरादागत्य हनुमता)

पश्चात्तापगते विभीषणबले क्षीणे प्लवङ्गेश्वरे

मूढे जाम्बवतिप्लवङ्गमगणेऽसंभूय भूयः स्थिते ।
शक्तिप्रौढमहाप्रहारविधुरेमूर्च्छागते लक्ष्मणे हा रामे
विलपत्यहो हनुमता प्रोक्तं स्थिरैः स्थीयताम् ॥९॥

इसही अवसरमें अन्य स्थानसे आकर हनुमान्‌जीने विभीषणकी सेनाके पश्चात्ताप करनेपर सुग्रीवके दुर्बल होजानेपर जाम्बवान्‌के जडसमान होजानेपर फिरभी वानरसमूहोंके छिपकर खडे होनेपर शक्तिके महाघोर प्रहारसे व्याकुल लक्ष्मणजीके मूर्च्छाको प्राप्त होनेपर और हाय ! हाय ! करके रामचन्द्रजीके विलाप करनेपर महावीरजी बोले, सबको धैर्य रखकर स्थित होना चाहिये ॥ ९ ॥

अथ विभीषणः ।

रात्रौ ज्वलदुल्मुकं करे कृत्वा शिविरं पर्य्यटन्
प्रौढशक्तिज्वालावलीकवलितान् वानरान् पश्यति
स्म को जीवति न वेति तत्र जांबवन्तमेवापश्यदुप-
विष्टं मूर्च्छारहितं नान्यम् ।

इसके अनन्तर विभीषण-रात्रिमें जलती हुई मसाल हाथमें लेकर लश्करमें ढूँढनेलगे, महाशक्तिकी ज्वालाओंकी पंक्तियोंसे झुलतेहुए वानरोंको देखनेलगे कि-कोई जीता है या नहीं, उसी समय मूर्च्छा-रहित बैठेहुए जाम्बवन्तकोही देखा और किसीको नहीं ।

जाम्बवान्-(विभीषणं प्रति)

अञ्जनी सुप्रजा येन मातरिश्वा तु राक्षस ।
हनूमान्वानरश्रेष्ठः कामं जीवति वा न वा ॥६॥

जाम्बवन्त विभीषणसे बोले कि-हे राक्षसराज ! जिनसे अंजनी माता सुपुत्रवती है और जिनके होनेसे पवन भी पुत्रवान् है वह वानर श्रेष्ठ हनुमान्‌जी जीते हैं या नहीं ? ॥ ६ ॥

विभीषणः–

नैव राजनि सुग्रीवे नैव रामे न चाङ्गदे ।
आर्येण दर्शितः स्नेहो यथा वायुसुते पुरः॥७॥

विभीषण–हे महाराज ! न तौ तुमने वैसा प्रेम सुग्रीवमें और न महाराज रामचन्द्रजीमें तथा न अंगदमें दिखाया जैसा कि–वायुतनय हनुमान्‌जीमें स्नेह प्रगट किया ॥ ७ ॥

जाम्बवान्–

भो राक्षसेन्द्र विभीषण !–
तस्मिञ्जीवति दुर्धर्षे हतमप्यहतं बलम् !
हनूमति गतप्राणे जीवन्तोपि हता वयम् ॥ ८॥

जाम्बवान्–हे राक्षसराज विभीषण ! उन हनुमान्‌जीके जीते रहनेपर यह सेना हनन की हुई भी जीती ही है और हनुमान्‌जीके प्राण हीन होजानेसे हम सब जीते हुए भी मरेहुएके समान हो जायँगे ॥८॥

ततः सत्वरं जाम्बवता सह विभीषणः पृष्ठोपस्थितं मारुतिं विलपन्तं रामचन्द्रमनुस्मरति ।

तदनन्तर शीघ्रही जाम्बवान्‌के साथ विभीषण, पीछे खडे हुए पवनतनय हनुमान्‌जीको और विलाप करते रामचन्द्रजीको स्मरण करते हैं ॥

रामः–(विभीषणमवलोक्य)

गिरीन्यास्यन्त्यमी वीरास्त्वयि वत्स दिवं गते ।
मरिष्यामि ससीतोहं क्व यास्यति विभीषणः॥ ९॥

रामचन्द्रजी (विभीषणको देखकर) हे तात ! आपके स्वर्गको जानेपर वीर वानर पर्वतोंमें चले जायँगे और मैं सीतासहित मृत्युको प्राप्त हो जाऊँगा परन्तु इस विभीषणकी क्या गति होगी ॥ ९ ॥

भुक्ते मयि प्रथममत्सि फलानि वत्स
सुप्ते करोषि शयनं मयि जीवति त्वम् !
प्राणाञ्जहासि सुरलोकसुखाय किंवा
सापत्नभावमहह प्रकटीकरोषि ॥ १० ॥

(इति तारस्वरैः सर्वे रुदन्ति)

हे तात ! पहिले मेरे भोजन करलेनेपर तुम फलोंको खाते हो और मेरे सोनेके पीछे तुम शयन करते हो, अब क्या तुम स्वर्गलोकका सुख भोगनेके लिये मेरे जीते रहते ही अपने प्राणोंको त्यागते हो ? ओहो ! बडे शोककी बात है कि तुम द्वेषभाव प्रकट कर रहे हो अर्थात्—जब भोजनादि सब कृत्य तुम मुझसे पीछे ही करते थे तो अब मुझसे प्रथम ही प्राणत्याग क्यों करते हो ? ॥ १० ॥

(यह सुन सम्पूर्ण सेना बडी जोरसे रोने लगी ।)

रामः-

हा वत्स लक्ष्मण धिगस्तु समीरसूनुं
यस्त्वां रणेपि परिहृत्य पराङ्मुखोऽभूत् ।
गोपायतीह भरतस्तु ममानुजः किं
यस्त्वामधिज्यधनुरुद्धतशक्तिपातात् ॥ ११ ॥

(रामचन्द्रजी) हे तात लक्ष्मण ! पवनकुमारको धिक्कार है, क्यों कि जो तुम्हें संग्राममें हो छोडकर अपने आप चले गये यदि इस समय हमारे भ्राता भरतजी होते तो धनुषको चढाकर इस उद्धत शक्तिपातसे क्या तुम्हारी रक्षा नहीं करते ? ॥ ११ ॥

(अलमस्मद्वृथायौवनशस्त्रभरेणेति सशरं धनुस्त्यक्तुमिच्छति)

हमारी इस युवावस्थामें वृथा शस्त्रधारणरूप बोझसे क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार कहकर बाणसहित धनुषको त्यागना चाहते हैं ॥

(हनूमान्निजापराधेन सकरुणं भरतबाहुवर्णना-
कर्णनेन साभ्यसूयं सत्वरं गारुडस्थानमभिनीय
रामपुरतः स्थित्वा)

हनूमान्‌जी अपने अपराधसे (करुणाके साथ) और भरतजीकी भुजाओंके पराक्रमका वर्णन सुननेसे (हर्षसे) जल्दीही गारुडस्थान आकाशमण्डलमें प्राप्त हो रामचन्द्रके सामने खडे होकर ॥

दैव ! पश्य–

सप्ताम्भोनिधयो दशैव च दिशः सप्तैव गोत्राचलाः
पृथ्व्यादीनि चतुर्दशैव भुवनान्येकं नभोमण्डलम् ।
एतावत्परिमाणमात्रकटके ब्रह्माण्डभाण्डोदरे क्वासौ
यास्यति राक्षसो रघुपते किं कार्मुकं त्यज्यते ॥ १२ ॥

हे भगवन् !–देखिये सातों सागर, दशों दिशा, सात पर्वत और पृथ्वी आदिक चौदह लोक और एक आकाशमण्डल इतने परिमाण-वाले ब्रह्माण्डके भीतर वह राक्षस कहाँ जायगा–अर्थात् इतने स्थानोंमें जाकर तौ कहीं बच नहीं सकता तो फिर हे रामचन्द्रजी ! आप धनुषको क्यों त्यागते हैं ? ॥ १२ ॥

रामः–भो मारुते तथापि मामुन्मथ्यजागर्ति लंकाभटः॥

रामचन्द्रजी–हे हनुमान्‌जी ! तौ भी मेरा मथन करके भी रावण जागरहा है ॥

हनूमान्–देव ! पश्य, नीचैःसहमैत्री न कर्तव्या यतः–

हनूमान्–हे स्वामिन् ! देखिये–नीचमनुष्योंके साथ मित्रता नहीं करनी चाहिये कारण कि–

खलः करोति दुर्वृत्तं नूनं पतति साधुषु ।
दशाननोऽहरत्सीतां बन्धनंस्यान्महोदधेः॥ १३॥

दुष्टजन तो कुकर्म करता है और वह कुकर्म निश्चय सज्जनोंके ऊपर पडता है क्योंकि-रावणने तो सीताको हरा और समुद्रका बन्धन होगया ॥ १३ ॥

दैवादप्युत्तमानां परिहरति यदा दुर्जनो वा कदाचि-
न्मानं नाप्नोतितेषामनुजनितगुणानेवकुत्राधिकत्वम्।
स्वर्भानुर्भानवीयान्हरतियदिपुनःशीतरश्मिमरीचीन्
ब्रह्माण्डस्येह खण्डे तदपि रघुपतेकिंग्रहेशत्वमेति ॥

दुर्जन कदाचित् प्रारब्धके वशसे उत्तम पुरुषोंके मानको हरलेता है, तौभी उनसे विशेष तो क्या होगा उनके गुणोंकोभी प्राप्त नहीं होता। हे रामचन्द्रजी ! यद्यपि राहु, सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंको हरलेताहै तथापि क्या इस ब्रह्माण्डमें वह ग्रहोंका स्वामी होजाता है अर्थात् कदापि नहीं ॥ १४ ॥

रामः-अये हनुमन् !

किं तया क्रियते वीर कालान्तरगतश्रिया ।
अरयो यां न पश्यन्ति बन्धुभिर्वा न भुज्यते ॥१५॥

रामचन्द्रजी-हे हनुमन् ! जो सम्पत्ति शत्रुओंसे देखी नहीं जाती और कुटुम्बियोंसे भोगी नहीं जाती उस खोटे अवसरमें प्राप्त हुई सम्पत्तिसे क्या लाभ ? ॥ १५ ॥

हनूमान्-

(लक्ष्मणं विषमस्थितमवलोक्य लक्ष्मणवक्षो
भिन्नं दृष्ट्वा (सविस्मयो रामम्) हनुमति
कृतप्रतिज्ञे दैवमदैवं यमोऽप्ययमः ।)

हनूमान्-दुःखदशाको प्राप्त लक्ष्मणजीको देखकर और उनके हृदयकोभी विदीर्ण देख (आश्चर्यपूर्वक रामचन्द्रजीसे) हनूमान्के प्रतिज्ञा करनेपर दैव अदैव होजाता है और यमभी अयम हो जाता है ॥

पुनर्देव ! पश्य–

पातालतः किमु सुधारसमानयामि
निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमुताहरामि।
उद्दण्डचण्डकिरणं ननु वारयामि
कीनाशपाशमनिशं किमु चूर्णयामि ॥ १६।

हे नाथ ! और देखिये आप कहें तो मैं पातालसे अमृतरसको लेआऊँ। चन्द्रमाको निचोडकर अमृत लेआऊँ या प्रचण्डकिरणमाली सूर्यको रोकदूं या सन्तत पाश धारण करनेवाले यमराजके पाशको भी चूर २ करदूं ॥ १६ ॥

रामः–(आत्मगतम्)

यद्यदुक्तमनेन महावीरेण तत्तदिदानीमेव कृत्वा दर्शयति परन्तु तत्करणादकालेपि महाप्रलयः स्यात्

(इति विचार्य प्रत्याह)

रामचंद्रजी–(मनही मनमें) जो २ इस महावीरने कहा है वह सब यह अभी करके दिखासकता है परन्तु ऐसा करनेसे असमयमें महाप्रलय होजायगा–यह विचार कर कहने लगे ॥

वैद्यं सुषेणमधुनैव तदानय त्वं
लंकापतेरनुचरोऽपि यतो भिषक्सः।
नैवान्यथा वदति रामगिरा हनूमान्
पर्य्यङ्कसुप्तमचिरेण तमानिनाय ॥ १७ ॥

हे वीर ! तुम इस समय सुषेण नामक वैद्यको लेआओ–क्योंकि वह वैद्य रावणका अनुचर है तौ भी अन्यथा नहीं कहैगा इस प्रकार कहेहुए रामचन्द्रके वाक्योंसे हनुमान्‌जी पलँगपर सोते हुए उस वैद्यको शीघ्रही उठाकर लेआये ॥ १७ ॥

सुप्तोत्थितं रघुपतिर्भिषजां वरिष्ठं
पप्रच्छ तं सकरुणं तरुणोपचारम् ।
स व्याजहार हिमरश्मिरुचा रजन्यां
जीवत्यसौ द्रुहिणशैलविशल्यवल्ल्या ॥ १८ ॥

निद्रासे जागेहुए वैद्यराज सुषेणसे रामचंद्रजीने करुणाके साथ तरुण लक्ष्मणजीके निमित्त औषधि पूछी सुषेणने कहा कि-चन्द्रमाकी कान्तिसे प्रकाशित रात्रिमें द्रुहिणनामक पहाडकी संजीवनी बूटीसे यह जीवित हो सकते हैं अर्थात् आजकीही रातमें वह बूटी मँगाओ तो लक्ष्मण जीवित हो सकते हैं ॥ १८ ॥

तत्र रामेणाहूता वानरभटा द्रुहिणाद्रिगमनाय रामपुरतः स्वस्वपराक्रमानुरूपं समयावधिमूचुः ।

उस समय रामचन्द्रजीके बुलाये हुए वानर योधा द्रुहिणाचल पर्वतपर जानेके लिये श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख अपने अपने पराक्रमके अनुसार अवधिको कहने लगे ॥

नलस्त्रिरात्रं पुनरेति गत्वा तत्रैव मैन्दद्विविदौ द्विरात्रम् ।
सुग्रीवनीलौ पुनरेकरात्रं वीरोऽङ्गदो यामचतुष्टयेन १९॥

नल तो जाकर तीन रातमें लौट सकता है और मैन्द तथा द्विविद द्रुहिण पर जाकर दो रात्रिमें लौटकर आ सकते हैं, तथा सुग्रीव और नील एक दिन और रात्रिमें और वीर अङ्गद चारही पहरमें लौटकर आसकते हैं ॥ १९ ॥

रामः सभयम्-आर्तः संकुचितमुखकमलः समरसंकटे भगवतो रुद्रावतारस्य मारुतेः साशंकमुखकमलविकासं पश्यति ।

रामचन्द्रजी-(भयसे) दुःखी होते हुए मलिन मुखकमल होकर रणसङ्कटमें शिवावतार हनुमान्‌जीके मुखकमलकी सशङ्क दमकको देखते हैं॥

हनूमान्-(सत्वरं सकरुणं गारुडस्थानमास्थायाञ्जलिपुटमभिनीय) देव क्षणं स्तम्भ्यतामात्मा यावदेनं भिषक्चक्रचूडामणिं लंकां प्रवेश्यागच्छामि (तथा कृत्वा)

हनुमान् शीघ्रही करुणाके सहित आकाशमण्डलमें स्थित होकर हाथ जोड बोले हे स्वामिन् ! क्षणमात्रको सावधान रहिये जबतक मैं इन वैद्यराजजीको लंकामें पहुँचाकर आऊँ (ऐसाही करते हैं) ॥

नीत्वा लंकां सुषेणं पुनरनिलसुतः प्रार्थयामास रामं देवाज्ञां देहि वीरास्तव हितकरणोपस्थिताः सन्ति सर्वे। लक्षाणां षष्टिरास्ते द्रुहिणगिरिरितो योजनानां हनूमांस्तैलाग्रेः सर्षपस्य स्फुटनरवपरस्तत्र गत्वात्र चैमि ॥ २० ॥

सुषेणको लंकामें पहुँचाकर हनुमान्जी रामचन्द्रसे प्रार्थना करने लगे कि, हे स्वामिन् ! आज्ञा दीजिये, हम सब वीर वानर आपका हित करनेको उपस्थित हैं। महाराज ! यहांसे द्रुहिण पर्वत साठलाख योजन है सो जितना समय प्रज्वलित अग्निमें सरसोंका दाना भुनकर चटकनेमें लगता है उतनीही अवधिमें मैं पवनकुमार तहाँ जाकर फिर यहाँ लौटकर आजाऊँगा ॥ २० ॥

रामः-(सहर्षम्)तथा करोतु वीरः । हनूमान्-

रामचन्द्रजी-(प्रसन्न होकर) हे वीर ऐसा ही करो । हनूमान्-

ध्यात्वात्मानं प्रणम्य प्रभुमवनिसुतावल्लभं तस्य वाक्यं नीत्वाऽयोध्यां गमिष्यस्यखिलकुशलतामानयिष्यस्यपीति । चंडोद्वीनं चकार द्रुतमथ जननीलक्ष्मणस्योपलभ्य स्वप्नेव्यालःसमूलं कवलयतिभुजंवाममुत्तस्थुषीति॥

अपने रुद्रस्वरूपका ध्यान कर और सीतापति भगवान् रामचन्द्रजीको प्रणाम करके "तुम अयोध्याको जाओगे और सबकी कुशल

लाओगे" ऐसे श्रीरामजीके वचनोंको ग्रहण कर अपनी प्रचण्ड उडानसे चलदिये। उसही समय लक्ष्मणजीकी माता सुमित्राजीने यह स्वप्न देखा कि-एक सर्प मेरी बांई भुजा सबकी सब निगल गया और उसी समय घबडाकर उठ बैठी ॥ २१ ॥

प्रोवाच कोसलसुतापुरतोद्भुतं सा
स्वप्नं च सा मुनिवसिष्ठपुरोहितस्य।
पार्श्वे नियोज्य सशरं धनुरादधानं
शान्तिं चकार भरतं मुनिराज्यहोमैः ॥२२॥

सुमित्राने उस स्वप्नको कोशल्याके सामने कहा और कौशल्याने उस विचित्र स्वप्नको मुनिवर पुरोहित वशिष्ठजीके सामने कहा वशिष्ठजीने बाणसहित धनुषको धारण करते हुए भरतजीको पास बैठाकर घीके होमोंसे शान्ति की ॥ २२ ॥

(तत्र द्रोणाद्रिशिखरे) हनूमान्-

दृष्ट्वा सर्वास्तुहिनकिरणोद्यत्प्रभास्तत्र शैले
वल्लीरत्नान्यमरखदिराङ्गारभास्वन्ति वीरः।
भ्रान्त्वा दोर्भ्यां गिरिमुदहरन्नोत्पपातैष तातं
सस्मारायं द्रुतमुपगतस्तद्बलेनोज्जहार ॥२३॥

उधर द्रोणाचलके शिखरके ऊपर हनुमान्‌जी पहुँचे, वहाँ द्रोणाचलपर सबही श्रेष्ठ बूटियोंको चन्द्रमाकी समान दमकती हुई और देवदारुके अँगारेकी समान किरणोंवालीं देखकर चारों ओर घूमे, तदनन्तर पराक्रमी महावीर भुजाओंसे पर्वतकोही उखाडने लगे परन्तु जब यह नहीं उखडा तो अपने पिता पवनका स्मरण किया तब वायु महाराज शीघ्रही आगये और उनके बलसे महावीरजीने उस पर्वतको उखाड लिया ॥ २३ ॥

तत्रायोध्यायांशान्तिमण्डपेकुण्डसमीपस्थौभरतवसिष्ठौ

उधर अयोध्यामें शान्तिमण्डपके विषे हवनके कुण्डके पास स्थित भरत और वशिष्ठजी—

हुत्वा श्रीखण्डकाण्डं सतगरकुसुमं पुण्डरीकं मृणालं
कर्पूरोशीरगर्भं प्रचुरघृतयुतं नारिकेलं जुहाव ।
तूर्णं पूर्णाहुतिं स ज्वलदनलनिभं शैलमादाय वीरः
प्राप्तस्तत्राञ्जनेयःस किमिति भरतस्तं शरेणाजघान॥

तगर और फूलोंके साथ चन्दन, कमल कमलनाल, कपूर और खससे हवन करके घृतपूर्ण नारियलसे पूर्णाहुति कररहे थे कि, उसही समय एकाएकी जलती हुई अग्निकी समान प्रकाशवाले पर्वतको लेकर महावीर हनूमान्‌जी आगये "यह क्या है" ऐसा विचार कर भरतजीने उनके ऊपर बाणसे प्रहार किया ॥ २४ ॥

(तदा भरतबाणेन भिन्नो हनूमान् भरतदोर्दण्डमुक्तकाण्डप्रचण्डप्रहारमूर्च्छितंविधिलिखिताक्षरपंक्तिलोपात्प्राणान्परित्यक्तुमिच्छन्)

(उस समय भरतजीके बाणसे हनूमान्‌जी बिधकर भरतजीके भुजदण्डोंसे छूटेहुए बाणके प्रचण्ड प्रहारसे मूर्च्छित होगये और प्रारब्धके लिखेहुए अक्षरोंकी पंक्तिके मिटनेसे प्राण त्यागनेकी इच्छा करतेहुए)

पुंखावशेषभरतेषु ललाटपट्टो
हा राम लक्ष्मण कुतोहमिति ब्रुवाणः ।
संमूर्च्छितो भुवि पपात गिरिं दधानो
लांगूलशेखररुहेण सकेसरेण ॥ २५ ॥

एक पुंखामात्रही जिसका ऊपर रहा है ऐसे भरतजीके बाणसे विंधे हुए ललाट पट्टवाले "हा राम ! हा लक्ष्मण !" मैं कहाँ हूं ? यह कहते हुए बालोंवाली पूँछके आगेके भागमें द्रोणाचलको धारण किये हुए हनुमान्‌जी अचेत होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २५ ॥

तत्र वसिष्ठभरतादयः सर्वे--(सविस्मयम्)
सर्वे निशम्य सहलक्ष्मणरामनाम
तत्रोपगम्य हनुमत्पदयोर्निपेतुः ।
वृत्तं च तस्य वचनादपनीय शल्यं
मूर्च्छां जहार स मुनिर्गिरिजौषधीभिः ॥ २६ ॥

उसही अवसरमें वशिष्ठ और भरत आदि (आश्चर्यमें होकर) सभी लक्ष्मणके साथ रामके नामको सुनकर हनुमान्‌जीके समीप गये और उनके चरणोंको प्रणाम करने लगे, उनके वाक्यसे सब वृत्तान्तको सुनकर उस पर्वतकी बूटियोंसे ही वसिष्ठ मुनिने बाणको उखाड हनुमान्‌जीकी मूर्च्छाको दूर कर दिया ॥ २६ ॥

हनूमान्-(साभ्यसूयम्)

जिज्ञासया भरतबाहुपराक्रमस्य
रामस्तु तस्य युधि लक्ष्मणशक्तिभेदे ।
श्रान्तोऽहमित्यथ गिरिं नय तं कुमारं
वाक्यं जगाद हनुमान्भरतं सरोषः ॥२७॥

हनुमान्-(तमककर)

लक्ष्मणजीके शक्ति लगनेसे घायल होनेपर रामचन्द्र करके बडाई किये हुए भरतजीकी भुजाओंके पराक्रमको जाननेकी इच्छासे " मैं थकगया हूं " पर्वतके सहित मुझे रामचन्द्रजीके निकट पहुँचा दो इस प्रकार हनूमान्‌ने क्रोधमें भरकर उन कुमार भरतजीसे कहा ॥ २७ ॥

(भरतः-रामलक्ष्मणयोः समरसंकटमुपलभ्य गगनमण्डलभ्रान्तनिजभुजाटोपनाय दोधूयमानधनुर्गुणटणत्कारमभिनीय)

भरतजी-राम, लक्ष्मणपर संग्राममें संकट पडा सुनकर आकाश मण्डलमें भ्रमण करते हुए भुजाओंके आडम्बरके लिये कांपते हुए अपने धनुषकी टंकार प्रत्यञ्चापर टंकार देते हैं ॥

(अत्रान्तरे स्वकटके)-रामः-

इसी अवसरमें निज सेनामें रामचन्द्रजी-

वत्सोत्तिष्ठ धनुर्गृहाण रिपवः सैन्यं विनिघ्नन्ति नः
किं शेषेऽद्य निराकृताः किमरयः प्रत्याहृता वा प्रिया।
भ्रातर्देहि वचो बिभेति हृदयं भ्रातः प्रिये छिन्धि मां
कैकेयि प्रियसाहसे सुतवधान्मातः कृतार्था भव ॥२८॥

हे तात लक्ष्मण! उठो धनुष उठाओ ये शत्रुसमूह हमारी सेनाका नाश किये डालते हैं, आज तुम कैसे सोरहे हो? क्या शत्रुओंके हराचुके? क्या प्रिया सीताको लौटा लिया? हे भाई! जरा उत्तर तो दो क्योंकि-मेरा मन भय खाता है. पहिले मुझ अपने प्यारेको टुकड़े २ कर डालो हे साहसको प्रिय माननेवाली माता कैकेयी! आज पुत्रके वधसे तू भी कृतार्थ होजा॥ २८॥

तत्रैव-श्रुत्वेति तस्य वचनं भरतः शराग्रे
सार्द्धिं कपिं समधिरोप्य गुणे नियुज्य।
मोक्तुं दधे झटिति कुंडलिनं चकार
तुष्टाव तं परमविस्मयमागतः सः ॥ २९ ॥

वहां हनुमान्‌जीके उन वचनोंको सुन, प्रत्यञ्चाको चढाकर पर्वत सहित महावीरजीको बाणपर बैठा शीघ्रतासे भरतजीने जिस समय कानतक धनुषको खींचा उस समय बडे आश्चर्यमें हो हनुमान्‌जी प्रसन्न हुए और भरतजीकी प्रशंसा करने लगे॥ २९॥

हनूमान्-

उत्तीर्यबाणात्कुशलंगृहीत्वासम्पूज्य बाहुंभरतस्यवाग्भि
मनो दरिद्रस्ययथादिगन्तंतथाहनूमाञ्छिबिरंजगाम३०

हनूमान्‌जी-बाणके ऊपरसे उतर, कुशल लेकर वचनोंसे भरतजीकी भुजाओंकी प्रशंसा करके जैसे दरिद्री मनुष्योंका मन दिगन्ततक जाता है ऐसे ही हनूमान्‌जी लश्करमें चले गये॥ ३०॥

अद्रिं रुद्रावतारः प्रलयसमुदितद्वादशार्कानुकारं
द्रोणं दोष्णा दधानः कटकनिकटतामागतोऽप्यर्धरात्रे ।
दिग्भागोत्तालदृष्टिस्तरलतरसरस्तीरमास्थाय वीर-
स्तारं धीमानरोदीत्तदनु सह मुदा वाहिनीमाजगाम ३१

प्रलयकालमें उदय हुए बारह सूर्यका अनुकरण करनेवाले द्रोणाचल पर्वतको भुजामें धारण करे हुए रुद्रावतार हनूमान्‌जी आधी रातके समय सेनाके समीप आगये उस समय उस प्रकाशके कारण प्रभात समयके भ्रमसे वीर बुद्धिमान् रामचन्द्रजी तालाव पर बैठकर रोदन करनेलगे तत्पश्चात् पूर्वदिशामें दृष्टिको लगाये हुए आनन्दके साथ सेनामें आये ॥ ३१ ॥

(पर्वतोद्योतनेन सूर्य्योदयभ्रमात् सरोवरस्थं विकसित-
कमलमालोक्य प्रातराशङ्क्या लज्जावानरोदीत् । तदनु
दिग्भागानवलोक्य सूर्य्योदयमपश्यन्मुदं प्राप्य हा ज्ञातं
पर्वतोद्योतनेन सूर्य्योदयभ्रमात्कमलविकास इति हर्षेण
सह स्ववाहिनीं जगाम)

रामचन्द्रजी पर्वतके प्रकाशित होनेके कारण सूर्य्योदयके भ्रमसे सरोवरमें खिले हुए कमलोंको देखकर प्रातःकाल होनेकी शंकासे लज्जित होकर रोनेलगे । पीछे दिशाओंकी ओर देखकर सूर्य्योदयको न देख आनन्दको प्राप्त होकर ओहो ! जान लिया कि—पर्वतके प्रकाशित होनेके कारण सूर्य्योदयके भ्रमसे कमल खिलगये हैं इस कारण हर्षके साथ अपनी सेनामें चलेगये ॥

हत्वा मायामहर्षीन्नजनिचरवरान् कन्धकालीमुदग्रां
ग्राहीरूपां प्रमथ्य प्रबलमथ बलं राक्षसान्मर्दयित्वा ।
जित्वा गन्धर्वकोटिं झटिति ततमणिज्वालमादाय शैलं
प्राप्तः श्रीमान्हनूमान्पुनरपि तरसा नन्दितस्तत्पुरस्तात

मायाके महर्षि कालनेमि आदिकोंको मारकर, मकरीके रूपको धारण करनेवाली राक्षसीका मथन करके और महाबली राक्षसोंकी सेनाको मर्दन करके तथा इन्द्रके भेजे करोडों गन्धर्वोंको जीतकर पर्वतको धारण करे हुए श्रीमान् हनूमान्जी शीघ्रही रामचन्द्रजीके सामने आगये ॥ ३२ ॥

रामसुग्रीवादयः सर्वे (सहर्षम्)

रामचन्द्र और सुग्रीव आदिक सब सेनाके वानर (हर्षमें होकर)

यो मैन्दद्विविदादिवानरचमूचक्रस्य रक्षाकरः
संहर्ता रणभङ्गभैरवरवोल्लासस्य लंकापतेः ।
सीतातंकमहान्धकारहरणप्रद्योतनोऽयं हरिः
संप्राप्तः पवनात्मजःपटुमहःश्रीकण्ठवैकुण्ठयोः

जो कि—मैंद और द्विविद आदि वानरोंकी सेनाओंके रक्षक हैं और रणको भंग करनेवाले रावणके भयानक शब्दको नष्ट करनेवाले हैं, तथा जानकीके भयरूप महाअन्धकारके हरण करनेमें सूर्यके समान हैं, ऐसे महादेवजी और रामचन्द्रजीके परमतेजःस्वरूप यह पवनकुमार वानरराज हनुमान्जी आगये ॥ ३३ ॥

कपिकटकभटानां गण्डगोपालनामा
समरशिरसि धीरो योऽञ्जनायास्तनूजः ।
दिशतु विशदलक्ष्मीं लक्ष्मणस्यात्मनः श्री-
चरणनलिननत्या नित्यसत्योदयश्रीः ॥ ३४

वीर वानरोंकी सेनामें सबसे आगे रहनेवाले धीरवान् अञ्जनीके पुत्र और मुखमें सूर्यको रखनेके कारण[1] 'गण्डगोपाल' नामवाले श्रीराम-

(१) गण्डात् कपोलमध्यात् गावः किरणान् पातीति गोपः यद्वा, गावः जलानि पिबतीति गोपः सूर्यस्तं लाति गृह्णातीति गण्डगोपालः । अर्थात् गण्ड गालमें गोप सूर्यको ग्रहण करै वह "गण्डगोपाल" नामवाले हनुमान्जी । ऐसी कथा है कि बालकपनमें हनुमान्जीने फल समझकर अनजानमें सूर्यमण्डलको मुखमें रखलिया और फिर ब्रह्माजीको दे दिया ॥

चन्द्रजीके चरणोंमें अपने प्रणामोंके प्रभावसे नित्य सत्यप्रतिज्ञ रहनेवाले हनूमान्‌जी श्रीलक्ष्मणजीकी उज्ज्वल लक्ष्मीको बढावैं ॥ ३४ ॥

रामः—एकैकस्योपकारस्य प्राणान्दास्यामि ते कपे ।
प्रत्यक्षं क्रियमाणस्य शेषस्य ऋणिनो वयम् ॥ ३५ ॥

रामचन्द्रजी—हे महावीर ! मैं प्रत्यक्षमें तुम्हारे किये एकही उपकारके निमित्त यदि प्राणोंका दान कर दूँ तो शेष जो तुम्हारे किये हुए उपकार हैं उनका तो मैं ऋणीही रहूँगा अर्थात्—लक्ष्मणजीके प्राणदानके बदलेमें तौ मैं तुमको अपने प्राण देदूँ तो समुद्रके लांघने आदिके प्रत्युपकारको कौन करैगा ? इस कारण मैं तुम्हारे ऋणसे कभी नहीं छूट सकता ॥ ३५ ॥

(सदयम्)

अङ्गेष्वेव जरां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे ।
भवान्प्रत्युपकारार्थमापत्सु लभतां पदम् ॥३६॥

(दयासे) हे कपिराज ! जो तुमने हमारे साथ उपकार किये हैं वे हमारे शरीरमेंही पुराने हो जावैं और तुम्हारे प्रत्युपकारके अर्थ आपत्तियोंमें स्थानको न प्राप्त हों—अर्थात् आपने जो हमारे साथ उपकार किये हैं सो आपके शरीरमें कभी कष्ट ही न हो जो हम उन उपकारोंका प्रत्युपकार करैं ॥ ३६ ॥

लक्ष्मणः—

आलेपितो हनुमता गिरिजौषधीभि-
र्मूर्च्छां विहाय सशरं धनुराददानः ।
रामारविन्दतरणिर्धरणीधरात्मा
लंकापतेः कुपितकाल इवोपतस्थौ ॥ ३७ ॥

लक्ष्मणजी—हनूमान्‌जी करके पर्वतकी औषधियोंसे लेपनकरे हुए मूर्च्छाको त्यागकर धनुष बाणको उठाते हुए श्रीरामचन्द्रजीके मुखकमलको खिलानेके लिये सूर्यकी समान शेषावतार लक्ष्मणजी रावणके क्रोधित कालकी समान उठ बैठे ॥ ३७ ॥

क्रोधारुणः प्रोत्फुल्लत्खदिराङ्गारनेत्रो रामः धनुर्गुणटणत्कारमभिनीय-(सहर्षं सबाष्पं सपुलकं च लक्ष्मणं गाढमालिंग्य) हा लक्ष्मण प्रौढशक्तिभेदखेदं जहि मम हृदयपर्यङ्के, हा मेघनादकुलकमलिनीप्रालेयवर्षवत्स एतावतीं वेदनां न वेत्सि ॥

क्रोधसे लाल २ जलते खदिरके अंगारेके समान नेत्रोंवाले रामचन्द्रजी धनुषकी प्रत्यञ्चा पर टंकार शब्द करके हर्षके साथ आँसू भरकर पुलकित हो लक्ष्मणजीको बडे प्रेमसे आलिङ्गन करके हा लक्ष्मण ! तीक्ष्ण शक्तिसे विदीर्ण होनेके खेदको मेरे हृदयरूप पर्यङ्कमें त्यागो हा ! मेघनादके कुलरूप कमलिनीको बडे भारी पालेकी वर्षाके समान भाई ! क्या तुमने इतनी भारी पीडाको भी नहीं जाना ?॥

लक्ष्मणः—आर्यः !

ईषन्मात्रमहं वेद्मि स्फुटं यो वेत्ति राघवः ।
वेदना राघवेन्द्रस्य केवलं व्रणिनो वयम् ॥ ३८ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके लक्ष्मणशक्तिभेदो नाम त्रयोदशोऽङ्कः १३

हे आर्य ! इस शक्तिकी वेदनाको मैं तो कुछ थोडी ही जानता हूँ और भलीप्रकार तो रामचंद्रजी ही जानते हैं क्योंकि—वेदना तो श्रीरामजीको ही है मैं तो केवल घायलमात्र ही हुआ हूँ ॥ ३८ ॥

इति श्रीहनुमन्नाटके भाषाटीकायां लक्ष्मणशक्तिभेदो नाम त्रयोदशोऽङ्कः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽङ्कः ।

ततः प्रातःकाले रावणो लोहिताक्षं दूतमाहूय समादिशति--रे लोहिताक्ष वानरवाहिनीं गत्वा राममिति ब्रूहि । अये राम जामदग्न्यं निर्जित्य यस्त्वया हरप्रसादपरशुर्गृहीतस्तं रावणाय प्रयच्छ ततस्तव सीतांप्रयच्छामि।

तदनन्तर प्रातःकालके समय रावण लोहिताक्ष नामक दूतको बुलाकर आज्ञा करता है कि-हे लोहिताक्ष! तू वानरोंकी सेनामें जाकर रामचन्द्रसे यह कह दे कि हे राम! तूने परशुरामको जीतकर जो शिवकी कृपासे फरशा पाया है वह रावणको देदे तो मैं भी सीताको दे दूंगा॥

लोहिताक्षः-

यदाज्ञापयति देवः। (इति गगनमुत्पत्य रामशिबिरे ततो रामं नमस्कृत्योपस्थितः)

लोहिताक्ष-हे स्वामी! जो आपकी आज्ञा-(ऐसा कह आकाशको उडकर रामचन्द्रजीके लश्करमें जाकर और रामचन्द्रजीको प्रणाम करके बैठ गया)

रामस्तं रावणदूतं ज्ञात्वा पृच्छति--अये लोहिताक्ष! किं करोति राक्षसगणः।

रामचन्द्र उसको रावणका दूत जानकर पूछते हैं कि-अरे हे लोहिताक्ष! राक्षसोंका समूह क्या करता है?॥

लोहिताक्षः-देव!

अधाक्षीन्नो लंकामयमयमुदन्वन्तमतर-
द्विशल्यां सौमित्रेरयमुपनिनायौषधिवराम्॥
इति स्मारंस्मारं त्वदरिनगरीभित्तिलिखितं
हनूमन्तं दन्तैर्दशति कुपितो राक्षसगणः॥१॥

लोहिताक्षने कहा कि-हे स्वामिन्! जिसने लंका जलादी समुद्रको पार किया और श्रेष्ठ औषधिको लाया तथा लक्ष्मणजीके निमित्त विशल्या औषधिके लानेको स्मरण कर २ के आपके शत्रुकी नगरी लंकाकी दीवारोंके ऊपर चित्र बना २ कर हनुमान्जीको राक्षसलोग क्रोधमें होकर दाँतोंसे काटते हैं। अर्थात् पवनतनयके ऐसे २ प्रबल कार्योंको याद कर २ के गुस्सेसे होकर राक्षसगण अपने दाँत कट-कटाने लगते हैं॥ १॥

रामः–(विहस्य) किमर्थमागतोऽसि ।

रामचन्द्रजी–(हँसकर) तू किस कारणसे आया है ? ॥

लोहिताक्षः–

देव ! भृगुपतिंनिर्जित्य गृहीतंहरप्रसादपरशुं रावणाय प्रयच्छ ततस्तव सीतां समर्पयिष्यति लंकेश्वरः ॥

लोहिताक्ष–हे भगवन् ! परशुरामजीको जीतकर पायाहुआ शिवका प्रसादरूप फरसा रावणको देदीजिये तो रावण भी आपको जानकी देदेगा ॥

रामः (विहस्य) दूत पश्य ।

पौलस्त्यप्रणयेन तावकमतिं स्मृत्वा मनो मोदते
देयो नैष हरप्रसादपरशुस्तेनाधिकं ताम्यति ।
यद्वाच्यः स दशाननो मम गिरादत्ता द्विजेभ्यो मही
तुभ्यं ब्रूहि रसातलं बलभिदे निर्जित्य किं दीयताम् २

रामचन्द्रजीने हसकर कहा कि–हे दूत ! देख ! पुलस्त्यजीके वंशमें उत्पन्न हुए रावणकी नम्रतासे ऐसी बुद्धिको समझ कर हमारा चित्त बडा ही प्रसन्न होता है तथापि शिवजीकी कृपासे मिलेहुए परशुको नहीं देंगे क्योंकि, इससे वह बहुत ही दुःखको प्राप्त होगा परन्तु तू मेरी ओरसे जाकर उससे कह दे कि–इस फरशेसे प्राचीन कालमें पृथ्वी जीतकर ब्राह्मणोंको दीथी और तुझको पाताल दिया अब तू ही बता कि तुझे जीतकर इन्द्रको क्या दियाजाय ? ॥ २ ॥

अथ देवराज इन्द्रः रामाय शत्रुंजयं रथवरं वितरतिस्म।

तत्पश्चात्–देवताओंके राजा इन्द्रने रामचन्द्रजीके लिये सुन्दर और शत्रुजयी रथ भेजा ॥

रामोपिहनूमन्तं रथध्वजाग्रमारोप्यस्वयं रथारोहणंनाटयति--तथाविधं तमालोक्य लोहिताक्षो निष्क्रान्तः ॥

रामचन्द्रजीभी हनूमान्जीको रथकी ध्वजाके अग्रभागमें बैठाकर आपभी रथमें चढनेको नाट्य करतेहैं-इस प्रकार इनको देख लोहिताक्ष जाताहै ॥

लंकाशिखरस्थो रावणः--अये लोहिताक्ष !
कोसौ दाशरथेर्ध्वजे वर्तते ॥

लंकाके शिखरपर बैठाहुआ रावण-हे लोहिताक्ष ! दशरथतनय रामकी ध्वजमें यह कौन बैठा है ? ॥

लोहिताक्षः-देव !

हेलोल्लंघितवारिधिर्जनकजाविश्लेषशुष्यन्मनः-
कौसल्यासुतदैन्यपाटनपटुर्ग्रस्तांशुभूमण्डलः ।
निर्दग्धाखिलराक्षसेन्द्रनगरःसौमित्रिसंजीवना-
योत्खातौषधिपर्वतश्च मरुतः पुत्रो ध्वजे वर्तते ३

लोहिताक्ष-हे स्वामिन् ! क्रीडाही करके समुद्रको लाँघनेवाला, जानकीके विश्लेष (वियोग) में शुष्क हुआहै मन जिनका ऐसे कौसल्याकुमार रामचन्द्रजीकी दीनताको नष्ट करनेमें चतुर, सूर्यमण्डलको पकडनेवाला, राक्षसपति रावणकी समस्त लंकाको जलानेवाला, और लक्ष्मणजीकी प्राणरक्षाके लिये द्रोणाचल पर्वतको उखाडनेवाला पवनपुत्र हनूमान् ध्वजामें बैठाहै ॥ ३ ॥

रावणः-

(सत्वरं मन्दोदरीमन्दिरं प्रविश्य) अयि मन्दोदरि !
रामाय प्रतिपक्षवृक्षशिखिने दास्यामि वा मैथिलीं
युद्धे राघवसायकैर्विनिहतः स्वर्गं गमिष्यामि वा ।
नीतिज्ञे कथयस्व देवि कतमः पक्षो गृहीतस्त्वया
सुश्राव्यं पदमस्मदीयमगमन्मन्मात्रशेषं बलम् ॥ ४ ॥

रावण-(जल्दीसे मन्दोदरीके महलमें जाकर) अरी मन्दोदरी ! शत्रुके पक्षरूप वृक्षोंके निमित्त वह्निकी तुल्य रामचन्द्रको जानकीही

देदूँ, या संग्राममें रामचन्द्रके बाणोंसे प्राणहीन होकर स्वर्गको जाऊँ? हे नीतिज्ञे देवि! कहो तो इन दोनों पक्षोंमेंसे कौनसा पक्ष तुमको अच्छा लगता है सो मुझे बताओ और अब केवल एकही मैं बचा हूँ और सब सेना नष्ट होगई ॥ ४ ॥

मन्दोदरी–(विहस्य)

अयि प्राणनाथ लंकेश्वर !
दृष्ट्वा दैन्यं भगिन्याः श्रुतखरनिधनं मातुलस्यापि नाशं
तालानां भेदनं यत्कपिवरदहनं बद्धसुग्रीवसख्यम् ।
कर्माण्युद्यानभंगे जलनिधितरणं यो न जातस्तदानीं
सोऽयं नष्टेकुलेऽस्मिन्कथमिव गमितो जायते ते विवेकः

मन्दोदरी–(हँसकर) हे प्राणपते लंकानाथ! अपनी बहिन शूर्पणखाकी दीनताको देखकर, खरकी मृत्युको सुनकर, अपने मामा मारीचके वधको देखकर, तालके वृक्षोंका भंग देखकर, हनुमान्‌जीसे लंकाके जलानेको तथा सुग्रीवकी मित्रताको देखकर, अशोकवाटिकाके नष्ट करनेमें अक्षय कुमार आदिके वधको और समुद्रके पार होनेको भी देखकर जो ज्ञान आपको उस समय नहीं हुआ था अब समस्त कुलके नष्ट होजानेपर आपको ये ज्ञान कैसे उत्पन्न होगया? ॥ ५ ॥

रावणः–(सापत्रपं साभ्यसूयम्)

धिग्धिक्शक्रजितं प्रबोधितवता किं कुम्भकर्णेन वा
स्वर्गग्रामठिकाविलुण्ठनपरैः पीनैः किमेभिर्भुजैः ।
धिक्कारो ह्ययमेव मे यदरयस्तत्राप्यसौ तापसः
सोऽप्यत्रैव निहन्ति राक्षसभटाञ्जीवत्यहो रावणः ॥ ६ ॥

रावण–(लज्जासहित असूयासे) इन्द्रविजयी मेघनादको धिक्कार है और जगाये हुए कुम्भकर्णसे भी क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ? स्वर्गरूप छोटेसे ग्रामके विजय करनेमें पराक्रमशाली मेरी भुजाओंसे

भी क्या है ? और मुझको तो यही धिक्कार है कि-जो मुझ रावणकेभी शत्रु हैं और वहभी तपस्वी औ यह तपस्वी भी मेरे स्थानपरही आकर राक्षस योद्धाओंको मारते हैं, वह एक बडेही दुःखकी बात है तौ भी कोई हानि नहीं अब भी तो रावण जीताही है ॥ ६ ॥

मन्दोदरी-(सकरुणम्)

शोकं लंकेश मागाः कुरु चिरमपुनर्मा विगूढोपगूढं
देवाज्ञां देहि योद्धुं समरमवतराम्यस्मि सुक्षत्रिया यत्॥

मन्दोदरी-(करुणासे) हे लंकाधिपते ! शोक न करिये फिर न होनेवाले आलिङ्गनको कीजिये मैं अच्छे क्षत्रियकी संतान हूँ इस कारण मुझे युद्ध करनेकी आज्ञा दीजिये ॥

रावणो विदीर्यमाणहृदयः-

मैवं कान्ते स्वकान्ते तरुणय करुणां प्राणरङ्कः किमेको
लंकांसन्त्यज्य शंकांशिवशिवसमरायोद्यतोराक्षसेन्द्रः७

रावण-हृदयमें दुःखित होकर कहने लगा कि-हे कान्ते ! तू अपने पति मुझ रावणमें इतनी भारी करुणाको प्रगट न कर । प्राणोंका कंगाल एक मैं ही राक्षसराज रावण ? शिव ! शिव ! लंकाको और शंकाको त्यागकर युद्ध करनेको उद्यत हूँ ॥ ७ ॥

अथ रामाज्ञया वानरभटाः-

उद्यद्दिक्पालकोलाहलबहलमदावग्रहोग्राभिरक्ष्णां
ताराभिर्दीप्यमानं दिशि विदिशिदशग्रीवमुद्वीक्षयन्तः।
एते निःशेषसेतुग्रथनसमधिकैः शस्त्रिणः शैलपादै-
रुद्दामानः कपीन्द्रा रजनिचरपुरीमुत्तरेण प्लवन्ते ॥८॥

इसके उपरान्त रामचंद्रजीकी आज्ञासे, रावणके मरणको देखनेके निमित्त आयेहुए दिक्पालोंके कल २ शब्दसे बढेहुए मदके विरोधसे उग्रताको प्राप्त हुए, शृंखलारहित, नेत्रोंके ताराओंसे देदीप्यमान, रावणको दिशा विदिशाओंमें नष्ट करनेकी इच्छासे सेतु बांधनेपर भी

बचेहुए पर्वत और वृक्षरूपी शस्त्रोंको धारण करेहुए वीर वानरोंने उत्तर दिशाके मार्गसे लंकाको रोक लिया ॥ ८ ॥

जलमध्ये रुद्रपादाद्रिशिखरगतो रामरावणयो-
र्युद्धं निरीक्ष्यमाणो रुद्रः कपिभटैः संवेष्टितां
लंकां विलोक्य ॥

जलमें कैलाश पर्वतके ऊपर बैठेहुए रामचन्द्र और रावणके युद्धको देखनेवाले महादेवजी शूरवीर वानरोंसे घिरी लंकाको देखकर ॥

मरुद्रुद्रादित्यौ शतमखमुखास्ते क्रतुभुजः
पुरद्वारे यस्याः सभयमुपसर्पन्त्यनुदिनम् ।
प्रकोपव्याधूर्याधरतटपुटैर्वानरभटैः
समाक्रान्ता सेयं शिव शिव दशग्रीवनगरी ॥ ९ ॥

पवन, रुद्र, सूर्य, इन्द्र आदिक देवता जिस (रावण) के द्वारपर भयसे प्रतिदिन उपस्थित होते हैं शिव ! वही यह दशानन रावणकी लंका नाम नगरी आज क्रोधसे कम्पायमान अधर तट और नासापुटवाले वीर वानरोंने कैसे घेर ली यह बडेही आश्चर्यकी बात है ॥ ९ ॥

अस्त्रं यत्प्लवगाधिपेन विहितं पौलस्त्यवक्षस्तटे
संघट्टानलदत्तदावविपदः सीदन्ति भूमीरुहाः ।
उत्पाट्य प्रहिताः स्वशैलशिखरे लंकेन्द्रहस्तावली-
पिष्टोऽयंनिजकुण्डनिर्झरजलैर्जम्बालपिण्डायते १० ॥

वानराधीश सुग्रीवने जो शस्त्रको छोडा तो उससे रावणके वक्षःस्थलमें रगडनेसे उत्पन्न हुए अग्निसे विपत्तिको प्राप्त होनेवाले वृक्ष भस्म होनेलगे और रावणने त्रिकूटाचलके शिखरको उखाडकर प्रहार किया तो लंकेश्वर रावणके हाथसे मसले जाकर यह शिखर सिवारके कुण्डकी समान होगये ॥ १० ॥

तथैतेनोद्धृत्य स्फटिकशिखरी सोपि विदधे
समन्तादामूलत्रुटितवसुधाबन्धविधुतः ।
अमुं येनाद्यापि त्रिपुरहरनृत्यव्यतिकरः
पुरस्तादन्येषामपि शिखरिणामुद्भसयति॥११॥

तिसही प्रकार इस रावणने स्फटिकका शिखर उखाडकर उसको चारों ओरसे मूलतक टूटे हुए पृथ्वीके बन्धनसे कम्पित करदिया और वह स्फटिकका शिखरभी आजतक उस उखाडनेसे और पर्वतोंकेभी आगे इस रावणके त्रिपुरारि शंकरके क्रोधपूर्वक नृत्यको स्मरण करता है ॥ ११ ॥

रावणः (सक्रोधम्) रथारोहणं नाटयति-

भेरीमर्दलशंखतालनिकरस्वानोल्लसत्काहलो
निःसाणस्वनपूर्णकर्णकुहरो निर्यन्नगर्या बभौ ।
युद्धार्थं दशकन्धरोरथगतोमाणिक्यमौलिर्यशो-
दीपादीपितमस्तको जनकजारामोविधेःकर्मणा १२

रावण-(क्रोधसे) रथमें बैठनेका नाट्य करता है ।

रथमें बैठाहुआ मणियोंसे युक्त मस्तकवाला, कीर्तिकी किरणोंसे प्रकाशित मस्तक वाला और जनकतनया सीतामें कामनायुक्त दशग्रीव रावण दैवकी प्रेरणासे भेरी, मर्दल, शंख और तालके समूहोंके नादसे वृद्धिको प्राप्त हुआ लंकाके युद्धके निमित्त निकल कर शोभा देनेलगा ॥ १२ ॥

नीचैर्ववौ परिमितः पवनो वनेषु
मन्दीचकार तरणिः खरतां करेषु ।
रक्षःपतिं गगनमाप्तमवेक्ष्य साक्षा-
न्नद्यो ययुः स्थगिततुंगतरङ्गभंगाः ॥ १३ ॥

साक्षात् निशाचर राज रावणको आकाशमण्डलमें प्राप्त हुआ देखकर वनोंमें वायु परिमित होकर धीरे २ चलने लगा, भगवान् सूर्यनारायणने भी अपनी किरणोंमें तीक्ष्णताको मंद कर दिया और नदियें चंचलतासे रहित तरंगवाली होकर बहने लगीं ॥ १३ ॥

आकाशे—

यदा नीलो लंकाधिपसुभटकोदण्डशिखरे
स्थितश्चञ्चद्बाष्पाकलितमृगतृष्णान्वितगिरिः ।
तदैवं देवानां मतिरजनि दिङ्मण्डलजुषां
धनुःशृङ्गे भृङ्गस्तदुपरि गिरिस्तत्र जलधिः १४

(आकाशमें) जिस समय बहते हुए आँसुओंसे युक्त मृगतृष्णावाले पर्वतसहित नील वानर लंकेश्वर सुभट रावणके धनुषके शिखरपर स्थित हुआ उस समय दिशाओंके मण्डलमें स्थित देवताओंकी यह बुद्धि हुई कि—धनुषके शृंगपर तो भौंरा है और भौंराके ऊपर पर्वत हैं और उस पर्वतके ऊपर समुद्र है ॥ १४ ॥

साश्चर्य्यं तत्र रामे सपटु[1] भटमुखे सव्यथं देवतौघै
साशंकं रामयुद्धे कपिषु सविनयं लक्ष्मणे साश्रुपूरम् ।
सासूयं भ्रातृकृत्ये सभयमनिलजे सत्रपं चात्मकृत्य
क्षिप्तं तद्भक्रचक्रं रजनिचरपतेर्भिन्नभावं बभूव ॥१५॥

उस समय रामचन्द्रमें तो आश्चर्यसे और मुख्य योधाओंमें निपुणतासे, देवताओंकी स्तुतिमें व्यथासे, रामचन्द्रजीके युद्धमें शंकासे, वानरोंमें नम्रतासे, लक्ष्मणजीमें आँसू भरकर, भ्राता विभीषणकी कर्तव्यतामें निद्रासे, पवनके पुत्र हनुमान्‌जीमें भयसे और निज कर्तव्यतामें लज्जासे, निशिचर नाथ रावणका मुखमण्डल शीघ्रही भिन्न २ भावका आश्रय करने लगा ॥ १५ ॥

---

[1] १ अद्भुत, वीर, शान्त, शृंगार, करुणा, रौद्र, वात्सल्य, हास्य, भयानक, बीभत्स, यह रस क्रमानुसार, इस लोकमें रावणके मुखविकारके भावसे जाने गये ॥

बद्धा तूणान्दशोच्चैर्मघवहयसटावेणिबन्धेन वामै-
र्दोर्भिश्चापान्विधुन्वन्दशदश च शरान्दक्षिणैराददानः
क्ष्वेडन्क्रीडन्प्रकुप्यन्प्रसरदभिभवद्गर्जितातर्जितौघैः
शश्वत्खिद्यन्मुखश्रीरवतरति रणप्राङ्गणे राक्षसेन्द्रः १६

इन्द्रके घोडोंके कण्ठके केशोंको वेणीके बन्धनसे बडे २ दश तर्कशोंको बाँधकर बायीं दशभुजाओंसे दश धनुषोंको कँपाता हुआ और दक्षिण भुजाओंसे दश दश बाणोंको ग्रहण करता हुआ हँसीके साथ खेल करता हुआ क्रोधित और सन्तत खिन्न होती हुई मुखकी कान्तिवाला राक्षसपति रावण ललकारनेकी गर्जनाके समूहोंके साथ सन्मुख होता हुआ संग्राम भूमिमें आया ॥ १६ ॥

रामरावणयोः-

रणाङ्गणे कुण्डलिनो युवानः परस्परं सायकभिन्नदेहाः ।
कुचाग्रलग्नाइवकामिनीनां कुम्भाग्रलग्नाःसुषुपुर्गजानाम्॥

उस राम रावणके घोर युद्धमें कुण्डलोंको धारण किये युवा वीर पुरुष आपसमें बाणोंसे शरीरके विदीर्ण होनेके कारण हाथियोंके गण्डस्थलसे लगे हुए मानो अङ्गनाओंके कुचाग्रसे लगकर सो गये ॥ १७ ॥

गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः ।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ॥ १८ ॥

आकाश तो आकाशकी ही समान आकारवाला है और समुद्रको समुद्रकी ही उपमा दी जासकती है, इसी भाँति श्रीरामचन्द्रजी और रावणका युद्ध रामचन्द्र और रावणके ही युद्धकी समान है। अर्थात् जैसे विस्तारमें आकाशकी उपमा नहीं और जैसे गंभीरतामें समुद्रकी उपमा नहीं है ऐसे ही भयानकतामें राम रावणके युद्धकी भी कोई उपमा नहीं ॥ १८ ॥

तत्र सारो नाम राक्षसस्तुमुलयुद्धे–

अश्वारूढस्तु यावद्व्रजति न शिबिरं वाजिनः पूर्वमर्धं
धावन्तंखण्डितस्यस्वमरिकुलबलात्पादयुग्मेन धीरः ।
सारः क्रव्यादवीरः शिरसि करतलोत्थापितेनाङ्गदेन
क्रुद्धेनाताडितो द्राक्शिवशिव समरे पश्चिमार्द्धेनतावत्॥

(उस समय–सार नामक राक्षस घोर युद्धमें) जबतक राक्षसवीर सार राक्षस बीचमेंसे खंडित हुए घोडेके पहिले भागके आधे शरीर-पर चढकर अपने दोनों पैरोंसे शत्रुकी सेनाके निकटसे निज शिबि-रमेंको दौडकर नहीं पहुँचने पाया तबतक अंगदजीने उस घोडेके पिछले आधे भागके शरीरको उठाकर जल्दीसे उसके मस्तकमें दे मारा शिव ! शिव ! यह बडाही कष्ट हुवा ॥ १९ ॥

अंगदः (वा) रावणः–

यावानब्धिः कलशशिशुना तावता किंच पीतः
तुल्याकारान्प्रहरति हरिः किं खगानद्रितुङ्गान् ।
तत्रागम्याः प्रथितवपुषः सन्तु तिग्मस्वभावा-
स्तेषां ग्रासग्रहणरभसं राम ते नामधेयम्॥२०॥

अंगद–(या) रावण–जितने विस्तारवाला समुद्र है क्या उतनेही बडे अगस्त्यजीने उसे पान किया था ? और क्या इन्द्रने अपने ही समान आकृतिके परवाले छोटे पर्वतोंपर प्रहार किया था ? किन्तु अपने आप छोटा होनेपर सूर्यनारायण पर्यन्त ऊँचे पर्वतोंके पक्षोंको काटा । इसमें अगाध समुद्र और बडे आकारवाले पर्वत स्वाभाविक तेजस्वी अगस्त्यादिक रहैं, किन्तु हे रामचन्द्रजी ! उन सबको ग्रहण करनेके निमित्त आपका यह रामनाम है ॥

दूसरा अर्थ रावण कहने लगा कि–अगस्त्यजी सम्पूर्ण समुद्रको पीगये इससे हमारी क्या हानि हुई ? और इन्द्रने पर्वतोंके पक्ष काटे तौ उससे क्या हुआ ? कारण कि–इन्द्रको तौ मेरे पुत्र मेघनादहीने

बाँध लिया था। राम ! तुमने बृहत्काय राक्षसोंको नष्ट किया तो क्या हुआ ? कीर्तियुक्त बडे शरीरवाले तीक्ष्ण स्वभावी उपस्थित हैं। तुम इन बहुतसे थोडे राक्षसोंको देखते हो, परन्तु उन तीक्ष्णस्वभाववालोंको तुम्हारा नाम और सेना ग्रास ग्रहण करनेको कुछ भी नहीं है ॥ २० ॥

रावणः-

स्त्रीमात्रं ननु ताडका मुनिसुतो रामः स विप्रः शुचि-
र्मारीचो मृग एव भीतिभवनं वाली पुनर्वानरः ॥
भो काकुत्स्थ विकत्थसे वद रणे वीरस्त्वया को जितो
दोर्गर्वस्तु तथापि ते यदि पुनःकोदण्डमारोपय ॥२१॥

रावण—ताडका एक स्त्री थी,मुनिके पुत्र ब्राह्मण परशुराम स्वभावसे ही पवित्र रहते थे, और मारीच डरका घर एक मृग था, और वाली वानर था। यही तो तुमने जीते हैं। हे काकुत्स्थ ! तौ भी तुम अपनी बडाई ही करते हो। कहो तुमने कौनसा वीर जीता है ? और इतनेपर भी जो तुम्हें अपने भुजदण्डोंका घमण्ड है तो फिर धनुषको चढालो ॥ २१ ॥

अत्रान्तरेऽङ्गदः-

वन्द्यास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्ततां
सुन्दस्त्रीदमनेप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते '
यानि त्रीणि कुतो मुखान्यपि पराण्यासन्वरायोधने
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधनेतत्राप्यभिज्ञोजनः २२॥

इसी अवसरमें अङ्गदजी बोले कि—वन्दना करने योग्य ये रामचन्द्र आदिक महापुरुष जिनका चरित्र विचारनाही न चाहिये वह तो एक ओर रहे—क्योंकि—ताडकाके वध करनेसे भी उनका यश मैला न हुआ वे जगत्में बडेही पुरुष माने जाते हैं यदि उनके पराक्रमके

ही सुनना चाहता है तो उस तीन मुखवाले त्रिशिराके शिर किसने छेदन किये और तुझे काँखमें रखनेवाले वालीको जैसे मारा सो तू जानता ही है ॥ २२ ॥

रावणः—

शंभोः पर्वतकन्दुकेन महती क्रीडा कृता येन तं
रे रे मानव राम मा स्मर भवं देवेश्वरं रावणम् ।
ज्याघोषं कुरु ताडकान्तमसुराणामन्तकं संयुगे
यश्चानीतिसमग्रधीरकुटिलः शाखामृगाणां पतिः२३

रावण—अरे हे मनुष्य राम ! शिवजीके कैलास पर्वतको गेंदकी समान मैंने उठालिया था ऐसे मुझको और देवराज शिवजी महाराजकोभी स्मरण कर और ताडकाके नाशक,संग्राममें असुरोंके नाशक तथा परम अनीति करनेवाले वानरपति वालीकाभी अन्त करनेवाले धनुषकी प्रत्यंचाकी टंकार कर ॥ २३ ॥

रामस्तथापि तं रावणं न जघान । लज्जा-
वनम्रवदनाम्बुजः सन् मनाक् स्थितः ।
रावणः (विहस्य) रे रे मानव राम !

रामचन्द्रने तौ भी रावणके ऊपर प्रहार नहीं किया लज्जासे नम्र मुखकमलवाला थोडी देर स्थित हुआ । रावण (हँसकर बोला) अरे रे मनुष्य राम !

यो मया निहतो घोरे समरे तव पूर्वजः ।
अनरण्यः किमद्य त्वां व्यथयत्यथ लज्जितः ॥२४॥

मैंने जो पहिले तेरे पूर्वज अनरण्यको घोर संग्राममें माराथा क्या आज वह पीडा देता है ? और तू उससे लज्जित है ॥ २४ ॥

रामः--(निःशंकम्) रे रे राक्षसाधम पश्य !

न दूये नः पूर्वं नृपतिमनरण्यं यदवधी-
र्जयो वा मृत्युर्वा युधि भुजभृतां कः परिभवः ।
जितं मन्ये कारागृहविनिहतं हैहयपतेः
पुलस्त्यो यद्भिक्षामकृत कृपणं तद्व्यथयति ॥२५॥

(रामचन्द्र निःशंक होकर) अरे हे राक्षसोंमें अधम ! देख ! पूर्वमें जो तूने हमारे वृद्ध अनरण्यका वध किया था उससे मुझे कुछभी दुःख नहीं है क्योंकि-बलवान् राजाओंकी समरमें विजय होती है या मृत्यु होती है, युद्धमें भुजा उठानेवालोंका तिरस्कार कैसा ? अर्थात् बलवानोंकी पराजय नहीं होती और मैं जीते हुए तुझको तो कारागारमें बँधाहुआ मानता हूं जिस तेरी भीख दीन होकर पुलस्त्यजीने सहस्रबाहुसे मांगी थी वह भिक्षा मुझे पीडा देती है, अर्थात् भीखमें मांगे हुए तुझको वध करता हुआ मैं लज्जाको प्राप्त होता हूं ॥ २५ ॥

यो रामो न जघान वक्षसि रणे तं रावणं सायकैः
से श्रेयो विदधातु वस्त्रिभुवनव्यापारचिन्तापरः ।
हृद्यस्य प्रतिवासरं वसति सा तस्यास्त्वहं राघवो
मय्यास्ते भुवनावली विलसिताद्वीपैः समंसप्तभिः२६

इस रावणके हृदयमें प्रतिदिन वह जानकी वास करती है और जानकीके हृदयमें मैं निवास करताहूं और मुझे रामचंद्रमें सातों द्वीपोंके सहित चौदह भुवनोंकी पंक्ति विलास करती है । ऐसा विचार कर जिन महाराज रघुवंशी रामचन्द्रजीने बाणों करके रावणके हृदयमें प्रहार नहीं किया वह त्रिलोकीके व्यापारकी चिन्तामें तत्पर श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारा कल्याण करै ॥ २६ ॥

"स प्रौढरावणरुषा विहितावलेपः
सज्जो बभूव दृढसङ्गरबद्धदीक्षः ।
आपन्नभीतिहरणं व्यवसायिनां हि
प्राणास्तृणं विपुलसत्त्वसहायभाजाम् ॥ २७ ॥

" रावणके बढेहुए क्रोधकरके जिनको अहङ्कार प्राप्त हुआ है, समरकी दीक्षामें दृढ वह रामचन्द्रजी युद्ध करनेको कटिबद्ध हुए, यह ठीक है कि उपस्थित भयके दूर करनेके समय महापराक्रमरूप सहायवाले उद्योगी पुरुषोंके प्राण तृणकी समान होते हैं अर्थात् उद्योगी जन भयको दूर करनेके समय अपने प्राणोंको तृणकी समान समझलेते हैं ॥ २७ ॥

तत्र रामो रतिं लेभे न प्रियाविरहार्दितः ।
तत्सत्यं मनसि स्वस्थं रम्याणां रमणीयता" ॥२८॥

उस समय रामचन्द्रजी समरमें कुछ आनन्दको प्राप्त न हुए क्योंकि उस समय अपनी प्रिया सीताजीके वियोगमें क्लेशित हो रहे थे, यह बात ठीक है कि–सावधान चित्तमें ही मनोहर वस्तुकी रमणीयता जान पडती है अन्यथा नहीं " ॥ २८ ॥

बाणोऽयं मम ताटकात्मशिरसि स्नातः स्वसुर्नासिका-
प्राणायामपरः खरत्रिशिरसां हुत्वा दशास्याहुतिम् ॥
मारीचं च बलिं विधाय तदनु त्वाचम्य वारांनिधिं
भोक्तुं रावणमामिषं मृगयते भो दीयतां मैथिली॥२९॥

हे रावण ! यह मेरा बाण ताडकाके रक्तमें स्नान कर चुका है और तेरी बहिन शूर्पणखाकी नाक काटना रूप प्राणायाम कर चुका है, हे दशानन ! खर और दूषण, त्रिशिराकी आहुतिका हवन करके मारीचका बलिदान किया और तदनन्तर समुद्रमें आचमन करके अब रावणके मांसको खानेके लिये ढूँढता फिरता है सो तू अब भी सीताको देदे ॥ २९ ॥

रावणस्तथापि सावज्ञम्-

क्लीबानामेव युद्धेषु प्राणत्राणाय राम धीः ।
लज्जाप्रशान्त्यै संसत्सु मूर्खाणामिव मूकता ॥ ३० ॥

(रावण तौ भी अपमान करके) हे राम ! सभाओंमें मूर्खोंके गूंगे बनकर बैठनेकी समान समरमें प्राणोंकी रक्षाके लिये जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह बुद्धि नपुंसकपुरुषोंकी ही होती है वीरोंकी नहीं ॥ ३० ॥

(गगनमण्डलमवलोक्य-)

रे काल त्वमकाललब्धविभवः स्वैरं सकामो भव
शंभो भूषय नूतनैः शवशिरोमाल्यैर्निजाङ्गं मुहुः ।
किं च त्वं च विरिञ्च संचिनु जगत्सर्गाय बीजं क्वचित्
सन्नद्धः करवालभीषणभुजो युद्धाय लंकेश्वरः ॥ ३१ ॥

(आकाशकी ओरको देखकर) अरे हे काल ! तू आज अकालमें ही ऐश्वर्यको पाकर स्वच्छन्द और सन्तुष्ट हो जा अर्थात् आज सबको अकालमें ही मारडालूँगा । हे कल्याणरूप महादेव ! तुम भी आज नये २ मुण्डोंकी मालाओंसे दूसरीबार अपने शरीरको अलंकृत करो, भो ब्रह्मन् ! तू भी अन्य संसारकी रचनाके लिये किसी बीजको चुनले क्योंकि तलवारसे भयानक भुजाओंवाला लंकाधिपति रावण युद्धके लिये उद्यत है अर्थात् अब जगत्का बीज नाशकर डालूँगा ॥ ३१ ॥

राममाक्षिपति-

अद्य वा जानकी राम कामं पास्यति मन्दिरे ।
रणे वा दारुणो गृध्रो मधुरानधरान्मम ॥ ३२ ॥

(रामचन्द्रजीपर आक्षेपकरता है, रामचन्द्र क्या तो आज राजमहलमें जानकी ही मेरे अधरोंका पान करैगी या इस घोर संग्राममें गिद्धही मेरे मधुर अधरोंका पान करेंगे अर्थात् जो मैं जीतगया तौ

जानकीके साथ विहार करूँगा और जो हारा तो मुझे गृध्र भक्षण करेंगे ॥ ३२ ॥

तत्राशोकवनिकास्थितविमानमारुह्य जानकीं रामरावणयोर्युद्धं दर्शयति त्रिजटा सरमा च । मन्दोदर्यपि सुन्दरीपरिवृता लंकाचलशिखरमारुह्य पश्यति । रुद्रोपि समुद्रमध्ये एकेन चरणेनोपस्थितो युद्धं पश्यति । देवाःसर्वेविमानधिरूढानभोमण्डलगता युद्धं पश्यंतिस्म

त्रिजटा और सरमा उस अवसरमें अशोकवाटिकामें रक्खे विमानमें चढकर जानकीको रामचन्द्र और रावणका युद्ध दिखाने लगी। उधर मन्दोदरी भी सुन्दर सखियोंके साथ त्रिकूटाचलके शिखरके ऊपर चढकर देखने लगी शिवजी महाराज भी समुद्रमें एक चरणसे खडे होकर संग्रामको देखने लगे । समस्त देवगण भी विमानोंमें बैठ कर आकाशमण्डलमें आकर युद्धको देखने लगे ॥

रामः-संहारभैरव इव क्रोधं नाटयति ।

रे रे निशाचरपते त्वरितं गृहाण बाणासनं
त्रिदशदर्पहरं शरं च । निर्वापयामि विरहाग्निममुं
प्रियाया मन्दोदरीतरलनेत्रजलप्रवाहैः ॥ ३३ ॥

रामचन्द्रजी प्रलयकालमें भैरवकी समान क्रोधका नाट्य करतेहैं। रे रे राक्षसराज रावण! तू शीघ्रही देवताओंके अहंकारको नाश करनेवाले बाणोंको छोडनेवाले धनुषको ग्रहण कर और मैं आज मन्दोदरीके चपल चक्षुओंके जलोंके प्रवाहोंसे अपनी प्रिया जानकीकी वियोगरूप अग्निको शीतल करूँगा ॥ ३३ ॥

(इति बाणान् स्पृशति) मन्दोदरी (सभयम्)-

उत्पादयन्किमपि कौणपकोटिमन्त-
स्तेजोहुताशनसमिन्धनसामिधेनीम् ।

हस्ताढकीमकृत बालतरः पृषत्कै-
रीषज्जयं स्फुटमनेन दशाननोऽपि ॥ ३४ ॥

ऐसा कहकर बाणोंको छूते हैं) मन्दोदरी (डरकर) जिस समय ये रामचन्द्र बहुत बालकही थे उस समय बाणोंसे ताडकाके हृदयकी अग्निमें अनेक राक्षसोंका हवन करदिया और अब तो यह युवा और लघुहस्त हैं इस कारण रावणको सहजमेंही जीतलेंगे यह बडाही कष्ट है ॥ ३४ ॥

(रामभुजदण्डौ)

आकृष्टे युधि कार्मुके रघुपतेर्वामोऽब्रवीद्दक्षिणं
दानादानसुभोजनेषु पुरतो युक्तं किमित्थं तव ।
वामान्यःपुनरब्रवीन्मम न भीः प्रष्टुं जगत्स्वामिनं
छेत्तुंरावणवक्त्रपंक्तिमितियोदद्यात्सवोमंगलम् ॥३५॥

(रामचन्द्रजीकी दोनों भुजा) जिस समय रामचन्द्रजीने समरमें धनुषको खींचा उस समय बायाँ हाथ दायें हाथसे बोला कि-दान करनेके और किसी वस्तुको लेनेके और भोजन करनेके समय तो तुम अगाडी खडे रहते थे और अब पीछे क्यों हटते हो ? यह योग्य नहीं है ! ऐसा सुनकर दायाँ हाथ बोला कि-मुझको डर तो किसी बातका नहीं है परन्तु मैं रावणके मुखकी पंक्तियोंको काटनेके लिये जगन्नाथ रामचन्द्रजीसे पूँछता हूँ इस प्रकार कहता हुआ वह रामचन्द्रजीका हाथ सबका कल्याण करै ॥ ३५ ॥

कुशिकसुतसपर्यादृष्टदिव्यास्त्रमन्त्रो
भृगुपतिसहयोद्धा वीरभोगीनबाहुः ।
दिनकरकुलकेतुः कौतुकोत्तानचक्षु-
र्बहुमतरिपुकर्मा कौतुकी रामदेवः ॥ ३६ ॥

(रामचन्द्र) कुशिकनन्दन विश्वामित्रजीकी पूजासे दिव्य अस्त्र तथा मंत्रोंके देखनेवाले और महाराज परशुरामजीके साथ युद्ध करनेवाले वीरोंका भोग करनेके योग्य भुजाओंवाले, सूर्यवंशकी ध्वजारूप कौतुकसे ऊपरको नेत्र उठानेवाले और भलीभाँति विदित है शत्रुओंका पराक्रम जिनको ऐसे महाराज रामचन्द्रजी युद्ध करनेको चले॥३३॥

यद्रावणो बहुभिरेव भुजैः करोति
तद्राघवः प्रतिकरोति भुजद्वयेन ।
कर्मद्वयं यदपि तुल्यफलं तथापि
रक्षःपतेर्दशगुणं नरवीरतुल्यम् ॥ ३७ ॥

रावण जो कुछ कार्य बीस भुजाओंसे करता है उसका बदला श्रीरामचन्द्रजी अपनी दोही भुजाओंसे करतेहैं यद्यपि दोनोंके कर्मका फल समानहीहै तौभी रामचन्द्रजीके कर्मका फल निशाचरपति रावणसे दशगुणा अधिक है ॥ ३७ ॥

तत्र मन्दोदरी जानकी च–

रे रावणास्तमुपयातु सह त्वयार्कः
श्रीराघवे समरमूर्धि कृतप्रतिज्ञे ।
मन्दोदरी जनकजाऽस्तनगावलम्बि-
न्यर्के चकोरकवधूरिव चक्रवाकी ॥ ३८ ॥

(उस समय मन्दोदरी और जानकीजी) हे रावण ! आज यह सूर्यनारायण तेर साथ ही अस्तको प्राप्त होवै अर्थात् सूर्यके छिपनेपर तेरा नाश करदूँगा इस प्रकार संग्राममें रामचन्द्रजीके प्रतिज्ञा करनेपर जानकीजी और मन्दोदरी सूर्यनारायणके अस्ताचलके प्राप्त होनेके समय चकोरी और चक्रवाकी की समान हो गई ॥ अर्थात् जानकीजी चकोरीकी समान रात्रिका शुभागमन जान प्रसन्न हुईं क्योंकि–रावणकी मृत्यु हो जायगी और मन्दोदरी चकवीकी समान रात्रिका

आगमन जान विकलताको प्राप्त हुई क्योंकि-उसका पतिसे वियोग होगा ॥ ३८ ॥

रामः (रावणं प्रति)-

एकस्मिन्विनिपातितेऽपि शिरसि क्रोधोपशान्तिःकुतः
किंतु स्वानुनयाय मूर्धनि धनं दृष्टं न यत्रारिणा ।
त्वत्तो मूर्धबहुत्वतः फलमिदं सम्यङ्मया लभ्यते
छिन्नं छिन्नमवेक्ष्यराक्षसपतेस्वंदुर्नयं ज्ञास्यसि ॥ ३९ ॥

(रामचन्द्रजी रावणके प्रति) हे रावण ! वैरीका एक २ मस्तक काटनेसे क्रोधकी शान्ति कैसे होसकती है ? किन्तु अपने शिर-च्छेदनकी प्रार्थनाको करते हुए जब और कोई शिर नहीं रहा तब तुझ शत्रुने कुछ न देखा । आज तेरे बहुतसे मस्तकोंका फल मैंने प्राप्त किया है, सो हे राक्षसराज ! आज तू अपने शिरोंको छिन्न २ देखकर अपने खोटे कर्मको जानैगा ॥ ३९ ॥

(अत्यन्तद्रुततरं) श्रीरामबाणादिताडनव्यग्रो रावणः-

धनुर्निस्त्रिंशादिप्रहरणगलच्छेदकुपितो
दशास्यः स्वान्मूर्धो रघुपतिशरव्रातदलितान् ।
करैरेकैरेकैर्नभसि भृशमादाय युगपत्
क्षिपन्नन्यैरन्यैश्चपलयति दोर्विंशतिमपि ॥४०॥

बहुतही शीघ्र रामचन्द्रजीके बाणके ताडनसे घबडाकर रावण धनुषके तीव्र प्रहारसे छिन्न मस्तक होजानेके कारण क्रोधमें होता हुआ दशमुख रावण रामचन्द्रजीके बाणोंके समूहोंसे टुकडे २ हुए अपने मस्तकोंको देखकर शीघ्रही एकसाथ एक २ हाथसे आकाशमें उछलता हुआ बीसों भुजाओंको चलाता है ॥ ४० ॥

रामः (सावष्टम्भम्)

कल्पान्ते यत्कृतान्तैरिव वरसमरप्राङ्गणे रामचन्द्रो
बाणैरुत्तीर्णशाणैर्नवभिरपि दशग्रीवमूर्ध्नो नवैव ।

चिच्छेदालोक्य भूयः स पुनरपिनवान्विस्मितः सन्मुहूर्तं विश्रम्यागस्त्यदत्तं तदनु रिपुवधायाददे ब्राह्ममस्त्रम् ४१

(रामचंद्रजी क्रोधमें होकर) प्रलयके समय यमराजकी समान सुन्दर समर भूमिमें रामचन्द्रजी शान धरे हुए नौ बाणों करके रावणके जिन नौ माथोंको काटते हुए फिर उन्हीं मस्तकोंको नये निकले देख आश्चर्यमें होकर क्षणमात्रको विश्राम लिया फिर शत्रुके नाश करनेके लिये अगस्त्यके दिये ब्रह्मास्त्रको उठाया ॥ ४१ ॥

पैतामहं रघुपतिः समरेऽतिकोपा-
द्बाणं मुमोच हृदये दशकन्धरस्य ।
भित्त्वा स तद्धृदयशोणितशोणगात्रः
प्राणान्विवेश धरणीतलमस्य नीत्वा ॥ ४२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने समरमें उस ब्रह्मास्त्रको लेकर बडे क्रोधसे रावणके हृदयमें प्रहार किया। यह अस्त्रभी रावणके हृदयको विदीर्ण कर रक्तसे गीले देहवाला होकर रावणके प्राणोंको लेताहुआ पृथ्वीतलमें घुसगया ॥ ४२ ॥

मन्दोदरी सकलसुन्दरसुंदरीभिःपरिवृता गलदविरलनेत्रजलप्रवाहैःसीतापतेर्विरहानलेन सह लंकापतेः प्रतापानलं निर्वापयन्ती हाहाकारं घोरफूत्कारैः कुर्वन्ती झटिति त्रिकूटाचलादुत्पत्य समरभूमौ महानिद्रां गतस्य निजप्राणनाथस्य लंकापतेश्चरणकमलयोर्निपत्य ॥

मन्दोदरी—सम्पूर्ण सुन्दर स्त्रियोंसे घिरकर सघन नेत्रजलके प्रवाहोंसे जानकीपति रामचन्द्रजीकी वियोगाग्निके साथ लंकाधिपति रावणके प्रतापकी अग्निको शीतल करती हुई भयानक शब्दोंसे हाय ! हाय ! ऐसा करती शीघ्रही त्रिकटाचलके ऊपरसे उतरकर

संग्रामभूमिमें आई और घोरनिद्राको प्राप्त हुए अपने प्राणपति लंकेश्वर रावणके चरणोंमें गिरकर ॥

भिन्नैरावतबन्धुसिन्धुरशिरःसंपातिभिर्मौक्तिकैः
शश्वद्विश्वजयप्रशस्तिरचनावर्णावलीशिल्पिने ।
नाकान्तःपुरिकाकपोलविलसत्काश्मीरपत्राङ्कुर-
श्रीविन्यासविनाशभीषणभुजस्तम्भायतुभ्यंनमः ४३

विंधे हुए ऐरावत आदि हाथीके मस्तकोंसे गिरते हुए मोतियों करके निरंतर विजयकी प्रशंसाकी अक्षरावलीके शिल्पी स्वर्गके अन्तःपुरकी स्त्रियोंके कपोलोंमें शोभा देती, केसरके पत्रोंके अंकुरोंकी शोभाके विन्यासका विनाश करनेके निमित्त भयानक भुजदण्डवाले तुमको नमस्कार है ॥ ४३ ॥

हा प्राणनाथ लंकेश !

भूयिष्ठानि मुखानि चुम्बति भुजैर्भूयोभिरालिङ्ग्यते
चारित्रव्रतदेवतापि भवता कान्तेन मन्दोदरी ।
हा लम्बोदरकुम्भमौक्तिकमणिस्तौमैर्ममैकावली-
शिल्पे वागधमर्णिकस्य भवतो लंकेन्द्रनिद्रारसः॥४४॥

हे प्राणनाथ लंकापते ! यह मन्दोदरी तुम्हारे बहुतसे मुखोंका चम्बन करती है, और पतिव्रता मन्दोदरीको आपने बहुतसी भुजाओंसे आलिंगन किया था; हे स्वामिन् ! मेरे गलेका हार बनानेके लिये गणेशजीके गण्डस्थलसे मोती लानेकी प्रतिज्ञा करके ऋणके चुकाये विनाही आप कैसे सो गये ? ॥ ४४ ॥

एकेनैव समुद्धृतो हरगिरिर्द्राभ्यां त्रिलोकी जिता
यस्याष्टादशभिर्भुजैरवसरः शस्त्रस्य नासादितः ।
सोप्येनं द्विभुजं मनुष्यमहह क्रव्यादवीरो रिपुं प्राप्य
व्यर्थभुजो रणे विनिहतो देवाय तस्मै नमः ॥४५॥

आश्चर्य है कि जिस रावणने अपने एक बाहुसे तो कैलासपर्वतको उठाया और दो भुजाओंसे तीनों लोकोंको जीतलिया, तथा जिसकी १८ भुजाओंको तो शस्त्र पकडनेका समय ही नहीं मिला ऐसा राक्षसराज रावण वीर भी इन दो भुजावाले मनुष्य शत्रुओंको प्राप्त होकर भुजाओंके बलके व्यर्थ होनेसे नष्ट हो गया। आहा! दुर्घट घटना करनेवाले उस प्रारब्धको ही नमस्कार है ॥ अर्थात् प्रारब्धकी बडी विलक्षण गति है ॥ ४५ ॥

जातिर्ब्रह्मकुलेऽग्रजो धनपतिर्यः कुम्भकर्णोऽनुजः
पुत्रः शक्रजयी स्वयं दशशिराः पूर्णा भुजा विंशतिः।
दैत्याः कामचरा रथश्च विजयी पारेसमुद्रं गृहं सर्वं
निष्फलितं तथैव विधिना दैवे बले दुर्बले ॥ ४६ ॥

जिसकी ब्राह्मण जाति, कुबेर बडा भाई, कुम्भकर्ण छोटा भ्राता, पुत्र इन्द्रको जीतनेवाला, और अपने आप दशमुख और पूर्ण बीस भुजावाला, इच्छाचारी, दैत्य जिसके सेवक, जिसका रथ विजय प्राप्त करनेवाला और समुद्रके पार जिसका घर ऐसे रावणका भी सकल ऐश्वर्य प्रारब्धके दुर्बल होनेसे विधाताने निष्फल कर दिया ॥ ४६ ॥

कालेन विश्वविजयी दशकन्धरोऽभू-
द्दुर्गाचलोद्धरणचञ्चलकुण्डलाग्रः।
संस्कारमग्निदहनाय स एष काल-
श्चाज्ञां विना रघुपतेः प्लवगैर्निरुद्धः ॥ ४७ ॥

कैलासके उठानेमें चलायमान कुण्डलोंवाला यह रावण एक समय विश्वकी विजय करनेवाला हुआ था, आज वह समय है कि—अग्निमें दाह करनेके लिये श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा न पानेतक वानरोंने उसको रोकरक्खा है ॥ ४७ ॥

दुर्गं त्रिकूटः परिखा समुद्रो रक्षांसि
योधा धनदश्च वित्तम् । संजीविनी यस्य
मुखाग्रविद्या स रावणः कालवशाद्विनष्टः॥४८॥

जिसका किला चित्रकूटाचल पर्वत, खाई समुद्र, राक्षस योधा, धन साक्षात् कुबेर, और जिसके मुखमें संजीविनी विद्या थी, ऐसा रावणभी कालके वशमें आकर आज नाशको प्राप्त होगया ॥ ४८ ॥

इह खलु विषमः पुराकृतानां
भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाकः ।
शिवशिरसि शिरांसि यानि रेजुः
शिव शिव तानि लुठन्ति गृध्रपादैः॥४९॥

यह बात निश्चयही है कि-इस संसारमें पहिले कियेहुए कर्मोंका विषम फल मनुष्योंको अवश्यही भोगना पडता है । रावणके शिर शिवाजी महाराजके मस्तकपर सुशोभित हुए थे-वही शिर अत्यन्त शोककी वार्ता है कि-आज गृध्रोंके पैरोंमें लोटते हैं ॥ ४९ ॥

ततो लक्ष्मणवायुपुत्रौ विमाने जानकीमा-
रोप्य सत्वरमानीतवन्तौ ॥

तदनन्तर-लक्ष्मणजी और हनूमान्जी जानकीजीको विमानमें बैठाकर शीघ्रही लेआये ॥

(जानकी ससंभ्रममुत्थाय लज्जां नाटयति) रामः-

जनकतनयां हृत्वा रागी हते दशकन्धरे
तदनु विरहज्वालाजालाकुलीकृतविग्रहः ।
रघुपरिवृढो नाधो नोर्ध्वं न तिर्यगवेक्षते
मुकुलितदृगम्भोजद्वन्द्वः समाहितवत्स्थितः॥ ५० ॥

(सीताजी घबडाहटके साथ उठकर) लज्जाका नाटन करती हैं रामचन्द्र जानकीको हरण करनेवाले रावणका वध कर, प्रेमी रामचन्द्र

तदनन्तर वियोगाग्निकी ज्वालाओंके समूहसे व्याकुल शरीरवाले भी थे, तब भी नीचे ऊपर व इधर उधरको न देख दोनों नेत्रकमलोंको मूँदकर ध्यानमें बैठेहुएसे स्थित होगये ॥ ९० ॥

(साश्रु स्ववंश्यपरिजनलज्जया च) हनूमान्–मातर्जानकि !

चापालिङ्गनभंगुराङ्गमदनन्यस्तैकहस्ताम्बुजं
मध्ये मुष्टिनिविष्टपञ्चकशरं बिभ्राणमन्यत्करे ।
वीरश्रीनखरक्षतैरिव नवैर्बाणव्रणैरङ्कितं वीरं
राममवस्थितं प्रणम तं प्रोन्मथ्य लंकाभटम् ॥९१॥

आँसू भरकर अपने कुटुम्बीजनोंकी लज्जासे हनूमान्जी–हे माता जानकीजी ! एक हाथमें बीचमेंसे धनुषके धारण करनेसे तिरछे शरीर होनेके कारण कामदेवकी समान और दूसरे हाथकी मुट्ठीमें पंचक शर (पाँचबाण) धारण करे वीरोंकी विजयलक्ष्मीके नक्षत्रोंकी समान नये २ बाणोंके व्रणों करके अंकित शरीरवाले यह रामचन्द्रजी लंकाके योधा रावणका विनाश करके खडे हैं,इनको तुम प्रणाम करो ॥९१॥

जानकी–स्वगतम्–

तापच्छेदसुधामुरस्तनुमतां क्रोधानलाम्भोधरः
सारासारविवेकशोकभवनं हर्षस्य बीजाश्रयः ।
कालव्यालविषस्य गारुडमणिर्धैर्यद्रुमो रामभूः
कैवल्यप्रतिभूर्घटेत सुकृतैरामस्य सत्संगमः ॥९२॥

जानकीजी (मनमेंही) देह धारण करनेवालोंके तापका नाश करनेके निमित्त चन्द्रमारूप, क्रोधाग्निके शान्त करनेके लिये मेघरूप, सार और असारका ज्ञान तथा शोकके स्थान आनन्दके बीजका आश्रय, कालरूप साँपके विषको दूर करनेके निमित्त गारुडमणि, धैर्यके वृक्ष, और मोक्षकी अमरभूमिके सदृश, कल्याणकारी अर्थात मोक्षके दाता श्रीरामचन्द्ररूप पृथ्वीका किसी पुण्यात्माजनोंके साथही संगम होता है ॥ ९२ ॥

इति रघुपतेश्चरणकमलयोःशिरोमधुकरेण मकरन्द-मनुभवितुमिच्छति ॥

ऐसा कहकर निजमस्तकरूप भ्रमरके द्वारा रामचंद्रजीके चरणकमलोंके मकरन्दका अनुभव करनेकी इच्छा करती हैं ॥

राम उपसृत्य-साशंकम्-

हे महान्तो जनाः यद्यपि प्रिया पतिव्रता तथापि चिरं परमन्दिरस्था दिव्यमन्तरेण कथं मां स्प्रष्टुमर्हति । इत्याकर्ण्य रामवाक्यादाकाशादवतरन्ति स्म ब्रह्मादयः । ततो जानकी दिव्योपकरणं नाटयति ॥

रामचंद्रजी-हटकर (शंकासे) हे महानुभाव पुरुषों ! यद्यपि हमारी प्रिया सीता पतिव्रता है तथापि विना परीक्षाके मुझे कैसे छू सकती है ? क्योंकि-बहुत कालतक दूसरे पुरुषके घरमें रही है यह सुन रामचन्द्रके कथनसे ब्रह्मा आदिक सब देवता उतरे-फिर जानकीजी शपथका नाट्य करती हैं ॥

तत्र रामो रतिं लेभे न प्रियाविरहार्दितः ।
यत्सत्यं मनसिस्वच्छेरम्याणां रमणीयता ॥५३॥

रामचन्द्रजी स्त्रीके विरहमें व्याकुलभी थे तो इस काममें सन्तुष्ट न हुए यह ठीकही है कि-मनके स्वच्छ होजानेपर सुन्दरोंमें सुन्दरता दीखती है ॥ ५३ ॥

जानकी-

(सत्वरं ज्वलत्पावकमुपगम्य भो भगवन् अग्ने !)
मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमार्गे
यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि ।
तदिह दह ममाङ्गं पावकं पावक त्वं
सुललितफलभाजां त्वं हि कर्मैकसाक्षी ॥५४॥

जानकीजी शीघ्रतासे-(प्रदीप्त अग्निके समीप जाकर हे भगवन् अग्ने !) मनमें, वचनमें, देहमें, जागतेमें वा शयन करतेमें यदि मेरा पतिभाव श्रीमहाराज रामचन्द्रजीसे और किसी पुरुषमें हुआ हो तो हे अग्निदेव ! आप शरीरको इसी स्थानमें भस्मीभूत करदो क्योंकि- भली भांति सुन्दर फल भोगनेवालोंके कर्मके तुमही एक साक्षी हो ५४

इति ज्वलत्तीव्रदहनान्तराले देहं चिक्षेप।

यह कहकर जलतीहुई तीव्र अग्निमें अपने शरीरको गिरादिया !

अथ वानरभटाः-

सत्यं कालहुताशनस्य वहतो जिह्वातिलीलासर-
स्यंगारे सरसीरुहं कमलभूरालोक्य सीताननम्।
शुद्धेयं जनकात्मजेत्यभिदधौ तावन्नु कीशेश्वरैः
फूत्कारखैरपूरि रभसा तावन्नभोमण्डलम् ॥५५॥

(ऐसा होनेपर वानर योधा) जबतक ब्रह्माजीने यथार्थ निर्णयको धारण करनेवाले कालाग्निकी ज्वालाओंके क्रीडासरोवरके अंगारोंमें सीताजीके आननको कमलके तुल्य देखकर यह जनकनन्दिनी जानकी पवित्र है ऐसा कहा तबतक वानरराज सुग्रीवादिकोंके वेगके फूँ फूँ शब्दों करके आकाशमण्डल व्याप्त होगया ॥ ५५ ॥

श्रीरामः-सानन्दम्-

वह्निं गताया जनकात्मजायाः
प्रोत्फुल्लराजीवमुखं विलोक्य।
उवाच रामः किमहो सुरादी-
नङ्गारमध्ये जलजं विभाति ॥ ५६ ॥

(रामचन्द्र आनन्दसे) अग्निके मध्यमें स्थित जानकीके खिले-हुए कमलकी समान मुखको देखकर रामचन्द्रजीने देवतादिकोंसे पूछा कि-ओहो ! क्या यह अंगारोंके बीचमें कमल शोभा पारहा है ? ॥ ५६ ॥

(जानकी सानन्दम्)

श्रीरामे दयिता विनोदविपुलप्रीतिप्रभूतीभव-
त्प्रस्वेदाम्बुकणावृतस्य कमले दिव्योत्थिता जानकी ।
आगम्याशु ससंभ्रमं बहुतरां भक्तिं दधाना पुनस्तत्पादौ
मणिकंकणोज्ज्वलकरा नैव स्पृशत्यद्भुतम् ॥ ५७ ॥

(जानकी आनन्दसे) श्रीरामचन्द्रजीके मुखकमल जानकीके विनोदसे अत्यन्त प्रीतिके पात्र, पसीनेके जलके किनकोंसे आच्छादित होनेपर शपथसे निकली हुई बडी भक्तिको धारण करती हुईभी जानकीजीने फिर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंको नहीं छुआ क्योंकि उनके हाथ मणि और कंकणोंसे प्रकाशित होरहेथे यह विचित्र आश्चर्य हुआ ॥ ५७ ॥

अहल्यावच्चरणस्पर्शमात्रेण कंकणमणयोपि योषितो माभूवन्निति भावः ।

(अहल्याकी भाँति रामचन्द्रजीके चरणोंके स्पर्शसे यह कंकणकी मणियें कहीं स्त्री न होजायँ ?)

सुग्रीवो रामं विज्ञापयति देव !-

इयमियं त्वयि दानवनंदिनीत्रिदशनाथजितःप्रसवस्थली
किमपरं दशकन्धरगेहिनी त्वयिकरोति करद्वययोजनम् ।

(सुग्रीव रामचन्द्रजीसे कहते हैं कि हे देव ! इन्द्रविजयी मेघनादकी माता दानवनन्दिनी रावणकी स्त्री यह मन्दोदरी हाथ जोडकर आपके सामने उपस्थित है ॥ ५८ ॥

रामो नम्राननो भूत्वा-

(किमाज्ञापयति महाभागा मन्दोदरी)

रामचन्द्रजी (नीचेको मुख करके) महाभागा मन्दोदरीकी क्या आज्ञा है ।

---

(१) दोहा-गौतम तियकर सुरति कर, नाहिं परसति पद पानि ।
मन बिहँसे रघुवंशमणि, प्रीति अलौकिक जानि ॥ १ ॥

मन्दोदरी–

धन्या राम त्वया माता धन्यो राम त्वया पिता ।
धन्यो राम त्वया वंशः परदारान्न पश्यसि ॥ ५९ ॥

(मन्दोदरी) हे रामचन्द्रजी ! आपकी माताभी आपके होनेसे धन्य है । हे रामजी ! आपके पिताभी आपसे धन्य हैं और हे रामजी ! आपसे रघुकुलभी धन्य है क्योंकि आप दूसरे पुरुषोंकी स्त्रियोंको नहीं देखते हो ॥ ५९ ॥

साधु राम साधु अतः परं मम का गतिः ।

हे रामचन्द्रजी महाराज ! आपको धन्य है धन्य है ! इसके अनन्तर मेरी क्या गति होगी ?

रामः–

महाभागे न खलु राक्षसीनां सहगमने धर्मः । अतस्त्वया विभीषणालयमास्थाय लंकाचले राज्यं चिरायभुज्यतामिति । विभीषणं लंकाधिपत्याभिषेकं नाटयति । ततो रामः आत्मानं पुष्पकविमाने जानकीं चारोप्य समरभूमिं दर्शयति प्रिये ! जानकि ! पश्य ।

रामचन्द्रजी–हे महाभागे ! यह ठीक समझो कि राक्षसियोंके सहगमनमें धर्म नहीं है इसकारण तुम विभीषणके घरमें रहकर लङ्कामें चिरकाल तक राज्य भोगो । यह कहकर विभीषणको लंकाका राज्य देनेका नाटच करते हैं पुनः श्रीरामचन्द्रजी पुष्पक विमानमें बैठे और जानकीको भी उसमें बैठाकर समरभूमिको दिखाते हैं । हे प्रिये जानकी ! देखो ।

अत्रासीत्फणिपाशबन्धनविधिः शक्त्या भवद्देवरे
गाढं वक्षसि ताडिते हनुमता द्रोणाद्रिरत्राहृतः ।
दिव्यैरिन्द्रजिदत्र लक्ष्मणशरैर्लोकान्तरं प्रापितः
केनाप्यत्र मृगाक्षि राक्षसपतेः कृत्ता च कण्ठाटवी ६० ॥

यहाँ हम सब नागपाशमें बँधे थे। यहां तुमारे देवर लक्ष्मणके हृदयमें शक्तिसे घोर प्रहार होनेपर हनूमान्‌जी द्रोणाचल पर्वतको लाये थे। यहाँ इन्द्रको पराजित करनेवाला मेघनाद लक्ष्मणजीके दिव्य बाणोंसे परलोकको गया और हे मृगनयनी! यहांपर किसीने राक्षसराज रावणके कण्ठोंको काटा था अर्थात्-यहाँ मैंने रावणका वध किया ॥ ६० ॥

हन्तीति ज्वलितः कृशः कपिरपि व्रीडावनम्राननो
लीलालंघितवाहिनीपतिरिति श्लाघाचलत्कन्धरः।
रामस्यायमितीर्ष्यया कलुषितः पश्यन् प्रिये त्वत्कृते
विक्रामत्यनिलात्मजे दशमुखः कां कामवस्थां गतः ६१

जब रावणने यह सुना कि-एक दुबला वानर प्रज्वलित होकर सबका नाश कर रहा है तब तो नीचेको मुख कर लिया और वानरने खेलमें ही समुद्रको लाँघलिया यह सुन रावणने ईर्षासे मलिन होकर देखा, हे प्रिये! तेरे निमित्त हनूमान्‌के पराक्रम करनेपर रावणकी न जाने क्या क्या दशा हुई ॥ ६१ ॥

जानकी (सविस्मयम्)-

भो प्राणनाथ तथाविधात् वनान्तात् कथमिहागतः।

जानकी (आश्चर्यके सहित) हे प्राणपते! उस दण्डकारण्य वनसे आप यहाँ कैसे आगये? ॥

रामः (सहर्षं) प्रिये जानकी!

निवासः कान्तारे प्रियजनवियोगाधिरधिको
धनुर्मात्रत्राणं रिपुरपि धुरीणः पलभुजाम्।
अकूपारंपारे वसति च स कात्र प्रतिकृतिर्न-
मित्रं सुग्रीवो यदि तदियती राघवकथा ॥ ६२ ॥

रामचन्द्र-(हर्षके साथ) हे प्रिये जानकि! वनमें रहना, प्रियजनके वियोगसे मनमें अत्यन्त पीडा, केवल एक धनुषही रक्षा

नेवाला और मांसभक्षी राक्षसोंमें अग्रणी रावणसा शत्रु तथा उसका भी समुद्रके पार स्थान, फिर यहाँ पर क्या उपाय होसक्ता था, परंतु जो सुग्रीव हमारे मित्र न होते तौ मुझ रामचन्द्रकी इतनीही कथा रहजाती कि–राजा दशरथके पुत्र रामचन्द्रको वनवास हुआ था और उनकी प्यारी स्त्री जानकीको रावण चुरा ले गया ॥ ६२ ॥

(अत्रांतरे चन्द्रोदयो बभूव) रामः–देवि !

इस ही अवसरमें चन्द्रमा निकल आया। रामचन्द्रजी बोले कि–हे देवि!

पश्योदेति वियोगिनो दिनमणिः शृंगारदीक्षामणिः
प्रौढानङ्गभुजङ्गमस्तकमणिश्चण्डीशचूडामणिः ।
तारामौक्तिकहारनायकमणिः कन्दर्पसीमान्तिनी-
काञ्चीमध्यमणिश्चकोरतरुणीचिन्तामणिश्चन्द्रमाः ६३

विरही मनुष्योंको सूर्य समान तापदाता, शृंगारकी दीक्षाका मणि, बढते हुए कामदेवरूप साँपके माथेका मणि, शिवापति शिवजीका चूडामणि, तारारूप मोतियोंके हारकी नायकमणि, कामकी रमणीके कांचीके मध्यका मणि और चकोरकी स्त्रीको चिन्तामणिरूप यह चन्द्रमा उदित होता है ॥ ६३ ॥

प्राचीनस्मृतविरहव्यथातिभीतः
काकुत्स्थः कृतकुतुकाक्षिमीललीलः ॥
सम्पूर्णे शशिनि चिराय लग्नदृष्टेः
प्रेयस्याः स्थगयति लोचने कराभ्याम् ॥ ६४ ॥

प्राचीन वियोगको स्मरण कर पीडासे डरपोक हुए रामचन्द्रजी क्रीडाहीसे नेत्रोंको मींचने लगे और पूर्ण चन्द्रमामें चिरकालतक दृष्टिको लगानेवाली प्रिया सीताजीके नेत्रोंको हाथोंसे ढकलिया अर्थात् जब सुवर्णका मृग देखा तो उसको लानेके निमित्त भेजने पर इतना वियोग हुआ अब कहीं चन्द्रमण्डलके मृगको मांगा तो न जाने कबतकका वियोग हो इस भयसे नेत्र मूंद लिये ॥ ६४ ॥

(अत्र रात्रौ सुखसुप्ताः सर्वे यथास्थानं प्रातरागत्य)

यहाँ रातमें सुखसे सोये हुए सब प्रातःकालके समय यथास्थान पर आकर

विभीषणः रामपादौ प्रणम्य देव-

किंकुर्वाणपयोधिसेवितगृहोद्याना मुदे सर्वतो
लंकेयं रघुवंशविक्रमकथाबीजप्ररोहस्थली ।
देवेनात्र दशाननस्य दशभिश्छिन्नैः शिरोभिः क्रमा-
देकैकेन शतं शतं शतमखस्यामोदिता दृष्टयः ॥६५॥

विभीषण श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंको प्रणाम करके हे भगवन् ! अज्ञाकारी समुद्रसे जिसमें घर और बगीचे सेवित हैं और आपके पराक्रमकी कथाके बीजोंकी उत्पत्तिस्थान यह लंका नगरी क्या आनंद देनेवाली नहीं है अर्थात् है ही और आपने यहां दशानन रावणके कटेहुए दश शिरोंसे क्रमसे एक २ शिर करके इन्द्रकी सौ सौ दृष्टियोंको तृप्त करादिया ॥ ६५ ॥

रामस्ततस्तत्कालयोग्योपकरणैश्छत्रचामरादिभि-
र्विभीषणं संभाव्य पुनरयोध्यां राज्यभोगाय प्रस्थितः ॥

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने समयके योग्य छत्र चामर आदि करके विभीषणका सत्कार किया और फिर राज्य भोगनेके लिये अयोध्याको चलदिये ॥

तत्र सुग्रीवः देव !

वाजिव्रातखुरप्रहारदलितक्षोणीरजोभिर्युतं
सान्द्रैर्जीर्णकपोतकण्ठरुचिभिर्व्योमेदमास्तीर्यते ।
किञ्चानेककरीन्द्रगण्डविलसद्दानाम्बुधाराघनं
संग्रामं प्रथयन्त्यमी परिमलप्रोद्गारिमन्दानिलाः ६६॥

(तब सुग्रीव) हे भगवन् ! सघन और जीर्ण कबूतरके कंठकी समान कान्तिवाले घोडोंके समूहोंके खुरोंके प्रहारोंसे खुदी हुई पृथ्वीकी धूलियों करके वह आकाश ढकाजाता है और अनेको हाथियोंके गण्डस्थलोंसे

निकलते हुए मदरूप जलकी धाराओं करके मेघकी समान यह सुगन्धके उडानेवाले मन्द २ पवन संग्रामको प्रसिद्ध करते हैं ॥६६॥

ततः समुद्रे सेतुमासाद्य जानकी भो प्राणनाथार्यपुत्र !-

दृष्टोऽयं सरितांपतिः प्रियतम क्वास्ते स सेतुः परं
क्वेति क्वेति मुहुर्मुहुः सकुतुकं पृष्टे परं विस्मिते ।
अत्रासीदयमत्र नात्र किमिति व्यग्रे निजप्रेयसि
व्यावृत्तास्यसुधानिधिःसमभवन्मन्दस्मिताजानकी६७

(तदनन्तर समुद्रमें सेतुके समीप आकर) जानकीजी-हे प्राणनाथ! आर्यपुत्र ! यह समुद्र तौ मैंने देखा परन्तु हे प्रियतम ! वह सेतु कहां है कहां है कहां है इस प्रकार बार बार कौतुकसे श्रीजानकीजीके पूछनेपर रामचन्द्रजीने कहा कि-यहां था फिर तहां न देखकर ये क्या हुवा इस प्रकार व्यग्रचित्त हुई प्यारी जानकीका चन्द्रसमान मुख हाथसे ढकलिया और जानकीजी मुसकुराईं ॥ ६७ ॥

मुखदर्शनक्षुब्धजलधिकल्लोलैराच्छादितस्य सेतोः प्रकटनाय मुखव्यावृत्तिरिति भावः ॥

चन्द्रसमान मुखके दर्शनसे क्षोभको प्राप्तहुए समुद्रकी लहरोंसे ढकेहुए पुलको प्रकट करनेके निमित्त मुखको ढँका यह अभिप्राय है ॥

स्नात्वा पीत्वा दरीभिर्जलधिमथ चिराद्दृष्टमैनाकबन्धु-
प्रीतिप्रौढाशुपूरद्विगुणमहिमभिर्निर्झराः पूरयन्तः ।
ये विन्यस्ताः पुरस्तान्निशिनिशिनिवहैरौषधीनां ज्वलद्भि-
स्तेदृश्यन्तेतदम्भःस्थितकपिशिबिरस्मारिणःसेतुशैलाः

हे सीते ! जिस स्थानमें स्नान और जलपान करके गुफाओंमें बैठे जहांसे कि--मैनाक पर्वतके बन्धुओंको देखनेसे उनकी शोभा वृद्धिको प्राप्त होरहीथी और पानीके झरनोंसे स्रोतोंको व्याप्त किया और जहां हरेक रात्रिमें जलतीहुई औषधियोंके दीपक जलते दिखाइ

देते हैं वह यह सामनेही सागरके जलमें वानरोंकी छावनियोंको याद करनेवाले सेतुके पर्वत दिखाई देते हैं ॥ ६८ ॥

यदा दूरापातित्रिदशयुवतीनेत्रसुलभा-
मपां हर्तां हारावलिवलयलक्ष्मीं वितनुते ।
तदायं माणिक्यस्फटिककनकाश्मशिखरै-
रशून्यात्मा सेतुर्विभवति महानाटक इव ॥६९॥

जिस समय समुद्र दूरसे आनेवाली देवयोषिताओंके नेत्रोंको सुलभ हारावलीरूप कंकणकी लक्ष्मीका विस्तार करताहै उस समय माणिक्य स्फटिक स्वर्णके पाषाणोंके शिखरों करके अशून्यात्मा यह सेतु महानाटककी समान सुशोभित होताहै ॥ ६९ ॥

जगाम रामः सह सीतया स्वां पुरीमयोध्यां सह
वानरेन्द्रैः ॥ प्रत्यागतैस्तैर्भरतादिभिश्च राज्येऽभि-
षिक्तो मुनिभिश्चिराय ॥ ७० ॥

सीताजीके साथ और वीर वानरोंके साथ श्रीरामचन्द्रजी अपनी अयोध्या पुरीको गये । तदनन्तर उनको लेनेके निमित्त आयेहुए भरत आदि बान्धव और मुनियोंने मिलकर चिरकालको अयोध्यामें राज्याभिषेक करदिया ॥ ७० ॥

हित्वैकां हरशेखरप्रणयिनीं पीयूषभानोः कलां
दिक्पालावलिमौलिभूषणमणीन् गृह्णीत सर्वानपि ।
तैः कांची रचिता चिराय बहुशः श्रोणीतटे जानकी
गायन्ती निजमंजुशिञ्जितगिरा त्वद्विक्रमाडम्बरम् ७१

श्रीरामचन्द्रजीने एक शिवजी महाराजके मस्तकमें स्थित चन्द्रमाकी कलाको छोडकर दिक्पालोंके माथोंके सम्पूर्ण मणियोंको लेकर उनकी तगडी बना जानकीजीके कटितटमें पहिनाई उस समय चिरकाल पर्यन्त मनोहर वांणीसे वह जानकी रामचन्द्रजीकी भुजाओंके पराक्रमको गातीरही ॥ ७१ ॥

अङ्गदः-

अकस्मात् वानरभटेभ्यः समुत्पत्य पितृहन्तारमव-
लोक्य दोस्तम्भास्फालकेलिमभिनीय क्रोधं नाट्यति॥

(अंगदजी) अकस्मात् ही वानर योधाओंमेंसे उठकर पिताका वध करने वाले रामचंद्रको देख भुजदण्डोंको ताडन करके क्रोधका नाट्य करते हैं ॥

रामचन्द्र त्वयादिष्टं यद्यत्तत्तन्मया कृतम् ॥
यत्त्रैलोक्यनाथोसि न च त्याज्यं गुरोर्वचः ॥ ७२ ॥

हे रामचन्द्रजी ! आपने जो जो मुझसे कहा सो सो मैंने सभी कुछ किया क्योंकि आप त्रिलोकीके स्वामी हो ! परन्तु मैं अपने पिताके वैरको कभी नहीं भूलूँगा ॥ ७२ ॥

पश्य श्रीरामचन्द्र त्वदभिमतमहो लक्ष्मणेनापि पूर्णं
तूर्णं रङ्गावतारेऽवतरतु स भवानाहतो येन तातः ।
सुग्रीवेणाञ्जनेयप्रमुखभटचमूचक्रवालेन सार्द्धं
त्वामेकेनाङ्गदोहं पितृनिधनमनुस्मृत्यमश्नामिदोष्णा७३

हे रामचन्द्रजी ! तुम्हारे प्रियकार्यकर्ता लक्ष्मणजी करके पूर्ण इस संग्राम भूमिमें जिसने मेरे पिताको मारा है वह और हनूमान् आदि वानरोंकी सेनाके समूहके साथ शीघ्र आवें मैं अकेला अंगद ही अपने पिताके मृत्युके वैरको स्मरणकर अपनी बाहुओंसे तुम्हें मथडालूँगा ७३।

श्रुत्वाङ्गदस्य महतीं समरप्रतिज्ञां
ते चुक्षुभुः कपिचमूपतयः सरामाः ।
सौमित्रिरप्यनपराधिनमाहतं तं
मत्वा कृतांजलिपुटः पुरतो बभूव ॥ ७४ ॥

अंगदकी ऐसी प्रबल समर प्रतिज्ञाको सुन रामचन्द्रजी और वह समस्त वानर सेनाके स्वामी क्षोभको प्राप्त हुए परन्तु लक्ष्मणजीने उस निरपराध बालीको मारागया जान हाथ जोडकर अंगदके सन्मुख आये ॥ ७४ ॥

तदा च-

आकाशवाण्यभवदेवमहो स वाली
दासो हनिष्यति पुनर्मथुरावतारे ।
श्रुत्वा विलोक्य रघुनन्दनवानराणां
कारुण्यमञ्जलिपुटं स रणान्निवृत्तः ॥ ७५ ॥

उस समय-आकाशवाणी हुई कि-हे अंगद ! जब मथुरापुरीमें कृष्ण अवतार होगा तब वाली ही व्याधका रूप धारण करके इन रामचन्द्रजीका वध करैगा, यह सुनकर रामचन्द्रजीको और वानरोंके दीनवृत्तिसे स्थित तथा अंजालि बाँधे देखकर अंगदने संग्राम करनेका मानस त्यागदिया ॥ ७५ ॥

अंगदः-

पितृवधप्रतीकारो भविष्यतीति सानन्दं कोपमपहाय शान्तिमेत्य रामं स्तौति ॥

अंगद-कृष्णावतारमें पिताजीका बदला होगा ऐसा सुन (हर्षसे) क्रोधको त्याग-शान्तिको प्राप्त होकर श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करते हैं॥

देव-

अकर्णमकरोच्छेषं विधिर्ब्रह्माण्डभङ्गधीः ।
गुणानाकर्ण्य रामस्य शिरः कम्पभयादिव ॥ ७६॥

हे स्वामिन् ! महाराज रामचन्द्रजीके गुणोंको सुनकर शेषजी कहीं शिर न हिलाने लगे जिससे कि ब्रह्माण्ड ही उलट पुलट होजाय इस भयसे ब्रह्माजीने उनके कान नहीं बनाये ॥ ७६ ॥

हनुमान् ।

कूर्मः पादोङ्गयष्टिर्भुजगपतिरसौ भाजनं भूतधात्री
तैलापूराः समुद्राः कनकगिरिरयं वृत्तवर्त्तिप्ररोहः ।
अर्चिश्चण्डांशुरोचिर्गगनमलिनिमा कज्जलं दह्यमान-
शत्रुश्रेणीपतङ्गा ज्वलति रघुपते त्वत्प्रतापप्रदीपः ७७

(हनूमान्) हे भगवन् ! कच्छपराज तो जिसकी पाद (पतली-सीतकी नीचेकी थाली) है, यह शेषजी ही जिसका दण्ड है, पृथ्वी जिसका पात्र है, समुद्र ही जिसमें तेल है, यह हिमालय पर्वत जिसमें गोल बत्ती है प्रदीप्त सूर्यनारायणकी किरण जिसकी किरणें हैं आकाशकी श्यामलता जिसका कज्जल है और भस्म होते हुए शत्रुओंकी पंक्ति जिसमें पतङ्ग हैं ऐसा आपके प्रतापका दीपक प्रज्वलित हो रहा है७७

कैलासो निलयस्तुषारशिखरी विन्दिर्गिरीशः सखा
स्वर्गङ्गा गृहदीर्घिका हिमरुचिश्चन्द्रोपलो दर्पणः।
क्षीराब्धिर्नवपूर्तकं किमपरं शेषस्तु शेषत्विषो
यस्याः स्यादिह राघवक्षितिपते कीर्त्तेस्तटाकस्तव७८

हे पृथ्वीपते ! श्रीरामचन्द्रजी ! कैलास जिसका स्थान है, हिमालय जिसके उपदेशका स्थान है। शंकर जिसके मित्र है और आकाशगंगा जिसकी घरकी बावडी है स्वच्छ कान्तिवाला चंद्रकांतमणि जिसका दर्पण है, क्षीरसमुद्र जिसकी नई बावडी है शेषजीकी किरणें जिसकी अंगकी शोभा है ऐसा यह आपकी कीर्त्तिका विस्तार है॥७८॥

क्रान्त्वा भूवलयं दशास्यदमन त्वत्कीर्तिहंसी गता
सापि ब्रह्ममरालसङ्गमवशात्तत्रैव गर्भिण्यभूत्।
यात्वा व्योमतरङ्गिणीपरिसरे कुन्दावदातं तया
मुक्तं भाति विशांकुरं ततमिदं शीतद्युतेर्मण्डलम्॥७९॥

हे रावणके नष्ट करनेवाले स्वामिन् ! आपकी कीर्त्तिरूप हंसी पृथ्वीमात्रमें घुमकर ब्रह्मलोकको चली गई तहाँ जाकर श्रीब्रह्माजीके हंसके समागमसे गर्भिणी हो गई और उसने गंगाकी लहरोंके समीप कुंदकी समान निर्मल, संसारको आनन्दका दाता चंद्रमाका मण्डल उत्पन्न किया सो यह शोभित होता है ॥ ७९ ॥

राम राम महावीर के वयं गुणवर्णने।
यत्कीर्तिकामिनीभाले कस्तूरीतिलकं नभः॥ ८० ॥

हे अतुल पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी ! हम आपके गुणोंका क्या वर्णन कर सकते हैं ? जिन आपकी कीर्तिरूप स्त्रीके मस्तकमें कस्तूरीका तिलकरूप आकाश सुशोभित है ॥ ८० ॥

लक्ष्मीस्तिष्ठति ते गेहे वाचि भाति सरस्वती ।
कीर्तिः किं कुपिता राम येन देशान्तरं गता ॥८१॥

हे रामचन्द्रजी ! लक्ष्मी तौ आपके घरमें निवास करती है, और आपकी वाणीमें प्रत्यक्ष सरस्वती शोभा देती है. और नहीं मालूम कि-कीर्ति क्यों कुपित हो गई जो कि-परदेशोंमें चली गई अर्थात् आपकी कीर्ति दिगन्तमें प्रख्यात हो रही है ॥ ८१ ॥

राम त्वद्भुजदण्डिडिण्डिमडमत्कारप्रतापानल-
ज्वालाजर्जरकीर्तिपारदघटी विस्फोटिता बिन्दवः ।
भोगीन्द्राःकतितारकाः कतिकति क्षीराब्धयःकत्यपि
प्रालेयाचलपाञ्चजन्यकरकाः कर्पूरकुन्देन्दवः॥८२॥

हे श्रीराम ! आपके बाहुदण्डोंके डिमडिम डमत्कार शब्दके प्रतापाग्निकी ज्वालाओंसे जर्जर हुई कीर्तिरूप पारेके ढेरकी टूटी हुई बूंदोंसे कोई तो श्वेत सूर्य हुए, कितनी ही बूंदें तारे, और कितनी बिन्दुओंके समुद्र हो गए और कोई हिमालय कोई पाञ्चजन्य शंख तथा कितनी ही शेषजी, कपूर, कुन्द, तथा चन्द्रमा हो गये ॥८२॥

अत्युक्तो यदि न प्रकुप्यसि मृषा वादं न चेन्मन्यसे
तद्ब्रूमोऽद्भुतकीर्तनेन रसना केषां न कण्डूयते ।
राम त्वत्तरुणप्रतापदहनज्वालावलीशोषिताः
सर्वे वारिधयस्ततो रिपुवधूनेत्राम्बुभिः पूरिताः ॥८३॥

और जो आप अत्युक्तिसे क्रोध न करें तथा मिथ्या विवाद भी न समझें तो मैं कहता हूं कि आपके यशका विस्तार करनेमें किसकी जीभ नहीं खुजाती है । हे रामजी ! तरुण प्रतापरूप अग्निकी ज्वा-

लाओंकी पंक्तियां करके सोखे हुए समस्त सागर पुनः आपके वैरियोंकी स्त्रियोंके अश्रुप्रवाहोंसे व्याप्त हो गये ॥ ८३ ॥

खद्योतद्युतिमातनोति सविता जीर्णोर्णनाभालय-
च्छायामाश्रयते शशी मशकतामायान्ति तारादयः।
इत्थं वर्णयतो नभस्तव यशो यातं स्मृतेर्गोचरं
यच्चास्मिन्भ्रमरायते रघुपते वाचस्ततो मुद्रिताः ८४

सूर्य तौ पटवीजनेकी समान कान्तिको प्रकट करता है और चन्द्रमा मकडीके प्राचीनस्थानकी कान्ति आश्रय करता है और तारागण मच्छरकेसे रूपको प्राप्त होते हैं आकाश आपके स्वच्छ यशका वर्णन करते हैं मैं भ्रमरसा हो गया अर्थात् इस दशामें हमारी वाणी आपके अपार यशको कथन करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ८४ ॥

कृत्वा मेरुमुलूखलं रघुपते वृन्देन दिग्योषितां
स्वर्गङ्गामुसलेन शालय इव त्वत्कीर्त्तयः कण्डिताः ।
तासां राशिरसौ तुषारशिखरी तारागणास्तत्कणाः
प्रोद्यत्पूर्णसुधांशुबिम्बमसृणज्योत्स्नाश्चतत्पांसवः८५

हे भगवन् ! दिशारूप स्त्रियोंके समुदायने सुमेरु पर्वतकी मूसल बना कर आकाश गंगारूप ओखलीमें धानोंकी भांति आपकी कीर्तियोंको कूटा तो उनके ढेरका हिमालय पहाड हो गया और उसके किनके तारे हो गये तथा उदय होते हुए चंद्रमण्डलकी चिकनी चाँदनी उसकी धूलि हो गई ॥ ८५ ॥

समुद्गतौ यत्समकालमेव यशःप्रतापौ तव पुष्पवन्तौ ।
रामारितापश्च मदश्च शेषस्त्वत्खड्गतीर्थं तदनिष्टशान्त्यै॥

जिस समय रावणका यश और प्रताप एक साथही भली भांति बढा और जिस समय रावणका धनुष और अहंकार अपार वृद्धिको प्राप्त हुआ—उस समय उस प्रलय होनेके अनिष्टको शान्त करनेके अर्थ तुम्हारे तलवाररूप तीर्थमें आश्रय ले सबके सब लीन हो गये ॥८६॥

किंचित्कोपकलाविलासविभवव्यावल्गमूर्तेर्भुजो
निक्षेपादकरोन्निशाचरबलं प्रत्यर्थिनां यत्पुरः ।
क्रंदत्स्फेरु रटत्कफेरु विघटद्दारु स्फुटद्भुग्गुलु
प्रक्रीडत्कपिनिःश्वसत्फणिरटद्रिल्लिभ्रमद्वीपि च ८७

हे किंचित् क्रोधकी कलाके विलासरूपी वैभवसे अगाधमूर्ति श्रीरामजी ! जब आपकी भुजाओंने रावण और मेघनाद तथा राक्षसोंकी सेनाको नष्ट किया था तब गीदडोंकी स्त्रियें रोनेलगीं और कंकपक्षी बोलनेलगे, वृक्ष टूटनेलगे, राक्षसोंकी अग्नियें गूगलके धूपकी समान प्रज्वलित होनेलगीं, बन्दर नाचनेलगे, शेषजी शिर हिलाने और श्वास लेनेलगे, राक्षसियें रोनेलगीं तथा गैंडे और चीते इधर उधर घूमनेलगे ॥ ८७ ॥

शैत्यं ज्ञानविकारिणो न हि भवेद्वृत्रद्रुहो वाहिनी
यैर्दृष्ट्वा रणलम्पटं भुजयुगं दृष्टं पुनस्तावकम् ।
यस्याश्रित्य बलं स्थलीकृतसरिन्नाथः प्लवङ्गेश्वरैः
क्रान्तो भूरिभयेन यत्र शिशिरा यस्यां मयूखा रवेः ८८

जिस इंद्रकी सेनाके प्रतापसे सूर्यकी किरणेंभी ठंढी पडगईं उस वृत्रासुरविनाशिनी इन्द्रकी सेना, श्रीरामचन्द्रजीसे अपने निधनको जाननेवाले रावणकी दोनों भुजाओंको देखकर शान्त होगई तदनन्तर शरणदाता आपके दोनों भुजदण्डोंको प्राप्त होकर कि जिन भुजाओंका आश्रय करके सुग्रीवादिक कपियोंने नदियोंके स्वामी समुद्रको सूखी पृथ्वी बनादिया, वह इन्द्रका जीतनेवाला रावण नष्ट होगया ॥ ८८ ॥

रामः-

प्रस्थाप्य तां वानरवीरसेनां तत्कालयोग्याभरणप्रदानैः ।
भुनक्ति राज्यं निजबन्धुवर्गैःसमं ससीतःसहलक्ष्मणश्च ॥

श्रीरामचन्द्रजीने उस वीर वानरोंकी सेनाको समयके अनुसार वस्त्र आभूषण आदि दे विदा करके अपने कुटुम्बी तथा सीताजी और लक्ष्मणजीके साथ राज्यको भोग ॥ ८९ ॥

रामो दाशरथिर्दिवाकरकुले तस्याङ्गना जानकी
नीता सा दशकन्धरेण वनतो लंकालयं छद्मना ।
रामेणापि कपीन्द्रसंगमवशादम्भोनिधिं लीलया
बद्ध्वा पर्वतमालया रिपुवधादानीय निर्वासिता ॥९०॥

सूर्यकुलमें दशरथके पुत्र रामचन्द्र हुए और उनकी जाया जानकी थी उस जानकीको वनमेंसे छलकर रावण लंकाको लेगया, तब श्रीरामचन्द्रजीने वानरपति सुग्रीवकी सहायतासे लीला करकेही पर्वतोंकी पंक्तियोंसे समुद्रको बांधकर शत्रुको नष्ट करके जानकीको लेलिया और फिर जानकीको वनवास दिया॥९०॥

तत्र त्यक्तसीतो लक्ष्मणो विलपति–

वने विमोक्तुंजनकस्यकन्यां श्रोतुंचतस्याःपरिदेवितानि।
सुखेन लंकासमरेहतं मामजीवयन्मारुतिरात्तवैरः ॥९१॥

उस समय सीताजीको वनमें छोडकर लक्ष्मणजी विलाप करते हैं–

लंकाके संग्राममें सुखसे मरेहुए मुझ लक्ष्मणको जो हनुमान्‌जीने जीवित किया सो वनमें जनकनन्दिनी सीताजीके त्यागनेके और उसका विलाप सुननेके लिये जीवित करके मानो मुझसे किसी वैरका बदला चुकाया ॥ ९१ ॥

पशुरपि न मृगो मृगीं मृगेन्द्र-
ध्वनिचकितः प्रसवक्षणे जहाति ।
अयमरघुरजानकीयमावां
यदि न स जीवति निर्दयोऽद्य वेधाः ॥ ९२॥

सिंहके शब्दसे घबडाया हुआ भी हिरन बच्चा पैदा करनेके समय हिरनीको नहीं त्यागता है । सो क्या तो यह रामचन्द्रजीही रघुवंशी

यद्गर्जनं धनुषो रावणस्य समरे भयाभयङ्कर्यां जनस्तत्रा
येन गुरोर्गिरा वसुमती सेतुः पयोधौ कृतः
श्रेष्ठं दशाकन्धरहृदयदृता रामस्य कीर्तयते
यैवं यशोयं ॥ येन सोपि सहसा गीतः
कथाशेषताम् ॥93॥

रम्यं श्रीरामचन्द्रप्रबलभुजबलोद्दण्डकाण्ड-
शौण्ड्यं
त्यागं वृद्धोऽनाढ्ये रणशिरसि महाजाटकं
पाटनाख्यम्
पुण्यं मत्स्याङ्गनेम्य कविरचितमिदं यः शृणोति
प्रसन्नः
मुक्तोऽसौ सर्वपापादरिभटविजयी राजलक्ष्मीं लभेत
॥94॥

चतुर्दशभिरेवाहैर्भुवनाढ्यैः चतुर्दशः
श्रीमद्दामोदरकविः चक्रे कैलक्षं महो निर्मलम्
॥95॥

रचितमौनलपुत्रेण वाल्मीकिनाख्यां
निहितममृतबुद्ध्या यद्महानाटकं यत्
सुमतिनृपतिभोजेनोद्धृतं यत्क्रमेण
ग्रथितमवतु विश्वं मिश्रदामोदरेण
॥96॥

इति श्रीपवजतनयविरचितमिश्रदामोदरसंगृहीत
हनुमन्नाटके श्रीरामविजयो नाम चतुर्दशोऽङ्कः
समाप्तः